प्रकाशक—
श्री रामचन्द्र गुप्त,
व्यवस्थापक
रीगल बुक डिपो,
नई सड़क, देहली।

❀ सूचना ❀

गोस्वामी तुलसीदास

(जीवन परिचय)

हिन्दी साहित्यिक संसार में जितना महत्वपूर्ण और निर्विवाद रूप श्रेष्ठ सर्वोच्च स्थान गोस्वामी तुलसीदास जी को प्राप्त हुआ है वैसा संभवतः विश्व की किसी भाषा के अन्य किसी भी कलाकार को अब तक नहीं हुआ। संस्कृत में महाकवि वाल्मीकि का स्थान अत्युच्च है कोई संदेह नहीं पर व्यास और कालिदास के आसन भी उन्हीं के ब इनमें से आप किसी एक कवि को एक दूसरे से अत्युच्च स्थान नहीं दे यह नहीं कह सकते कि अमुक कवि से बढ़कर संस्कृत साहित्य में, में जर्मन में या किसी अन्यभाषा में कोई कवि आज तक हुआ। किन्तु हिन्दी साहित्य मानो कि इस नियम का अपवाद है। इस का उल्लेख करते हुए आप निर्भीक और निर्भ्रान्त रूप से कह सक हिन्दी साहित्य में गोस्वामी जी का स्थान सर्वोच्च है या उनसे बढ़ श्रेष्ठ हिन्दी में अभी तक कोई कवि नहीं हुआ। आप के इस सर्व सम्मति से समर्थन ही होगा। इसे यूँ कह सकते हैं कि तु जी हिन्दी साहित्याकाश के सूर्य हैं—यह कथन सूर्य की प्रत्यक्ष सत्ता ही निर्विवाद रूप से स्पष्ट सत्य के समान स्वीकार कर लिया गया

बात भी सत्य है। जिस प्रकार सूर्य वर्ष तथा ऋतुओं में भि आकृति या प्रभाव धारण कर, कभी तपा कर, कभी जल का शोषण कभी रस सरसा कर अपने नानाविध कार्यों से प्रतिक्षण चराचर मा साधन में ही संलग्न रहता है, वैसे ही गोस्वामी जी भी अपने प्रसं

के प्रत्येक पद, शब्द और अक्षरों के द्वारा विश्व कल्याण के लिये ही सतत प्रयत्न-शील लक्षित होते हैं। उनके "स्वान्तः सुखाय" में "सर्वान्तः सुखाय" की भावना अन्तर्हित है।

"जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी"

गोस्वामी जी की अपने प्रभु राम के लिये कही गई यह सूक्ति स्वतः उनके साहित्य पर भी अक्षरशः चरितार्थ होती है।

राजनीतिज्ञ को राजनीति के दाव-पेच, समाज सुधारक को समाज के संस्कार और सुधार, प्रभुभक्त को भक्ति भाव, देश भक्त को स्वदेशानुराग, वीर को उत्साह दर्प तथा भावुक जनों को सुकोमल भावनाएँ आदि सभी विभिन्न विचारों के विचारकों को अपनी-अपनी बात अनायास ही तुलसी-साहित्य में दिखाई देने लगती है, और वे उसका उसी रूप में वर्णन भी करते हैं। शुक्ल जी तुलसी में समाज सुधार और लोक संग्रह की भावना को प्रमुख रूप में पाते हैं तो दूसरे विचारक देखते हैं कि वे समाज सुधारक या लोक संग्रही की अपेक्षा वैयक्तिक साधना में निरत संत ही प्रधान रूप से थे। इधर व्योहार राजेन्द्रसिंह प्रभृति तत्वान्वेषियों ने उनके साहित्य में तात्कालिक राजनैतिक व धार्मिक परिस्थितियों की भयावहता व उनका समाधान ही मुख्य रूप से पाया है। इसके विपरीत भावुक भक्त जन तो तुलसी के मानस को 'काव्य' कहना भी उसका अपमान समझते हैं। वे तो उसमें आदि से अंत तक भक्ति-रस का ही अखंड प्रवाह पाकर तन्मय हो जाते हैं। इस के विरुद्ध ईश्वरावतार तो क्या ईश्वर और धर्म का विरोध करने वाले साम्यवादी रामचरितमानस में साम्यवाद की स्पष्ट सत्ता पाते हैं। इस प्रकार गोस्वामी जी ने अपनी विविध विश्व हितैषी प्रवृत्तियों के द्वारा मनुष्य मात्र को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया है। यही कारण है कि विश्व भर के विज्ञ विवेचक विद्वानों ने सर्वसम्मति से यह निर्णय दिया है कि हिन्दी में रामचरितमानस ही एक मात्र ऐसी प्रमुख रचना है जिसका विश्व साहित्य में अपना एक विशेष स्थान बन चुका है।

इन्हीं सब बातों को देख कर ही तो अभी कुछ दिन पूर्व साम्यवादी रूस ने भी गोस्वामी जी की प्रमुख रचना रामचरितमानस का रूसी भाषा

में एक अत्यन्त भव्य और विशाल संस्करण प्रकाशित करवाया है। और इस ग्रन्थ के प्रति इतनी आस्था प्रकट की कि रूस की सरकार ने विश्व-युद्ध के भयंकर विपदा के दिनों में भी इसके अनुवाद कार्य को शिथिल नहीं होने दिया।

अस्तु, इस प्रकार यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि गोस्वामी जी हिन्दी साहित्य के सचमुच सूर्य हैं। किन्तु सूर्य सिद्ध हो जाने के कारण गोस्वामी जी के व्यक्तित्व में जहाँ एक अनुपमता और सर्वोत्कृष्टता की प्रतिष्ठा हो गई वहाँ उनके जीवन की रहस्यात्मकता भी बहुत अधिक बढ़ गई। स्पष्ट शब्दों में यूँ कहें कि जिस प्रकार अपने रात दिन के साथी सूर्य को निरन्तर अपने समक्ष पाते हुए भी उसके जीवन के रहस्य से हम प्रायः अपरिचित ही रहते हैं और वैज्ञानिक अपने विशाल आविष्कारक मस्तिष्कों से भी उसके अप्रकट अंशों के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ न कह कर केवल अनुमान मात्र लगा पाते हैं, वैसे ही इस साहित्यिक सूर्य की आभा से अपने अंतर्तम के कोने २ को प्रकाशित पाते हुए भी हम उसके जीवन के सम्बन्ध में जानने का बहुत कम प्रयत्न करते हैं। और जो ऐतिहासिक अन्वेषक ज्यों-ज्यों उनके जीवन के रहस्यों को खोलना चाहते हैं, त्यों-त्यों वे रहस्य और भी अधिक गंभीर होते जाते हैं।

कुछ लोग इस विषय को लेकर बड़ा खेद और अनुताप प्रकट करते हैं कि केवल तीन सौ वर्ष पूर्व प्रकट होने वाले इस भारत के निर्माता का भी हमें कुछ सुनिश्चित अता-पता न मिले, हम उसकी भी पूरी २ जानकारी प्राप्त न कर सकें, इससे बढ़कर हमारी ला परवाही, उपेक्षा की भावना अथवा अलसप्रवृत्ति और क्या हो सकती है, किन्तु ऐसे विचार कों को सदा स्मरण रखना चाहिये कि दिव्य शक्तियों का आविर्भाव और तिरोभाव भी प्रायः दिव्य ही हुआ करता है और उस रहस्यात्मकता से उनकी तद्दिव्यता में कुछ भी बाधा नहीं आती प्रत्युत कुछ सहायता ही मिलती है फिर भी इतिहास के विद्यार्थी तो ऐसी बातों से कदापि संतुष्ट नहीं होगा उसे तो तुलसी के भौतिक जीवन के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक जानकारी

प्राप्त करनी ही होगी। तदर्थ, ऐतिहासिक अन्वेषकों ने गोस्वामी जी की जीवन सामग्री भी खोज ही निकाली है।

जीवन वृत्त के आधार

स्पष्टतः गोस्वामी जी ने अपने सम्बन्ध में कहीं कुछ भी नहीं लिखा इसलिये गोस्वामी जी का जीवनवृत्त जानने के लिये निम्न दो प्रकार की सामग्री का उपयोग किया गया है :——

१ अन्तरंग साक्ष्य—अर्थात् गोस्वामी जी ने अपनी रचनाओं में प्रसंगवश कहीं-कहीं कुछ अपने जीवन का संकेत दिया है। उन सब स्थलों को संकलित करने पर गोस्वामी जी के जीवन में घटने वाली कुछ मोटी २ घटनाओं तथा उनके अन्तर की प्रवृत्तियों की एक स्थूल-सी रूप रेखा प्रस्तुत हो जाती है।

२ बहिरंग साक्ष्य :—दूसरे लेखकों ने या लोगों ने गोस्वामी जी के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा या कहा उसके संकलन से भी गोस्वामी जी के जीवन की बहुत-सी बातों का पता चल जाता है।

अब हम यहाँ पर गोस्वामी जी के जीवन के सम्बन्ध में पहले एक प्रश्न सूची बनालें और फिर देखें कि किस प्रश्न का उत्तर अन्तरंग साक्ष्य में मिलता है। जिस प्रश्न का उत्तर अन्तरंग साक्ष्य में मिल जाये उसके लिये तो बहिरंग साक्ष्य की कोई आवश्यकता ही नहीं। शेष प्रश्नों का उत्तर हमें बहिरंग साक्ष्य से दे देना होगा।

प्रश्न

१. गोस्वामी जी का जन्म कब हुआ?
२. ,, ,, मृत्यु स्वर्गवास कब हुआ?
३. जन्म कहाँ हुआ?
४. मृत्यु स्वर्गवास कहाँ हुआ?
५ गोस्वामी जी की माता का नाम क्या था?
६ गोस्वामी जी के गुरु कौन थे?
८ वे कब और कहाँ पढ़े?

८ उनका विवाह हुआ था या नहीं ?

९ वे अपने जीवन में कहाँ कहाँ रहे और गए ?

१० उनके मित्र और परिचित कौन-कौन थे ।

११ उनके कोई सगा भाई था या नहीं ?

१२ उनकी बाल्यावस्था और वृद्धावस्था कैसे बीती ?

१३ उन्होंने कौन-कौन से ग्रन्थ लिखे ?

१४ गोस्वामी जी ने अपने समकालीन किन-किन व्यक्तियों का उल्लेख किया है ?

१५ वे किस जाति के थे ?

१६ इनका बचपन का नाम और प्रसिद्ध नाम एक ही हैं या भिन्न भिन्न ?

१७ उनके जीवन में महत्वपूर्ण घटनाएँ क्या क्या हुई ?

१८ गोस्वामी जी के समकालीन किन-किन व्यक्तियों ने उन के लिये क्या कुछ लिखा है ?

१९ गोस्वामी जी के अन्य कौन कौन संबन्धी थे ?

२० गोस्वामी जी के धार्मिक विचार कैसे थे ?

इनमें अन्तरंग साक्ष्य के आधार पर ५, ६, ७, ८, १०, ११, १२, १३, १५, १६, १७, १८, १९ और २० के सम्बन्ध में गोस्वामी जी ने स्वयं प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कुछ न कुछ संकेत अवश्य दिये हैं। शेष प्रश्नों के सम्बन्ध में उन्होंने कहीं कुछ नहीं लिखा। तदनुसार हम देखते हैं कि—

१—माता:—गोस्वामी जी ने अपनी माता के नाम का संकेत करते हुए राम चरितमानस में निम्न चौपाई लिखी है:—

"रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी, तुलसिदास हित-हिय हुलसी सी।"

१—माता—वहिरंग साक्ष्य के आधार पर भी इनकी माता का नाम हुलसी ही सिद्ध होता है। अतः कहना होगा कि तुलसीदास जी की माता का नाम अवश्य हुलसी बाई ही था।

२—गुरु :—"वन्दौं गुरु पद कंज कृपा सिन्धु नर रूप हरि।"
रामचरितमानस के उक्त सोरठे से ऐसा संकेत मिलता है कि उनके गुरु का नाम नरहरिदास था। यद्यपि सर्वसम्मति से अभी तक यह निश्चित नहीं हो पाया है कि उनके गुरु अवश्य ही नरहरिदास ही थे फिर भी अनेक प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि उनके गुरु वास्तव में नरहरि दास थे।

३— वे कब २ कहाँ २ पढ़े? इसके सम्बन्ध में गोस्वामी जी ने इतना ही संकेत किया है कि "मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकर खेत।"
अर्थात् सूकर क्षेत्र नामक स्थान में गोस्वामी जी ने अपने गुरु से राम चरितमानस की कथा सुनी थी अर्थात् वे वहाँ कुछ दिन अवश्य पढ़ते लिखते रहे, जिसके लिये उन्होंने अपने गुरु शब्द का उल्लेख किया है। वे वहाँ कितने दिन तथा अन्यत्र कब २ और कहाँ २ क्या २ पढ़े इसके संबन्ध में अन्तरंग साक्ष्य के आधार पर और कुछ पता नहीं चलता।
४—विवाह :— उनका विवाह हुआ था या नहीं? इस सम्बन्ध में उन्होंने विनय पत्रिका में लिखा है कि :—

"लरिकाई बीती अचेत चितचंचलता चौगुनी चाय।
जोबन जर जुवती कुपथ्य करि भयो त्रिदोष भरि मदन वाय॥"

इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि उनका विवाह अवश्य हुआ था। इसी प्रकार दोहावली का :—

"घरिया खरी कपूर सम उचित न पिय तिय त्याग।
कै घरिया मोहि मेलि कै करु विमल विवेक विराग॥"

इस दोहे से भी प्रमाणित होता है कि गोस्वामी जी का विवाह अवश्य हुआ था।

वे सदा गृहस्थी नहीं रहे, किन्तु एकान्ततः समाज से विमुख साधु भी नहीं बन गये। घर छोड़कर भी लोक संग्रह की भावना उनके हृदय में सदा विद्यमान रही। इसका संकेत उन्होंने दोहावली के निम्न दोहे में दिया है:——

"घर छोड़े घर जात हैं घर राखे घर जाय।
तुलसी घर बन बीच ही राम प्रेम पुर छाय॥"

५—वे अपने जीवन में प्रमुख रूप से कहाँ २ रहे और कहाँ २ गये इस सम्बन्ध में भी गोस्वामी जी ने स्वयं कुछ संकेत दिये हैं। जिन से ज्ञात होता है कि वे चित्रकूट, काशी, वारीपुर दिग्पुर, अयोध्या आदि नगरों या स्थानों में प्रायः घूमते रहे। जैसे कि :—

(१) अब चित चेत चित्रकूटहिं चलु। (विनय पत्रिका)

(२) सेइय सहित सनेह भरि कामधेनु कलि कासी। (विनय पत्रिका)

(३) नौमी भौमवार मधुमासा, अवध पुरी यह चरित प्रकाशा(रामचरितमानस)

६—संतानः—कवितावली आदि ग्रन्थों में आये हुए कुछ एक पद्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि उनके कोई संतान न थी। जैसा कि लिखा है :—

"काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब,
काहू की जाती बिगार न सोऊ।"

७—उनके मित्र या परिचित कौन थे ? इस सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि गोस्वामी जी ने स्वयं अपने मित्रों का परिचय बहुत ही कम दिया है, फिर भी कहा जा सकता है कि भदैनी नामक ग्राम के ठाकुर टोडर उनके एक अच्छे मित्र थे, जिनकी मृत्यु पर गोस्वामी जी ने निम्न दोहा कहा था :—

"तीन ग्राम को ठाकुरो, मनको महा महीप।
तुलसी या कलि काल में अथए टोडर दीप।"

इसके अतिरिक्त टोडर की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्रों में भूमि के बटवारे के कारण झगड़ा हो गया। गोस्वामी जी ने एक पंचायतनामे के द्वारा उनका आपस में झगड़ा निबटा दिया था। उस पंचायतनामे पर ऊपर की कुछ पंक्तियाँ गोस्वामी जी के अपने हाथ की लिखी हुई थीं। इसके साथ ही टोडर के वंशज अब तक भी श्रावण कृष्णा तृतीया को गोस्वामी जी के नाम पर सीधा बाँटा करते हैं। अतः सिद्ध होता है कि ठाकुर टोडर गोस्वामी जी के मित्रों में से थे।

८—उनके कोई सगा भाई था या नहीं? इसका उल्लेख गोस्वामी जी ने कहीं नहीं किया इसलिये कह सकते हैं कि उनका सगा भाई कोई नहीं था।

९—उनकी बाल्यावस्था बड़ी कष्टमय थी। जन्मते ही इन्हें माता पिता ने छोड़ दिया था और भगवान् के भरोसे पर ही यह पल पोस कर बड़े हुए। इस सम्बन्ध में कवितावली और विनय पत्रिका में उन्होंने बहुत से स्थलों पर उल्लेख किया। जैसे कि :—

(१) "मातु पिता जग जाय तज्यो विधि हूँ न लिखी कछु भालभलाई।"

(कवितावली)

(२) "तनु तज्यो कुटिल कीट ज्यों-तज्यो मातु पिता हूँ।" (कवितावली)

१०—युवावस्था में ये विलासी प्राणी रहे अपनी स्त्री में इनकी विशेष आसक्ति थी।। जैसे कि—

इस प्रकार यह भी सिद्ध हो गया कि ये वृद्धावस्था से पहले प्रायः कभी रुग्ण नहीं हुए पर बुढ़ापे में प्रायः रोगी रहे।

१०—गोस्वामी जी ने स्वयं कहीं भी यह स्पष्ट संकेत नहीं दिया है कि सम्पूर्ण ग्रन्थ कितने और कौन कौन से लिखे। फिर भी, निम्न लिखित ग्रन्थ उनके अपने माने जाते हैं :—

(१) रामचरितमानस। (२) रामललानहछू। (३) वैराग्य संदीपनी। (४) बरवै रामायण। (५) पार्वती मंगल। (६) जानकी मंगल। (७) रामाज्ञा प्रश्न। (८) दोहावली। (९) कवितावली। (१०) गीतावली। (११) श्रीकृष्ण गीतावली। (१२) विनयपत्रिका।

इनमें से रामचरितमानस का रचनाकाल सं० १६३१ तथा सं० १६४३ पार्वती मंगल और सं० १६६२ से ८५ तक कवितावली के कुछ कवित्तों का रचना काल गोस्वामी जी ने स्वयं दिया हुआ है। इनके अतिरिक्त अन्य किसी ग्रन्थ का रचना काल गोस्वामी जी ने स्वयं नहीं दिया। रामचरितमानस का आरम्भ अयोध्या में सं० १६३१ में तथा समाप्ति सं० १६३३ में हुई।

११—गोस्वामी जी ने अपने समकालीन केवल टोडर ठाकुर का उल्लेख किया है। अन्य किसी व्यक्ति के संबन्ध में कहीं कुछ नहीं लिखा किन्तु रहीम, नाभादास आदि दूसरे समकालीन कवियों ने इनका उल्लेख अवश्य किया है।

१२—यह जाति से ब्राह्मण थे। इस सम्बन्ध में इन्होंने अनेक स्थानों पर स्पष्ट उल्लेख किया है। जैसे कि :—

(१) "जायो कुल मंगन-बधावनो सुनी,
भयो परिताप पाप जननि जनक को।" (कविता वली)

(२) "भली भारत भूमि भले कुल जन्मि समाज शरीर भलो लहि कै।"
(कवितावली)

इस प्रकार यह सिद्ध हो जाने पर भी कि ये ब्राह्मण थे अन्तरङ्ग साक्ष्य के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि कौन से ब्राह्मण थे।

१३—इनका बचपन का नाम तुलसीदास ही था या कुछ और ? इस सम्बन्ध में भी उन्होंने लिखा है कि :—

(१) "राम को गुलाम नाम राम बोला राख्यो राम।
काम यहै नाम द्वै हौं कबहुँ कहत हौं।" (वि० प०)

(२) साहिब सुजान जिन स्वानहू को पच्छ कियो।
राम बोला नाम हौं गुलाम राम साहि को॥ (क० ब०)

१४—अपने जीवन की महत्व पूर्ण घटनाओं में गोस्वामी जी ने विपक्षियों का प्रबल विरोध तथा अपना सम्मान आदि घटनाओं की ओर उल्लेख किया है। हनुमान् जी के दर्शन और उनकी सहायता व भगवान् राम के साक्षात्कार आदि घटनाओं की ओर भी यत्र तत्र संकेत किया है।

'इस प्रकार इन सब बातों को संकलित करके देखने पर अन्तरङ्ग साक्ष्य के आधार पर गोस्वामी जी के जीवन वृत्त की निम्न रूप-रेखा प्रस्तुत की जा सकती है :—

"गोस्वामी जी का जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ। इनके जन्मते ही इनके माता पिता बहुत दुःखी हुए और उन्होंने इन्हें त्याग दिया इनकी माता का नाम हुलसी था यह बचपन में शूकर क्षेत्र नामक स्थान में रहे, और नरहरिदास नामक गुरु से इन्होंने कुछ शिक्षा पाई तथा रामायण की कथा सुनी। इनका बचपन इधर-उधर भटकते और भिक्षावृत्ति के द्वारा निर्वाह कर पढ़ने-लिखने में बीता इनका बचपन का नाम रामबोला था। इनकी बाल्यावस्था कोई सुखमय नहीं थी। युवावस्था में विवाह हो जाने पर यह कामिनी के प्रेम-राग में बँध गये और भोग विलास में लग गये। फिर चेत होने पर इन्होंने गृह का तो त्याग दिया पर संसार का त्याग नहीं किया। ये अत्यन्त विद्वान होते हुए भी विनम्र स्वभाव के राम भक्त सन्त थे। अपने जीवन में इनका यश चारों ओर खूब फैल गया था। ईर्ष्यालु विरोधी इनकी बढ़ती हुई प्रतिष्ठा को देख कर इनका विरोध भी खूब करते थे। ये प्रायः चित्रकूट, अयोध्या और काशी आदि स्थानों में रहते थे। भदैनी ग्राम का ठाकुर टोडर इनके मित्रों में से था। इन्होंने लगभग १२ ग्रन्थ लिखे जिनमें से तीन का रचनाकाल भी उन्होंने दिया है। वृद्धावस्था इनकी कहीं

में बीती है। और इनका साकेतवास सं० १६७९ के पश्चात् हुआ। संभवतः इनके कोई संतान नहीं थी।

इससे अधिक जानकारी के लिये हमें बहिरङ्गसाक्ष्य का आधार लेना होगा, किन्तु बहिरङ्गसाक्ष्य तो परस्पर असंबद्ध ही नहीं विरोधी बातें तक कहते हैं। अतः हम जिस भी किसी बहिरङ्गसाक्ष्य को गोस्वामी जी के जीवनचरित के लिये प्रामाणिक माने उसकी पहले ठोक बजाकर परीक्षा करनी होगी।

निम्न लिखित प्राचीन ग्रन्थों में गोस्वामी जी के जीवन पर प्रकाश डालने वाली सामग्री उपलब्ध होती है:—

(१) गोस्वामी गोकुलनाथ रचित "दोसौ बावन वैष्णवों की वार्ता।" (२) नाभादास रचित "भक्तमाल"। (३) बाबा वेणीमाधवदास कृत "मूल गुसाँई चरित"। (४) बाबा रघुवर दास कृत "तुलसी चरित"। (५) प्रिय दास कृत "भक्त माल" की टीका। (६) घट रामयण का उल्लेख। (७) रामचरितमानस की 'मयङ्क' टीका।

इनमें से संपूर्ण जीवन चरित्र केवल मात्र एक ही पुस्तक में प्राप्त होता है और वह है "मूल गुसाँई चरित"। इस पुस्तक में गोस्वामी जी का जीवन चरित आदि से अंत तक बड़े ही विस्तार के साथ दिया है। और यत्र तत्र मुख्य २ घटनाओं की तिथियाँ भी दी हैं। इस चरित के अनुसार गोस्वामी जी का जीवनवृत्त निम्न है:—

"तुलसी दास जी के पिता राजापुर के राज गुरू थे। उनकी माता का नाम हुलसी था उनका जन्म सं० १५५४ में श्रावण शु० सप्तमी को हुआ। इसका वर्णन उन्होंने निम्न दोहे में किया है:—

'पन्द्रह सौ चौवन विषै तरनी तनुजा तीर।
श्रवण शुक्ला सप्तमी तुलसी धर्यो शरीर ॥'

उत्पन्न होते ही तुलसी दास जी रोये नहीं, अपितु इन्होंने राम नाम का उच्चारण किया। इसीलिये इन का नाम राम बोला पड़ गया। उस समय इनके पूरे ३२ दाँत थे तथा इनका शरीर भी लग-भग ५ वर्ष के बालक के शरीर के समान था। तीन दिन के पश्चात् इनकी माता की मृत्यु हो गई। उसके बाद उनकी दासी चुनिया ने इनका पालन पोषण किया। वह इनको

अपनी सुसराल हरिपुर ले गई। ५ वर्ष के बाद वह भी साँप के काटने से मर गई। रामबोला के पिता के पास संदेश भेजा गया कि वे अपने पुत्र को ले जायें परन्तु वे इस बालक को अशुभ जान कर उसे वापिस लेने को तैयार न हुए। ५ वर्ष का बालक रामबोला अब द्वार २ भीख माँग कर अपना निर्वाह करने लगा। इस विपत्ति के समय में एक ब्राह्मण स्त्री का रूप धर गौरा माता (पार्वती) ने इनकी रक्षा की। दो वर्ष तक इसी प्रकार इनका पालन हुआ तदनन्तर पार्वती को कष्ट है ऐसा समझते हुए शिव जी ने अनन्तानन्द के शिष्य नरहर्यानन्द को स्वप्न में दर्शन देकर बालक की रक्षा का भार लेने का आदेश दिया। नरहर्यानन्द ने रामबोला के सब संस्कार कर उसे राम की कथा शूकर क्षेत्र में सुनाई। यह बात सं० १५६१ की है। शूकर क्षेत्र में नरहरि जी ५ वर्ष तक रहे। उन्होंने बालक का नाम "रामबोला" से "तुलसी" रख दिया। इसके बाद नरहरि जी तुलसी को लेकर काशी आये यहाँ वे पंच गंगा घाट पर शेष सनातन से मिले। शेष सनातन तुलसी की प्रतिभा से विशेष प्रभावित हुए। उन्होंने बालक को नरहरि जी से माँग लिया और अपना शिष्य बना लिया। यहाँ तुलसी १५ वर्ष तक रहे और सभी प्रकार की विद्याओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। जब शेष सनातन की मृत्यु हुई तो गोस्वामी जी राजापुर आकर राम कथा कहने लगे। इसी समय यमुना तट पर तारिपता नाम के ब्राह्मण ने अपनी पुत्री के साथ गो० का विवाह सं० १५८३ में कर दिया गो० जी ने ५ वर्ष तक विवाहित जीवन बिताया किन्तु बाद में अपनी स्त्री के पीछे सुसराल जाने पर उनकी पत्नी ने उन्हें फटकारा फलतः वे विरक्त हो गये और तदनन्तर गोस्वामी जी ने लगभग १५ वर्ष तक तीर्थ यात्रा और पर्यटन किया। भारत के चारों धामों की उन्होंने यात्रा की। सर्व प्रथम वे पूर्व में जगन्नाथ पुरी गये वहाँ से दक्षिण में रामेश्वर पहुँचे तदनन्तर द्वारिका होते हुए उन्होंने बदरिकाश्रम की यात्रा की यहाँ से वे कैलाश पर्वत की ओर अग्रसर हुए, मार्ग में कुछ समय मान सरोवर पर भी ठहरे। मानसरोवर के सुन्दर दृश्य का उनके अन्तर्तम पर इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि उसी के आधार पर उन्होंने "रामचरित का मानस" रचा। इस रचना में मानसरोवर की प्रतिच्छाया स्पष्टतः परिलक्षित

होती है। यहाँ से वे रूपाचल और नीलाचल पर्वतों के दर्शन करने गये। लौटते हुए कुछ समय फिर मानसरोवर पर ठहर कर चित्रकूट के भावन में आश्रम बना कर रहने लगे। यहाँ इन्हें प्रेत दर्शन हुए जिस से इन्हें हनुमान् जी और भगवान् राम के दर्शन सुलभ हुए। हितहरिवंश का पत्र सूरदास जी तथा हरियानन्द स्वामी जी भी इन्हें यहीं पर मिले। मीरा बाई ने अपने ससुराल वालों से तंग आकर इन्हें निम्न लिखित पत्र भेजा:—

"स्वस्ति श्री तुलसी गुण भूषण, दूषण गुसाईं।
बारहिं बार प्रणाम करहुं हरे शोक समुदाई॥
घर के स्वजन हमारे जेते सबन्ह उपाधि बढ़ाई।
साधु संग अरु भजन करत मोंहि देत कलेस महाई॥
बालपने ते मीरा कीनी गिरधर लाल मिताई।
सो तों अब छूटे नहीं क्यों हूँ लगी लगन बरियाई॥
मेरे मात पिता के सम हो हरि भक्तन सुखदाई।
हमकू कहा उचित करबो है सो लिखिये समुझाई॥

इसके उत्तर में गोस्वामी जी ने निम्न पद लिख कर भेजा:—

"जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही॥
तात मात भ्राता सुत पति हित इन समान कोउ नाहीं।
रघुपति विमुख जानि लघुतृन इव तजत न सुकृति डराहीं॥
तज्यो पिता प्रहलाद विभीषन बन्धु भरत महतारी।
गुरु बलि तज्यो कंत ब्रज बनितन भे सब मंगल कारी॥
नातो नेह राम को मानिय सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँख जो फूटै बहुतै कहौं कहाँ लौं॥
तुलसी सो सब भाँति परमहित पूज्य प्रान तें प्यारो।
जासों होइ सनेह राम सों सोई मतो हमारो॥"

तदनुसार मीरा बाई ने गृह त्याग दिया। सं० १६१६ के पश्चात् इन्होंने एक बालक के गाने के लिए राम और कृष्ण संबन्धी गीतों की रचना की जो सं० १६२८ में रामगीतावली और कृष्णगीतावली के नाम से संकलित

किये गये । फिर यह चित्रकूट से काशी गये। मार्ग में वारीपुर और दिगपुर नामक दो स्थानों पर ठहरे, काशी में भगवान् शंकर ने दर्शन देकर इन्हें राम कथा लिखने के लिये प्रेरित किया। सं० १६३१ में अयोध्या में आकर इन्होंने रामचरितमानस की रचना प्रारम्भ की यहीं से इनके नियमित साहित्यिक जीवन का श्री गणेश हुआ। रामचरित मानस की बढ़ती हुई प्रतिष्ठा से ईर्ष्या रखने वाले काशी के कुछ पंडितों ने मानस की प्रति को चुराने का प्रयत्न किया फलतः—इन्हें अपनी यह प्रति अपने मित्र टोडर के यहाँ सुरक्षित रखनी पड़ी। सं० १६३३ और ४० के मध्य इन्होंने राम विनयावली अथवा विनयपत्रिका की रचना की। फिर ये मिथिला पहुँचे जहाँ इन्होंने "रामललानहछू" "पार्वती मंगल" और "जानकी मंगल" नामक पुस्तकें लिखीं। सं० १६४० में इन्होंने दोहावली का संग्रह किया और ४१ में अपने हाथों से वाल्मीकि रामायण की प्रतिलिपि की। इन्हीं दिनों सतसई लिखी सं० ४२ में काशी में महामारी का प्रकोप हुआ इसी समय के लगभग केशवदास जी गोसाँई जी से मिले। सं० १६४६ में ये नैमिषारण्य गये जहाँ ये नाभादास नन्ददास और गोपीनाथ से मिले। वृन्दावन से चित्रकूट पहुँचे। वहाँ से दिल्ली होते हुए काशी आये मार्ग में अयोध्या में मलूकदास जी से भी मिले।

इसके बाद महावन (काशी) ही में रहे। यहाँ उन्होंने पुनः अलौकिक कार्य किये एक विधवा के पति को पुनः जीवित किया। अपने मित्र टोडर की मृत्यु पर उसके उत्तराधिकारियों का पंचनामा लिखा। इसके बाद इन्होंने "बरवै" 'बाहुक' "वैराग्य संदीपनी" इत्यादि अनेक रचनाएँ लिखी। सं० १६७० में जहाँगीर इनके दर्शनार्थ काशी आया वह तुलसीदासजी की सेवा अपार धन राशि से करना चाहा था परन्तु उन्होंने कुछ भी स्वीकार नहीं किया। अन्त में संवत् १६८० में श्रवण कृष्णा तृतीया शनिवार को काशी में इनका देहान्त हो गया। इस सम्बन्ध में निम्न दोहा स्मरणीय है:—

संवत सोरह सै असी असी गंग के तीर।
सावनु श्यामा तीज सनि तुलसी तज्यो शरीर॥

जैसा कि ऊपर कहा गया है, वेणीमाधवदासकृत गुसाँई चरित के

अतिरिक्त कुछ अन्य पुस्तकों में भी गोस्वामी जी के जीवन सम्बन्धी उल्लेख मिलते हैं। उनमें से २५२ वैष्णवों की वार्ता में गोस्वामी जी का उल्लेख विशेषरूप से हुआ है। नन्ददासजी का वर्णन करते हुए वहाँ लिखा है कि:—

१. तुलसीदासजी नन्ददास जी के बड़े भाई थे।
२. वे राम के अनन्य भक्त थे और काशी में रहते थे। उन्होंने भाषा में रामायण लिखी थी।
३. गोस्वामी जी एक बार काशी से व्रज आये वहाँ वे नंददास जी से मिले।
४. गोस्वामीजी राम के सिवा अन्य किसी को मस्तक नहीं नवाते थे वे अपनी यात्रा में गो० विट्ठलदास जी से भी मिले थे।

नाभादास जी कृत भक्तमाल में गोस्वामी जी की प्रशंसा के लिए निम्नलिखित कवित्त हैं:—

कलि कुटिल जीव निस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भयो।
त्रेता काव्य निबन्धकरी शत कोटि रमायन॥
इक अच्छर उच्चरे ब्रह्म हत्यादि परायन॥
अब भक्तनि सुख दैन बहुरि लीला बिस्तारी।
रामचरन रस मत्त रहत अह निशि व्रतधारी॥
संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लियो।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भयो।

उक्त छप्पय में गोस्वामी जी की केवल प्रशंसा मात्र है, उनका जीवन वृत्त नहीं। हाँ, भक्तमाल पर आगे चल कर प्रियदास ने एक विस्तृत पद्यात्मक टीका लिखी है। उस टीका में गोस्वामी जी के जीवन वृत्त पर विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला गया है। उसके आधार पर गोस्वामीजी के जीवन की सात घटनाएं प्रामाणिक मानी जाने लगी हैं। वे निम्न हैं:—

१—गोस्वामी जी अपनी स्त्री से अत्यधिक प्रेम करते थे और उससे भर्त्सना पाकर ही वे विरक्त होकर काशी चले गये।

२—काशी में उन्होंने एक प्रेत को प्रसन्न करके हनुमान् जी के दर्शन किये।

३—हनुमान् जी के द्वारा उन्हें भगवान् राम का साक्षात्कार हुआ।

४—शिव जी के नन्दी को भोजन कराना, उनके घर पर चोरी करने के लिए आये हुए चोरों को पहरेदार के रूप में राम लक्ष्मण का दिखाई देना और मृतक व्यक्ति को जीवित कर देना आदि अलौकिक घटनाओं का प्रदर्शन।

५—सम्राट् अकबर का गोस्वामी जी से साक्षात्कार और बन्दी किये जाने पर बन्दरों का उत्पात और गोस्वामीजी का छुटकारा।

६—वृन्दावन होते हुए वापिस काशी आगमन और नाभादास जी से गोस्वामीजी का मिलन।

७—वहाँ मदनगोपाल की मूर्ति को राम मूर्ति में परिवर्तित कर देना।

यह संपूर्ण वर्णन भक्तमाल की प्रियदास कृत टीकाके ११ छन्दों में आया है जो ५०८ वें छन्द से आरम्भ होता है और ५१८ वें छन्द पर समाप्त होता है।

तुलसी साहब द्वारा लिखित अपने पूर्व जन्म के वृत्त में गोस्वामी जी के सम्बन्ध में लिखा गया है कि :—

१—वे सं० १५८९ भाद्रपद शु० एकादशी मंगलवार को अपने पूर्व जन्म में गोस्वामी तुलसीदास के रूप में 'राजापुर' में उत्पन्न हुए थे।

२—कान्यकुब्ज ब्राह्मण कुल में उनका जन्म हुआ था।

३—वे अपनी स्त्री से बहुत प्रेम करते थे फिर भी साधु संगति भी किया करते थे।

४—सं० १६१४ श्रावण शु० अष्टमी को उन्हें ज्ञानोदय हुआ।

५—सं० १६१४ चैत्र शु० द्वादशी मंगलवार को वे काशी पहुँचे।

६—सं० १६१८ माघ शु० ११ मंगलवार को उन्होंने घट रामायण की रचना आरम्भ की पर विरोध के कारण वे उसे प्रकाशित न कर सके।

७—सं० १६३१ में रामचरित मानस की रचना की।

८—सं० १६८० श्रावण शु० सप्तमी को वरुणा के तट पर उनका स्वर्गवास हुआ।

मानस मयंक नामक रामचरित मानस की टीका में दिये गये गोस्वामी जी के जीवनवृत्त का उद्धरण देते हुए भी श्रीयुत इन्द्रदेव नारायण जी ने लिखा है कि—

श्री गोस्वामी जी की शिष्य परंपरा की चौथी पुश्त में काशी निवासी विद्वद्वर श्री शिवलाल जी पाठक हुए, जिन्होंने वाल्मीकीय रामायण पर संस्कृत भाष्य तथा व्याकरण आदि विषय पर भी अनेक ग्रन्थ निर्माण किये हैं। उन्होंने रामचरितमानस पर भी 'मानस मयंक' नामक तिलक रचा है। उसमें लिखा है—

मन अपर शर जानिये शर पर दीन्हे एक।
तुलसी प्रकटे रामवत् रामजन्म की टेक॥
सुने गुरु ने बीच शर सन्त बीच मन गान।
प्रकटे सत हत्तर परे, ताते कहे चिरान॥

अर्थात् १५५४ सं० में गोस्वामी जी प्रकट हुए और पाँच वर्ष की अवस्था में संतों से भी वही कथा सुनी। उन्होंने सतहत्तरवें वर्ष के बाद अठहत्तरवें वर्ष में रामचरितमानस की रचना आरम्भ की। उनकी अठहत्तर वर्ष की अवस्था सं १६३१ में थी और १६८० संवत् में वे परमधाम सिधारे। इस प्रकार १५५४ में ७७ जोड़ने से १६३१ सं० हुआ। सं० १५५४ वाँ साल मिलाकर अठहत्तर वर्ष की अवस्था गोस्वामी जी की थी जब मानस आरम्भ हुआ और १२७ वर्ष की दीर्घ आयु भोग कर गोस्वामी जी परम धाम सिधारे।

बाबा रघुवरदासकृत तुलसी चरित्र के कुछ पृष्ठ भी उक्त महोदय ने मर्यादा पत्रिका में प्रकाशित करवाये उनमें कवि के केवल विलास मात्र का वर्णन है।

इस प्रकार गोस्वामी जी के जीवन पर प्रकाश डालने वाली उपलब्ध संपूर्ण प्राचीन पुस्तकों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इन पुस्तकों में दिये गये वृत्तों में जहाँ बहुत कुछ साम्य है वहाँ वैषम्य भी कम नहीं। अतः इतिहास के विद्यार्थी के समक्ष प्रमुख प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इनमें से किस वृत्त को प्रामाणिक माना जाय? इसके लिये हम कह सकते हैं कि अंतरंग साक्ष्य के आधार पर दी गई सब घटना और तथा मानस मयंक भाषा व दोसौ बावन वैष्णवों की वार्ता में दी गई घटनाओं से बहुत अधिक साम्य होने के कारण तथा अन्य कई बातों को देखते हुए हमें बाबा वेणी माधव दास कृत 'मूल गुसाईं चरित' में दिये गए गोस्वामी जी के जीवन चरित को ही सर्वाधिक प्रामाणिक मानना चाहिये।

उत्तर काण्ड की विशेषताएँ

रामचरित मानस में उत्तर काण्ड का एक प्रमुख स्थान है। गोस्वामी जी ने शेष छहों काण्डों में कथा को प्रधानता दी है, किन्तु इस काण्ड में कथा तो गौण रूप से है और विचार या भाव ही प्रधानतया परिलक्षित हो रहे हैं। राजनीति, समाज, धर्म आदि सभी आवश्यकीय विषयों पर गोस्वामी जी ने इस काण्ड में अपने परम-प्रौढ़ विचार व्यक्त किये हैं जैसे कि———

राजनैतिक अवस्था

राजनीति का विवेचन करते हुए इस महा कवि ने उत्तर काण्ड में दोनों प्रकार के विचार पाठकों के सम्मुख उपस्थित किये हैं। एक तो यह कि गोस्वामी जी के समय में राजनैतिक अवस्थाएँ कैसी थीं और दूसरी यह कि श्रेष्ठ राज्य कैसा होना चाहिए। तात्कालिक राज-नैतिक अवस्था का चित्र उन्होंने कलि महिमा का वर्णन करते हुये निम्नांकित पंक्तियों में अंकित किया है :—

'नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दण्ड विडंब प्रजा नित ही ॥'
'कलि बारहि बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुःखी सब लोग मरैं ॥'

अर्थात् राजा लोग धर्म भावनाओं से हीन और पाप में लीन हैं, वे प्रजा पर नित्य नाना प्राकर के टैक्स लगाकर दण्ड दे दे कर उन्हें अपमानित

करते रहते हैं। बार बार अकाल पड़ते हैं और अन्न के बिना सब लोग दुखी हो कर मर रहे हैं।

यह तो हुआ तात्कालिक राजनैतिक अवस्था का एक संकेत। संक्षेप में यह कि उस समय का शासन सामान्यतया कोई विशेष बुरा न था, किन्तु शासक (मुगल सम्राट्) विधर्मी थे और पाप कर्म परायण थे, साथ ही जनता पर टैक्सों का भी बहुत अधिक बोझ था। राजनैतिक अवस्था के व्यवस्थित न होने के कारण बार बार दुर्भिक्ष आदि भी पड़ते थे। ऐसी अवस्था का परिहार कर श्रेष्ठ राज्य की स्थापना के लिये गोस्वामी जी ने राम राज्य का निम्न लिखित वर्णन किया है :—

'वर्णाश्रम निज धर्म निरत वेद पथ लोग।
चलहि सदा पावहि सुख नहि भय शोक न रोग॥
दण्ड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज।
जितहु मनहिं अस सुनिय जग, रामचन्द्र के राज॥

अल्प मृत्यु नहि कवनिउँ पीरा। सब सुन्दर सब निरुज शरीरा॥
नहि दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहि कोउ अबुध न लच्छन हीना॥

इस प्रकार राम के राज्य का वर्णन करते हुये कवि ऐसे आदर्श राज्य की स्थापना करना चाहता है जहां पर कोई किसी प्रकार का अपराध न करे और न किसी प्रकार का दण्ड ही मिले। सब लोग अपने अपने कर्म में लीन रहें। किसी को किसी प्रकार का भय, शोक और रोग न सतावे। राजा को ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि प्रजा के किसी भी व्यक्ति की छोटी अवस्था में मृत्यु न होने पाये। सब लोग निरोग रहें, किसी को भी बेकारी और गरीबी न सताये। जनता में अविद्या और निरक्षरता न हो, सब लोग साक्षर पढ़े लिखे विद्वान् हों। कोई भी व्यक्ति शिष्टाचार और सभ्यता के लक्षणों से रहित न हो, सभी नागरिकता के आवश्यक कर्तव्यों का पालन करने वाले हों।

इतना ही नहीं गोस्वामी जी के राजा राम अपने सभी सखा-सेवकों को अपने हाथों वस्त्राभूषणादि पहनाते हैं। और समय समय पर प्रजा जनों को एकत्रितकर उन्हें सदुपदेश भी देते हैं अतः सिद्ध होता है कि राजा को प्रजा के साथ सदा निकट सम्पर्क रखना चाहिए।

इन सब बातों को देखते हुए हम कह सकते हैं कि गोस्वामी जी ने आदर्श राम राज्य की समग्र विशेषताएं उत्तर काण्ड में अंकित कर दी हैं।

सामाजिक व्यवस्था

सामाजिक व्यवस्था का सुन्दर रूप भी इस महा कविने स्थान स्थान पर स्पष्ट रूप से दिखाया है। पहिले तो कलियुग वर्णन के प्रसंग में सामाजिक विपरता का चित्र अंकित किया है। और फिर चारों वर्णों, आश्रमों, राजा प्रजा आदि समाज के प्रत्येक अंग के कर्तव्यों पर पूरा प्रकाश डाला।

कागभुशुण्डि ने अपने पूर्व जन्मों का वृतान्त सुनाते हुए गुरु को नमस्कार न करने के कारण भगवान् शंकर का शाप देना और गुरु का फिर भी दया दिखाना आदि दृश्य उपस्थित करके तो गोस्वामी जी ने सामाजिक मर्यादा का बहुत सुन्दर आदर्श उपस्थित किया है।

उक्त दृश्य के द्वारा समाज के स्रष्टा इस क्रान्तदर्शी कवि ने स्पष्ट समझाया है कि छोटों को बड़ों के प्रति कभी अविनय नहीं दिखाना चाहिए। जो व्यक्ति अभिमान के कारण समाज की इस मर्यादा को तोड़ने का प्रयत्न करता है उसे अवश्य दण्ड मिलता है। इस के साथ बड़ों को भी अपने बड़प्पन का ध्यान रखते हुए सदा क्षमाशील बने रहना चाहिए।

अभिमानी शिष्य के प्रणाम न करने पर भी गुरु जी ने कुछ बुरा न माना और भगवान् शंकर के शाप दे देने पर उसके शाप का परिहार करवा दिया। यह है बड़े का बड़प्पन। समाज की सुख शान्ति और साम्य-भावना का इससे बढ़कर और क्या उदाहरण हो सकता है।

उत्तर कांड का कथा सार

आरम्भ में श्री गोस्वामी तुलसी दास जी ने मंगलाचरण करते हुए राज्याभिषेक के लिए प्रस्तुत भाइयों से युक्त भगवान् सीता राम की वन्दना कर भगवान् शंकर को नमस्कार किया।

पुरवासियों की प्रतीक्षा

अब भगवान् राम के वनवास से लौटने की चौदह वर्ष की अवधि में केवल एक दिन शेष रह गया है। इसलिए सभी पुरवासी लोग उत्सुकता पूर्वक भगवान् राम की प्रतीक्षा कर रहे हैं। भरत और कौशल्या आदि माताएं अनेक प्रकार के विचारों में मग्न हैं। इतने में वायु पुत्र राम दूत ने आकर यह शुभ समाचार दिया कि भगवान् राम आ रहे हैं। यह सुन कर भरत अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने पूछा कि वनवास में राम कभी मेरा भी स्मरण कर लेते थे। तो रामदूत ने कहा कि भगवान् राम आपको प्राणों से भी प्रिय हैं, और आप भगवान् राम को अत्याधिक प्रिय हैं। यह सुन कर भरत जी प्रसन्नता पूर्वक नन्दी ग्राम से अयोध्या में आ पहुँचे। माताओं ने राम का आगमन सुन कर उनकी आरती उतारने के लिए आरतियाँ सजाईं और नगर से बाहर जाने की तैयारियाँ आरम्भ कर दी। सब लोगों ने शहर से बाहर जाकर भगवान् राम का बड़े प्रेम से स्वागत किया। और सब लोगों से राम भी बड़े प्रेम के साथ मिले। गुरुजनों के चरणों में प्रणाम किया। सब भाइयों से भी वह बड़े प्रेम से मिले। इधर प्रजा का प्रत्येक व्यक्ति भगवान् राम से गले मिलना चाहता था, इसलिए जनता की उत्सुकता को देखकर भगवान राम ने एक बड़ा आश्चर्य जनक कौतुक कर दिखाया। वहाँ जितने भी मनुष्य उपस्थित थे भगवान् ने उतने ही रूप धारण कर लिये और प्रत्येक व्यक्ति से अलग २ एक ही समय में गले मिल लिये। भगवान् राम के इस आश्चर्य जनक वृतान्त को कोई भी जान नहीं सका। भगवान् ने उधर पुष्पक विमान को अपने स्वामी कुबेर के पास जाने की आज्ञा दे दी। इस प्रकार भगवान् राम गुरु वशिष्ठ, वामदेव आदि पूज्य जनों कौशल्या, सुमित्रा, कैकयी आदि माताओं एवं भरत, शत्रुघ्न दोनों भाइयों

तथा प्रजा वर्ग को मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। माताएँ राम पर अनेक बहुमूल्य रत्नादि पदार्थ न्योछावर कर रही थीं। इस प्रकार सभी भाई, माता पुत्र, गुरु, शिष्य आदि आपस में मिल कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। और सर्वत्र बधाइयों के बाजे बजने लगे। इस प्रकार बड़े आनन्द और उत्साह के साथ, रामचन्द्र आदि सब भाई राज महलों में पहुँचे।

भगवान् राम का राज्याभिषेक

राम के अयोध्या में आजाने पर गुरु वसिष्ठ जी ने सब ब्राह्मणों को बुला-कर कहा कि आप लोग आज्ञा दें कि भगवान् राम राज्य सिंहासन पर बैठें तब सब ब्राह्मणों ने प्रसन्नता पूर्वक महर्षि वसिष्ठ से निवेदन किया कि अब भगवान् राम का राज्याभिषेक करने में देर नहीं लगानी चाहिये, इसलिए वसिष्ठ जी ने अनेक दूत भेज कर सभी देशों से मांगलिक द्रव्य मँगा लिये और अयोध्या को सजाया जाने लगा। तब भगवान् राम ने आज्ञा दी कि मेरे युद्ध के सहायक सब सखाओं को स्नान आदि करवाओ। यह सुन कर सुग्रीव, हनुमान् आदि सभी राम सखाओं को स्नानादि करवा दिया गया। तत्पश्चात् भगवान् राम ने भरत को बुलाकर अपने हाथों से उनकी जटाएँ खोली, और फिर अपनी जटाएँ खोलकर स्ना-नादि किया। उधर कौशल्या आदि सासों ने जानकी को स्नानादि कराकर दिव्य वस्त्राभूषणादि पहनाये। राम के वाम भाग में बैठी हुई जानकी अत्यन्त सुशोभित होने लगीं। सबसे पहले वशिष्ठ ऋषि ने तिलक किया फिर सब ब्राह्मणों ने अशीर्वाद दिया। माताएँ इस दृश्य को देख २ कर प्रसन्न हो रही थीं, और आरती उतारने लगीं। इस अवसर पर ब्राह्मणों को इतना दान दिया गया कि वह सदा के लिए अयाचक हो गये। आकाश में देवता लोग दुन्दुभी बजाते हुए आनन्द के गीत गाने लगे। सब देवता लोग अनेक प्रकार से स्तुतियाँ कर अपने २ स्थानों पर चले गये। राम के राज्याभिषेक की शोभा का वर्णन सरस्वती और शेषनाग भी नहीं कर सकते राज्याभिषेक की समाप्ति के अनतर देवता लोग विदा हो गये तो इतने में वेद स्तुति गाने वाले वन्दियों का वेष धारण कर वहाँ आ पहुंचे।

वेद स्तुति

जब वेदों ने भगवान् राम की स्तुति की कि हे निर्गुण ! निराकार होते हुए भी सगुण साकार रूप धारण करने वाले राजाओं के शिरोमणि भगवन् आपकी जय हो। आपने अपने प्रचण्ड पराक्रम से रावण आदि राक्षसों का नाश कर दिया और मनुष्य अवतार धारण कर संसार के भार को उतार दिया। जो लोग आपकी भक्ति नहीं करते वह देवताओं से दुर्लभ पद पाकर भी पतित हो जाते हैं ऐसा हमने देखा है। और इसके विपरीत आपके भक्त केवल आपका स्मरण करके ही संसार से पार हो जाते हैं। आपके चरण कमलों को छूकर अहल्या का उद्धार हो गया है और आप के चरणों से ही गंगा निकली है हम आपके चरणों का नित्य स्मरण करते हैं। हे संसार रूपी वृक्ष के मूलाधार भगवन् हम आपको नित्य नमस्कार करते हैं।

जो लोग ईश्वर को निराकार मानते हैं। वह भले ही माना करें, किन्तु हम तो मन वचन, कर्म से आप ही का भजन करते हैं। इस प्रकार वेद सब के समक्ष भगवान् राम की स्तुति करके ब्रह्म लोक में चले गये तब भगवान् शंकर वहाँ आ पहुंचे।

शंकरकृत स्तुति

तब भगवान् शंकर प्रभु श्री राम की स्तुति करते हुए कहने लगे कि हे रावण का नाश करने वाले ! पृथ्वी का भार उतारने वाले ! प्रभु आपकी जय हो। मद मोह और ममता की रात्रि का नाश करने के लिये आप सूर्य रूप हैं। आपने काम रूपी किरात का नाश कर डाला। जो लोग संसार के दुःखों से दुखित रहते हैं वे इसलिये दुःखी है, कि वे आपके चरणों की भक्ति नहीं करते। जिन लोगों को संसार के माया मोह व्याप्त नहीं करते और राग और द्वेष से परे रहते हैं; उन्हें सांसारिक दुःख भी नहीं सताते। इसी-लिये ऐसे निर्लिप्त मुनि लोग आपके चरणों की सदा उपासना किया करते हैं। हे भगवन् आपकी बार-बार जय हो।

इस प्रकार स्तुति करके भगवान् शंकर कैलाश को चले गये।

सुग्रीव अंगद आदि को विदा करना

भगवान् शंकर के चले जाने पर भगवान् राम ने अपने सखाओं विभीषण आदि को बुलाया और उन्हें सुन्दर वस्त्राभूषणादि पहनाये और ब्राह्मणों को भी बहुतसा दान दिया। इस प्रकार राज्याभिषेकके अनन्तर छः मास बीतगये। विभीषणादि को इतना समय बीत जाने का कुछ भी अनुभव न हुआ तब भगवान् इन सब सखाओं को बुला कर कहा आपको घरसे विदा हुए बहुत दिन हो गये हैं। यद्यपि आप लोग मुझे भरत से भी अत्यधिक प्रिय हैं, और मुझे अपने दास सबसे अधिक भाते हैं, फिर भी आप लोगों को घर की भी सुध आती होगी। इसलिए अब आप लोग अपने-अपने घर के लिए प्रस्थान कर सकते हैं। यह सुन कर विभीषणादि सभी अत्यन्त चकित और तन्मय होकर चुप-चाप भगवान् की ओर निहारते रह गये। तब भगवान् ने अनेक प्रकार के वस्त्राभूषण मंगा कर सर्व प्रथम सुग्रीव को पहनाये। फिर विभीषण को पहनाये किन्तु अंगद चुप-चाप बैठा रहा और अन्त में हाथ जोड़ कर कहने लगा कि मुझे तो आप अपनी सेवा में ही रख लिजीये। यह सुन कर भगवान् ने उन्हें गले से लगा लिया और अपने हृदय की माला और वस्त्र उसे पहना कर समझा बुझा कर विदा किया। हनुमान् ने चलते समय सुग्रीव जी से प्रार्थना की कि मैं कुछ समय भगवान् राम की सेवा में रह कर फिर आपके पास आ पहुँचूँगा। तब सुग्रीव ने इसकी सहर्ष अनुमति दी कि हे सौभाग्यशाली हनुमान् जी तुम सदा भगवान् की सेवा करते रहो। चलते समय अंगद ने हनुमान् जी से कहा कि भगवान् को कभी २ मेरा भी स्मरण कराते रहना।

राम-राज्य

भगवान् राम के राज्य में किसी का किसी से विरोध नहीं था। और सब भेद-भाव नष्ट हो गये थे, सभी वर्ण और आश्रम अपने अपने कर्तव्य पर निरत थे, किसी को किसी प्रकार का दुःख नहीं था! सभी आपस में बड़े प्रेम से रहते थे धर्म अपने चारों चरणों पर था, किसी की भी छोटी अवस्था में मृत्यु नहीं होती थी। सभी मनुष्य विद्वान् और निष्कपट थे, सातों समुद्र पर्यन्त पृथ्वी के भगवान् रामचन्द्र ही एक मात्र सम्राट् थे।

भगवान् राम के राज्य में सभी लोग उदार, परोपकारी, ब्राह्मणों के भक्त और एक-पत्निव्रत का पालन करने वाले थे, राम के राज्य में क्योंकि कोई कुछ अपराध नहीं करता था। इसलिये दण्ड भी किसी को नहीं मिलता था। फलतः दण्ड शब्द केवल सन्यासियों के हाथों के दण्डों में ही प्रयुक्त होता था। वृक्ष सदा फलते-फूलते रहते तथा शेर और बकरी एक घाट पर पानी पीते थे, पृथ्वी सदा खेती से लह लहाती और त्रेता युग में भी सतयुग से शुभ लक्षण दिखाई देते थे। नदियों में सदा जल भरा रहता था, समुद्र अपनी मर्यादा में रहते थे। और तालाब सदा कमलों से सुशोभित तथा चन्द्रमा सम्पूर्ण कलाओं से युक्त होकर मनुष्यों को प्रसन्न करता रहता था। जब भी वर्षा की आवश्यकता होती तभी वर्षा हो जाया करती थी। भगवान् राम ने अनेक अश्वमेध यज्ञ किये और ब्राह्मणों को बहुत से दान दिये। सीता का व्यवहार सब के प्रति अत्यन्त स्नेह मय था, और वह सब काम अपने हाथों से करती थीं, गुरुजनों की सेवा तो उनका मुख्य धर्म ही था। तीनों भाई भी राम की सेवा में निरत थे। रामचन्द्र भी अपने सभी भाइयों पर सदा स्नेह-शील रहते और उन्हें नाना प्रकार के उपदेश देते रहते। प्रजा की प्रसन्नता का भी कोई ठिकाना नहीं था।

भगवान् राम के दर्शनों के लिये अनेक ऋषि, महर्षि, देवता व मुनि गण आया करते थे देश में सर्वत्र बाग बगीचे और तालाब आदि सुशोभित हो रहे थे सरयू नदी का जल तो अत्यन्त ही सुन्दर था लोग सब विद्वान् और राम के गुणगान में लीन थे किसी को भी किसी प्रकार का कोई शोक आदि नहीं था। एक समय सनक, सनन्दन सनतकुमार आदि चारों ऋषि राम के दर्शनों के लिये आये और वे राम के दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्न हुये। भगवान् राम ने भी कहा कि मैं आपके दर्शनों से कृत कृत्य हो गया हूँ।

सनकादि कृत राम स्तुति

तब सनक सनन्दन आदि ऋषि कुमार भगवान् राम की स्तुति करते हुए कहने लगे कि हे निगुण होते हुए भी गुणों के भंडार मद मान मोह से रहित होकर भी दूसरे का मान बढ़ाने वाले सर्वव्यापक सच्चिदानन्द स्वरूप भगवन् आपकी जय हो। आप हमें अपने चरणों की अटल

भक्ति दीजिये। हे भगवन् आप वेद की मर्यादा के रक्षक हैं और भक्तों का उद्धार करने वाले हैं। इस प्रकार भगवान् की बार २ स्तुति करके और मन चाहा वर प्राप्त करके वे ब्रह्मलोक को चले गये।

हनुमान् जी की शंका और उसका समाधान

सनकादि के ब्रह्म लोक चले जाने पर एक बार तीनों भाई भगवान् राम से अपनी कुछ शंका निवारण करना चाहते थे। किन्तु संकोच के कारण कोई कुछ पूछने का साहस नहीं कर पाता, इसलिये हनुमान् जी ने अन्त में हाथ जोड़ कर विनय की कि हे भगवन्! भरत जी आपसे कुछ पूछना चाहते हैं। तब भगवान् ने उत्तर दिया कि भरत तो मेरे अपने ही स्वरूप हैं। जो चाहें वह पूछ लें तब भरत जी ने कहा कि वेद शास्त्रों में सन्तों की बड़ी महिमा गाई गई है। किन्तु सन्त असन्त में क्या अन्तर है। इसलिए कृपा करके मुझे सन्तों और असन्तों के लक्षण बता दीजिये।

सन्त और असन्त लक्षण

तब भगवान् ने सन्तों और असन्तों के निम्न लिखित लक्षण बतायें ——सज्जनों का स्वभाव चन्दन के समान होता है जो अपना नाश करने वाले दुष्ट रूपी कुल्हाड़े को भी अपनी सुगन्धि से सुगन्धित कर देते हैं। उनके लिये शत्रु मित्र सब एक समान होते हैं और किसी का भी कभी बुरा नहीं सोचते शान्ति और सन्तोष के तो वे भंडार ही होते हैं। प्रभु के चरणों में उनका सदा अटल विश्वास रहता है।

अब दुष्टों के भी कुछ लक्षण सुन लो दुष्ट मनुष्य दूसरे की सम्पत्ति को देख कर बहुत जलते हैं। और दूसरे की निन्दा सुनकर बहुत प्रसन्न होते हैं।

वे अकारण ही दूसरों की हानि करते हैं और सदा कुछ सोचते रहते हैं वे परस्त्री, परधन और पर निन्दा में सदा तन्मय रहते हैं। किसी की प्रशंसा सुन कर इतने दुखी होते हैं, मानों उन्हें बुखार चढ़ गया हो, वह माता पिता गुरु और ब्राह्मणों की कुछ पर्वाह नहीं करते और वेदों की निन्दा करते हैं। हे भाई! ऐसे दुष्टों के लिए मैं काल रूप हूँ, वास्तव में यह सब गुण

दोष माया से उत्पन्न होने वाले हैं। माया के कारण मनुष्य इन सब चक्करों में पड़ता है।

श्री राम का प्रजाजनों को उपदेश

इस प्रकार अपने भाइयों के सज्जनों और असज्जनों के लक्षण बता कर भगवान् राम ने एक बार सब प्रजा के लोगों को एक सभा में एकत्रित किया और उन्हें उपदेश दिया कि,—हे भाइयो मनुष्य शरीर बड़ा दुर्लभ है। इसलिये आप लोगों को चाहिए कि, आप विषय वासना रूपी विष को छोड़कर सदाचार रूपी अमृत का पान करते रहो मनुष्य चौरासी लाख योनियों में भटकने के पश्चात् बड़ा कठिनता से मनुष्य जन्म प्राप्त करता है इसलिये इस शरीर का लाभ उठाना चाहिए और प्रभु की भक्ति रूपी नाव का सहारा लेकर पार हो जाना चाहिए। संसार में यही सबसे बड़ा सौभाग्य है कि मनुष्य मन वचन कर्म से ब्राह्मणों के चरणों में श्रद्धा भक्ति रक्खे। मैं एक और रहस्य की बात सब को बता देना चाहता हूँ भगवान् शंकर की भक्ति के बिना कभी किसी का कल्याण नहीं हो सकता, इसलिये सबको अटल निष्ठा के साथ शिवजी का भजन करना चाहिए, जो लोग सर्वत्र समदर्शी हैं, और सदा प्रभु पर विश्वास रखते हैं उनका सदा कल्याण होता है। श्रीराम के इन वचनों को सुन कर सब लोग बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे कि आप के समान बिना कारण उपकार करने वाला दूसरा कौन हो सकता है? वशिष्ठ आदि ऋषियों ने भी भगवान् राम की बड़ी सराहना की।

नारद कृत श्री राम स्तुति

एक बार हनुमान् जी तथा अपने भाइयों के साथ भगवान् राम बाग में सैर करने के लिए आए हुए थे कि इतने में नारद जी वहाँ आ पहुँचे उन्होंने भगवान् राम की इस प्रकार स्तुति की—हे दुष्टों का नाश करने वाले और सज्जनों का पालन करने वाले रावण के कालस्वरूप भगवन्! आपकी जय हो, वेद शास्त्र आदि सब आपका यश गाते हैं आप का नाम लेते ही भक्तों के सब पाप नष्ट हो जाते हैं इस प्रकार स्तुति कर नारद जी ब्रह्म लोक को चले गये। तब शिव जी ने यह सब कथा सुनाते हुए पार्वती जी से कहा कि हे

प्रिये ! मैंने तुम्हें यह रामचरित सुनाया अब और तुम क्या जानना चाहती हो । तब पार्वती ने कहा हे प्रभो ! आप ने कहा कि यह कथा कागभुशुंडी जी ने गरुड़ को सुनाई थी सो ऐसे ज्ञानी राम भक्त को कौवे का शरीर क्यों प्राप्त हुआ और उस कौवे को राम की भक्ति भी किस प्रकार प्राप्त हो गई आप यह सब कथा विस्तार पूर्वक मुझे कह सुनाइये ।

गरुड़ और काग भुशुण्डि की कथा

तब शिव जी ने कहा कि हे प्रिये ! तुम अपने पिछले जन्म में जब तुम अपने पिता दक्ष प्रजा पति के यज्ञ में जल कर भस्म हो गई थीं तो मैं तुम्हारे विरह में दुखी हो कर सुमेरु पर्वत पर जा पहुँचा वहाँ पर कागभुशुण्डी जी नित्य राम की कथा प्रभु भक्ति तथा योगाभ्यास में लीन रहते थे । राम की कथा को वहाँ के सब पक्षी सुन कर सब प्रसन्न होते थे मैं भी कुछ समय वहाँ रह कर वापिस कैलाश लौट आया अब तुम्हें काग भुशुण्डी और गरुड़ जी की कथा विस्तार पूर्वक कहता हूँ ।

मेघनाद के नागपाश में बँधे हुए श्री राम के पाशों को काट कर गरुड़ जी जब वापिस विष्णु लोक को लौट रहे थे तो उनके हृदय में यह सन्देह उत्पन्न हुआ कि परब्रह्म परमात्मा श्री राम नाग पाश में कैसे जकड़ गये उन्होंने अपना यह सन्देह नारद जी को कह सुनाया नारद जी ने कहा कि आपके सन्देह का निवारण ब्रह्मा जी कर देंगे तब ब्रह्मा जी ने कहा कि तुम शिव जी के पास जाओ । तब वह मेरे पास आये मैंने उन्हें कहा कि तुम काग भुशुंडी के पास जाओ । वह तुम्हारे सब सन्देहों का निवारण कर देंगे । यह सुनकर वह काग भुशुंडी के पास पहुँचे काग भुशुंडी जी ने उनके सन्देह को दूर करने के लिये अपने अनेक जन्मों की कथा उन्हें सुनाई और अनेक प्रकार से उन्हें समझाया और रामचन्द्र जी के सम्पूर्ण जीवन की कथा अर्थात् सम्पूर्ण रामायण भी कह सुनाई । किन्तु गरुड़ जी ने फिर पूछा कि माया के वश में सारा संसार है किन्तु श्री राम जी तो माया के स्वामी हैं वे उस माया के वश में क्यों हुए । तब कागभुशुण्डी जी ने उत्तर दिया कि यह मनुष्य को भ्रम हो जाता है जो भगवान् को माया के वश में समझता

है वास्तव में वे माया के वश में नहीं होते। और भक्तों को जो कष्ट होते हैं वे भी उन्हें सन्मार्ग में लाने के लिये ही होते हैं।

इनके पश्चात् उन्होंने बताया कि एक बार मैं (काग भुशुण्डी) बचपन में श्री राम की लीला देख रहा था प्रति दिन मैं उनकी बाल लीलाओं को देख कर प्रसन्न हुआ करता था, तब एक बार भगवान् ने यह आश्चर्य दिखाया कि भगवान् ने मुझे पकड़ने के लिए अपनी बाहें फैलाईं तो मैं दूर भागने लगा! मैं ज्यों ज्यों दूर भागता था राम चन्द्र जी की बाहें भी उतनी ही लम्बी होती जाती थीं। अन्त में मैंने घबरा कर आँखें बन्द कर ली, तो मैं वापस अयोध्या में आ पहुँचा और उनके मुख में हो कर पेट में जा पहुँचा वहाँ पर श्रीराम के पेट में अनन्त देवी देवता, आदि देख कर मैं चकित हो गया। किन्तु इस महिमा को और इस आश्चर्य जनक कार्य को दूसरा और कोई नहीं जान सका। बाहर आने पर मैं भगवान् के पेट में देखी हुई लीलाओं को देख कर बड़ा भयभीत और चकित हो रहा था, तब भगवान् ने मेरे मस्तक पर हाथ फेर कर मेरी सब व्याकुलता को दूर कर दिया। इस पर मैं भगवान् की बड़ी स्तुति करने लगा मेरी स्तुति से प्रसन्न हो कर श्रीरामचन्द्र जी ने मुझे वर मांगने के लिये कहा तब मैंने उनसे प्रभु भक्ति का ही वर मांगा और साथ ही मैं कहा कि हे भगवन् मैं जन्म जन्मान्तरों तक आपका भक्त बना रहूँ। श्री रामचन्द्र जी ने भी अपनी भक्ति का बड़ा विस्तार पूर्वक वर्णन किया। हे गरुड़ जी! उस समय के पश्चात् मुझे फिर कभी मोह नहीं हुआ। इस प्रकार वर्णन कर काग भुशुण्डी जी ने बहुत-सी ज्ञान विज्ञान की बातें कहीं।

काग भुशुण्डी जी के कौवा होने की कथा

इतनी कथा सुनकर गरुड़ जी ने काग भुशुण्डि जी से पूछा कि आप ने इतने ज्ञानी हो कर भी यह कौवे का शरीर किस प्रकार प्राप्त किया। और आपके आश्रम में आते ही मेरा मोह नष्ट हो गया इसका क्या कारण है?

तब काग भुशुण्डी जी ने उत्तर दिया कि आप के इस प्रश्न करने पर मुझे अपने अनेक जन्मों का स्मरण हो आया है अब मैं आपको कुछ पूर्व जन्मों की कथा विस्तार पूर्वक कहता हूँ। एक बार कलियुग का भयंकर काल था। उस

समय में पहले कुछ दिन अयोध्या में रहकर वहाँ अकाल पड़जाने के कारण उज्जैन चला गया। वहाँ एक विद्वान् ब्राह्मण के पास रहने लगा, वे भी मुझे अपने पुत्र के समान विद्या पढ़ाने लगे। एक बार मैं शिवजी के मन्दिर में बैठा हुआ भजन कर रहा था। कि वहाँ पर मेरे गुरु जी आ पहुँचे मैंने उन्हें अभिमान के कारण उठकर प्रणाम नहीं किया। इस पर क्षमा शील गुरु जी ने तो कुछ ध्यान नहीं दिया किन्तु भगवान् शंकर को मेरी यह धृष्टता सहन नहीं हुई। इसलिये शिवजी ने मुझे शाप दे दिया और मन्दिर में यह आकाश वाणी सुनाई दी कि —

'हे अभागे मूर्ख अभिमानी यद्यपि तेरे गुरुजी तो दयालु हैं इसलिये उनका सम्मान न करने पर भी वे क्रोधित नहीं हुए, फिर भी मैं तुझे शाप देता हूँ, क्योंकि नीति के विरुद्ध कार्य मुझे अच्छे नहीं लगते यदि मैं तुझे दण्ड नहीं दूँगा तो वेद की मर्यादा की रक्षा न हो सकेगी। इसलिये गुरुका अपमान करने- वाले की जो गति होती है वही तेरी होगी, तू साँप बन कर इस बड़े वृक्ष के खोखले में जाकर पड़ा रहेगा। और फिर दस हजार जन्म तक पक्षी आदि की योनियों में भटकता और दुःख पाता रहेगा।'

गुरुजी इस भयंकर शाप को सुनकर भगवान् शंकर की स्तुति करने लगे कि —

हे मोक्ष स्वरूप व्यापक सर्वशक्तिमान्, कृपालु, दयाके-सागर, चन्द्र शेखर भगवान् शंकर आप कृपा करें और प्रसन्न हों जब तक मनुष्य पार्वतीपति भगवान् शंकर की उपासना नहीं करता तब तक उसे सुख-शान्ति नहीं मिल सकती। इसलिये हे प्रभु आप प्रसन्न होकर कृपा करें। और इस अज्ञानी जीव पर क्रोध न करें और ऐसी कृपा करें कि शीघ्र ही यह शाप मुक्त हो जायें। उस दयालु ब्राह्मण की इस परोपकारी भावना को सुनकर फिर आकाश वाणी नें 'तथास्तु' कहते हुये घोषणा की कि यद्यपि इसने बड़ा भारी पाप किया है और मैंने भी इसे सोच समझ कर ही शाप दिया है फिर भी तुम्हारी प्रार्थना के कारण इसके शाप का परिहार किये देता हूँ। यद्यपि मेरा पहला दिया हुआ शाप सर्वथा नहीं मिट

सकता। इसलिये इसको हजार जन्म तो अवश्य लेने पड़ेंगे।

किन्तु इसे जन्म मरण के जो दुःख होते हैं वे नहीं होंगे। और किसी भी जन्म में इसका ज्ञान नष्ट नहीं होगा। इसबार तो ब्राह्मण की कृपा से शाप का परिहार हो गया है पर भविष्य में कभी ब्राह्मणों का अपमान न करना। ब्राह्मणों की सेवा से ही भगवान् प्रसन्न होते हैं। इन्द्रके वज्र, मेरे त्रिशूल, और विष्णु के चक्र से भी जो नहीं मर सकता वह भी ब्राह्मण की विद्रोह रूपी अग्नि में भस्म हो जाता है। इसलिये ब्राह्मण से कदापि द्रोह न करना चाहिये।

इस प्रकार हे गुरुड़ जी! मैंने अनेक जन्म लिये और सभी में मेरा ज्ञान बना रहा, अन्त में मैंने ब्राह्मण का शरीर प्राप्त किया। उस जन्म में लोमश ऋषि के आश्रम में पहुंचा, ऋषि ने मुझे अपने आने का कारण पूछा, जब मैंने रामचन्द्र जी की भक्ति की महिमा सुनाई तो महर्षि ने मुझे निर्गुण का उपदेश देना शुरू किया। इस प्रकार मेरी और उनकी साकार और निराकार के सम्बन्ध में बहस बढ़ने लगी। अन्त में मुनि ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर मुझे शाप दिया कि तू कौवे के समान कुतर्क करता है इसलिये जा कौवा होजा। यह सुनकर मुझे कुछ भी दुःख नहीं हुआ, क्योंकि मैं सत्य मार्ग पर था और भगवान् राम के प्रति मेरी निष्ठा को देखकर और यह जान कर कि कौवे का शरीर धारण करके भी मैं प्रसन्न हूँ। मुझे उन्होंने सान्त्वना दी और भगवान् राम का बाल रूप दिखाया, सब भगवान् राम की सारी कथा कह कर मुझे सन्तुष्ट किया और आशीर्वाद दिया कि तेरे हृदय में सदा राम की भक्ति बनी रहेगी। तू जहाँ रहेगा वहाँ चार कोस तक किसी को अज्ञान नहीं सतायेगा। तू जो चाहेगा वही हो जायगा। मैंने राम भक्ति की परीक्षा लेने के लिये ही तुझे शाप दिया था।

इस प्रकार कौवे का शरीर पाकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। और अब राम भक्ति में लीन रहकर अपना सम्पूर्ण समय सदा सत्संग में बिताता हूँ। अब मुझे यह शरीर इतना प्रिय हो गया है कि मैं इसे छोड़ना ही नहीं चाहता।

काग भुशुण्डी जी ने इस प्रकार अपने पूर्व जन्मों की तथा काग शरीर धारण करने की सम्पूर्ण कथा कह सुनाई। इस कथा में प्रसङ्ग वश कलीयुग की कुछ विशेषताओं का भी उन्होंने विस्तार पूर्वक वर्णन किया। जिसका उल्लेख आगे किया जाता है।

कलि महिमा

कलि युग के दोषों के कारण सब वास्तविक धर्म नष्ट हो गये हैं और कपटियों ने अपने नये-नये पन्थ चला लिये हैं। और वर्णाश्रम धर्म नष्ट हो गये हैं। ढोंगी साधू ही तपस्वी कहलाते हैं सभी मनुष्य स्त्रियों के वश में होकर उनके इशारों पर बन्दर के समान नाचते हैं। शूद्र गले में जनेऊ डाल कर दान लेते और ब्राह्मणों को उपदेश देते हैं। और उनसे बहस करते हैं कि हम तुमसे कौन से कम हैं, सुहागिनी स्त्रियों के तो गहने नहीं हैं और विधवाएं नित्य नये शृंगार किये रहती हैं सभी लोग ब्रह्म ज्ञान के सिवाय कोई बात ही नहीं करते (शूद्र तेली, कुम्हार, नाई आदि) सभी छोटी जाति के लोगों की जब स्त्री मर जाती है या सम्पत्ति नष्ट हो जाती है तो वे मूंड़ मुंडाकर सन्यासी हो जाते हैं और ब्राह्मणों से अपने पाँव पुजवाते हैं। उधर ब्राह्मण भी इस युग में मूर्ख और लालची हो गये हैं, साधू सन्यासी अपने बड़े-बड़े महल बना कर धनवान् बने बैठे हैं। किन्तु गृहस्थी बेचारे गरीब और दुःखी हैं। पुत्र तभी तक माता पिता को मानते हैं जब तक कि उन्हें स्त्री का मुख नहीं दिखाई देता। राजा लोग भी बड़े पापी और अत्याचारी हो गये हैं, वे प्रजा से नाना प्रकार के टैक्स लेते रहते हैं। जो धनवान् है लोग उसी को कुलीन समझते हैं। और जिसने जनेऊ पहन लिया वही अपने आपको ब्राह्मण कहता है स्त्रियों के केवल मात्र बाल ही शृंगार रह गये हैं। लोग अकारण ही आपस में लड़ते हैं। इनकी आयु तो केवल पन्द्रह वर्ष की छोटी-सी ही पर अभिमान इतना है कि मानों कभी मरेंगे ही नहीं। सभी लोग अपने अपने शरीर के पालन पोषण में ही लगे हुए हैं।

श्रीगणेशाय नमः

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

रामचरितमानस

(सप्तम सोपान)

उत्तरकाण्ड

श्लोकाः

केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं,
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम् ।
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं,
नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम् ॥१॥

मयूर –मोर– के कण्ठ के समान नील वर्ण वाले, देवताओं में श्रेष्ठ, ब्राह्मण (भृगुजी) के चरण कमल के चिह्न से विलसित, शोभा से पूर्ण, पीत वस्त्र धारण किये हुए, कमल नेत्र, सदैव प्रसन्न मुख मुद्रा वाले, हाथ में धनुष और बाण धारण किये हुए, वानरों के समूह से युक्त, भाई लक्ष्मण जी से सेवित, स्तुति करने के योग्य, पुष्पक विमान पर आरूढ़ रघुवंश श्रेष्ठ श्री जानकी जी के पति, श्री रामचन्द्र जी को मैं सर्वदा नमस्कार करता हूँ ॥१॥

कोशलेन्द्रपदकञ्जमञ्जुलौ, कोमलावजमहेशवन्दितौ ।
जानकीकरसरोजलालितौ, चिन्तकस्य मनभृङ्गसङ्गिनौ ॥२॥

ब्रह्मा और महेश (शिव) द्वारा वन्दित, सीता जी के कर कमलों द्वारा लालित, चिन्तन–ध्यान–करनेवाले भक्त जनों के मन रूपी भौंरों के संगी, कोशलपुरी (अयोध्या), के स्वामी, श्री रामचन्द्र जी के सुन्दर और कोमल दोनों चरण कमलों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२॥

काग भुशुण्डी जी ने इस प्रकार अपने पूर्व जन्मों की तथा काग शरीर धारण करने की सम्पूर्ण कथा कह सुनाई। इस कथा में प्रसङ्ग वश कलीयुग की कुछ विशेषताओं का भी उन्होंने विस्तार पूर्वक वर्णन किया। जिसका उल्लेख आगे किया जाता है।

कलि महिमा

कलि युग के दोषों के कारण सब वास्तविक धर्म नष्ट हो गये हैं और कपटियों ने अपने नये-नये पन्थ चला लिये हैं। और वर्णाश्रम धर्म नष्ट हो गये हैं। ढोंगी साधू ही तपस्वी कहलाते हैं सभी मनुष्य स्त्रियों के वश में होकर उनके इशारों पर बन्दर के समान नाचते हैं। शूद्र गले में जनेऊ डाल कर दान लेते और ब्राह्मणों को उपदेश देते हैं। और उनसे बहस करते हैं कि हम तुमसे कौन से कम हैं, सुहागिनी स्त्रियों के तो गहने नहीं हैं और विधवाएं नित्य नये श्रृंगार किये रहती हैं सभी लोग ब्रह्म ज्ञान के सिवाय कोई बात ही नहीं करते (शूद्र तेली, कुम्हार, नाई आदि) सभी छोटी जाति के लोगों की जब स्त्री मर जाती है या सम्पत्ति नष्ट हो जाती है तो वे मूड़ मुंडाकर सन्यासी हो जाते हैं और ब्राह्मणों से अपने पाँव पुजवाते हैं। उधर ब्राह्मण भी इस युग में मूर्ख और लालची हो गये हैं, साधू सन्यासी अपने बड़े-बड़े महल बना कर धनवान् बने बैठे हैं। किन्तु गृहस्थी बेचारे गरीब और दुःखी हैं। पुत्र तभी तक माता पिता को मानते हैं जब तक कि उन्हें स्त्री का मुख नहीं दिखाई देता। राजा लोग भी बड़े पापी और अत्याचारी हो गये हैं, वे प्रजा से नाना प्रकार के टैक्स लेते रहते हैं। जो धनवान् है लोग उसी को कुलीन समझते हैं। और जिसने जनेऊ पहन लिया वही अपने आपको ब्राह्मण कहता है स्त्रियों के केवल मात्र बाल ही श्रृंगार रह गये हैं। लोग अकारण ही आपस में लड़ते हैं। इनकी आयु तो केवल पन्द्रह वर्ष की छोटी-सी ही पर अभिमान इतना है कि मानो कभी मरेंगे ही नहीं। सभी लोग अपने अपने शरीर के पालन पोषण में ही लगे हुए हैं।

श्रीगणेशाय नमः

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

रामचरितमानस

(सप्तम सोपान)

उत्तरकाण्ड

श्लोकाः

केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं,
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम्।
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं,
नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम् ॥१॥

मयूर -मोर- के कण्ठ के समान नील वर्ण वाले, देवताओं में श्रेष्ठ, ब्राह्मण (भृगुजी) के चरण कमल के चिह्न से विलसित, शोभा से पूर्ण, पीत वस्त्र धारण किये हुए, कमल नेत्र, सदैव प्रसन्न मुख मुद्रा वाले, हाथ में धनुष और बाण धारण किये हुए, वानरों के समूह से युक्त, भाई लक्ष्मण जी से सेवित, स्तुति करने के योग्य, पुष्पक विमान पर आरूढ़ रघुवंश श्रेष्ठ श्री जानकी जी के पति, श्री रामचन्द्र जी को मैं सर्वदा नमस्कार करता हूँ ॥१॥

कोशलेन्द्रपदकञ्जमञ्जुलौ, कोमलावजमहेशवन्दितौ।
जानकीकरसरोजलालितौ, चिन्तकस्य मनभृङ्गसङ्गिनौ ॥२॥

ब्रह्मा और महेश (शिव) द्वारा वन्दित, सीता जी के कर कमलों द्वारा लालित, चिन्तन-ध्यान-करनेवाले भक्त जनों के मन रूपी भौंरों के संगी, कोशलपुरी (अयोध्या) के स्वामी, श्री रामचन्द्र जी के सुन्दर और कोमल दोनों चरण कमलों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२॥

कुन्दइन्दुदरगौरसुन्दरं अम्बिकापतिमभीष्टसिद्धिदम्।
कारुणीककलकञ्जलोचनं नौमि शङ्करमनङ्गमोचनम् ॥२॥

कुन्द के फूल, चन्द्रमा और शंख से भी अधिक गौरवर्ण वाले, अम्बिका (जगज्जननी श्री पार्वती) के पति, वाञ्छित मनोरथों को सिद्ध करने वाले, करुणा से भरे हुए, कामदेव से छुड़ाने वाले, सुन्दर कमल के समान नयन वाले श्री शंकर जी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२॥

दो०—रहा एक दिन अवधि कर, अति आरत पुरलोग।
जहँ तहँ सोचहिं नारि नर, कृसतन रामवियोग ॥१॥

श्री रामचन्द्र जी के लौटने की अवधि (१४ वर्ष) समाप्त होने में एक दिन शेष रह गया, अतः नगर के समस्त जन अत्यधिक आर्त (दुःखित) हो रहे हैं। श्रीरामजी के वियोग में दुबले कमजोर हुए सभी स्त्री पुरुष जहाँ तहाँ सोच (विचार) कर रहे हैं कि क्या कारण हो गया जो रामचन्द्र जी अभी तक नहीं आये ॥१॥

सगुन होहिं सुन्दर सकल, मन प्रसन्न सब केर।
प्रभु आगमन जनाव जनु, नगर रम्य चहुं फेर ॥२॥

इसी समय में सभी शुभ शकुन होने लग पड़े और सबके मन प्रसन्न हो गये। अयोध्या नगरी चारों ओर से रमणीक (सुन्दर, मन को हरने वाली) हो गई, मानो ये सभी चिन्ह प्रभु रामचन्द्र जी के शुभागमन को प्रकट कर रहे हैं ॥२॥

कौसल्यादि मातु सब, मन अनन्द अस होइ।
आयउ प्रभु सिय-अनुज-जुत कहन चहत अब कोइ ॥३॥

कौशल्या आदि सभी माताओं के मन ऐसे आनन्दित हो रहे हैं, मानो अभी कोई आकर कहना ही चाहता है कि श्री सीता जी और लक्ष्मण सहित प्रभु श्री रामचन्द्र जी आ गये ॥३॥

भरत-नयन-भुज दच्छिन, फरकत बारहिं बार।
जानि सगुन मन हरष अति, लागे करन बिचार ॥४॥

भरत जी का दक्षिण नेत्र और दक्षिण भुजा बारम्बार फड़कने लगी।

इन शुभ-शकुनों को जानकर भरत जी के मन में अत्यधिक आनन्द हुआ और वे विचार करने लगे कि ॥४॥

चौ०-रहेउ एकदिन अवधि अधारा। समुझत मनदुख भयउ अपारा।
कारन कवन नाथ नहिं आये। जानि कुटिल किधौं मोहिबिसराये॥

जिस अवधि (चौदह वर्ष को) का आधार (सहारा या इन्तजार) था उसका केवल एक ही दिन शेष रह गया। यह सोचते ही भरत जी के मन में अपार दुःख हुआ। वे मन में विचार करने लगे कि क्या कारण हुआ कि प्रभु श्री रामचन्द्र जी अभी तक नहीं आये। प्रभुजी ने मुझे कुटिल समझकर कहीं भुला तो नहीं दिया ॥१॥

अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम-पदारबिंदु-अनुरागी।
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ता तें नाथ संग नहिं लीन्हा॥

अहा हा? लक्ष्मण बड़े धन्य और बड़भागी हैं, जो श्री रामचन्द्र जी के चरण-कमलों के अनुरागी (प्रिय) बने हुए हैं, मुझे तो प्रभु जी ने कुटिल और कपटी समझ रक्खा है, इसलिये तो नाथ ने मुझे (वन में) साथ नहीं लिया ॥२॥

जौं करनी समुझहिं प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलपसत कोरी।
जनअवगुन प्रभु मान न काऊ। दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ॥

प्रभु श्री रामचन्द्र जी यदि मेरी करनी (विगत कार्यों) को समझें (उन पर ध्यान दें) तो सौ करोड़ कल्प पर्यन्त भी मेरा निस्तार (छुटकारा) नहीं हो सकता। परन्तु प्रभु सेवक का अवगुण (ऐब) कभी नहीं मानते, क्योंकि वे दीनों के बन्धु और अत्यन्त ही कोमल स्वभाव के हैं ॥३॥

मोरे जिय भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई।
बीते अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग माहि समाना॥

मेरे हृदय में ऐसा पक्का भरोसा है कि श्री रामचन्द्र जी अवश्य ही मिलेंगे, क्योंकि मुझे सभी शकुन शुभ हो रहे हैं। किन्तु अवधि (चौदह वर्ष के पूरे दिन) बीत जाने पर भी यदि (राम न आवें और) मेरे प्राण रह जायें तो मेरे समान अधम (नीच) और कौन जन होगा ॥४॥

दो०—राम-विरह-सागर महँ, भरत मगन मन होत।
विप्ररूप धरि पवनसुत, आइ गयउ जनु पोत ॥५॥

श्री रामचन्द्र जी के विरह रूपी सागर (समुद्र) में इस प्रकार भरत जी का मन डूब रहा था कि उसी समय ब्राह्मण का रूप धारण किये हुये पवन पुत्र श्री हनुमान जी इस प्रकार आ गये मानों उन्हें डूबने से बचाने के लिये जहाज आ गया हो ॥५॥

बैठे देखि कुसासन, जटामुकुट कृसगात।
राम राम रघुपति जपत, स्रवत नयन जलजात ॥६॥

हनुमान जी ने देखा कि श्री भरत जी कुशा के आसन पर बैठे हुए हैं, उनके मस्तक पर जटाओं का मुकुट शोभायमान हो रहा है, शरीर दुवला-पतला हो गया है। (निरन्तर श्री राम के चिन्तन में) वे राम, राम, रघुपति का नाम जप रहे हैं, और उनके नेत्ररूपी कमलों से आंसू झर रहे हैं ॥६॥

चौ०—देखत हनूमान अति हरषेउ। पुलकगात लोचन जल बरषेउ।
मनमहुँबहुत भांति सुख मानी। बोलेउ स्रवन-सुधा-सम बानी॥

भरत जी को देखते ही हनुमान जी बड़े प्रसन्न हुए। उनका सारा पुलकित (रोमाञ्चित) हो गया। नेत्रों से (आनन्द के कारण) जल बरसने लगा। मन में बहुत प्रकार से सुख मानकर वे कानों के लिये ा के समान वाणी बोलने लगे ॥१॥

सु विरह सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुन-गन-पाँति।
-कुल-तिलक-सु-जन-सुख-दाता। आयउ कुसल देव-मुनि-त्राता॥

जिनके विरह (वियोग) में आप रात दिन सोच करते (घुलते) हो, तथा जिनके गुण समूह को निरन्तर ही रटते रहते हो, वे रघुकुल के क, सज्जनों को सुख देने वाले, देवताओं तथा ऋषियों के संरक्षक श्री राम कुशल आ गये हैं ॥२॥

रिपु रनजीति सुजस सुर गावत। सीता अनुज सहित प्रभु आवत ॥
सुनत वचन बिसरे सब दूखा। तृषावंत जिमि पाइ पियूखा ॥

रण में शत्रु को जीत कर, सीता और अनुज (लक्ष्मण) सहित प्रभु

रामचन्द्र जी आ रहे हैं ! उनके सुयश को देवता लोग गा रहे हैं । इन वचनों को सुनते ही भरत जी के समस्त दुःख इस प्रकार मिट गये मानो प्यासा मनुष्य अमृत पाकर प्यास के दुःख को भूल गया हो ॥३॥

को तुम्ह तात कहाँ तें आये । मोहि परम प्रिय वचन सुनाये ।
मारुतसुत मैं कपि हनुमाना । नाम मोर सुनु कृपानिधाना ॥

(तब भरत जी ने पूछा) हे तात ! तुम कौन हो और कहाँ से आये हो ? तुमने मुझे अत्यन्त ही प्रिय शब्द सुनाये हैं । तब हनुमान जी बोले—हे कृपानिधान ! आप मेरा नाम सुनें, मैं वायु का पुत्र हनुमान नामक वानर हूँ ॥४॥

दीनबन्धु रघुपति कर किंकर । सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर ।
मिलत प्रेम नहिं हृदय समाता । नयन स्रवत जल पुलकित गाता ॥

मैं दीनों के बन्धु रघुपति श्री रामचन्द्र जी का किंकर (सेवक) हूँ, यह सुनते ही भरत जी उठकर आदरपूर्वक हनुमान जी से गले लगकर मिले । मिलते समय प्रेम हृदय में नहीं समाता था । नेत्रों से (आनन्द और प्रेम के आंसुओं का) जल बहने लगा और शरीर पुलकित हो गया ।

कपि तव दरस सकल दुख बीते । मिले आजु मोहि राम पिरीते ।
बार बार बूझी कुसलाता । तो कहँ देउँ काह सुनु भ्राता ॥

(फिर प्रसन्न होकर भरतजी बोले) हे हनुमान जी ! आज तुम्हारे दर्शन होने से मेरे समस्त दुःख बीत गये । क्योंकि रामचन्द्र जी के प्यारे (प्रियजन) तुम मुझे मिले । इसके अनन्तर भरत जी ने बारम्बार श्री रामचन्द्र जी की कुशल पूछी और कहा—हे भ्राता हनुमान ! (इस शुभ संवाद के बदले में) मैं तुम्हें क्या दूँ ? ॥६॥

एहि संदेस सरिस जग माहीं । करि विचार देखेउँ कछु नाहीं ।
नाहिन तात उरिन मैं तोही । अब प्रभुचरित सुनावहु मोही ॥

मैंने विचार कर देख लिया है कि इस सन्देश के समान (इसके बदले में देने लायक पदार्थ) संसार भर में नहीं है, इसलिए हे तात ! मैं तुमसे किसी भी अवस्था में उऋण नहीं हो सकता । अब मुझे प्रभु श्रीराम का चरित (कुशल समाचार) सुनाओ॥ ॥७॥

तब हनुमंत नाइ पद माथा। कहे सकल रघुपति-गुन-गाथा।
कहु कपि कबहुँ कृपाल गुसाईं। सुमिरहिं मोहि दास की नाईं॥

तब हनुमान जी ने भरत जी के चरणों में मस्तक नवाकर श्री रघुनाथ जी की सारी गुण गाथा (चरित्र) कही। (बीच में भरत जी ने पूछा—) हे हनुमान! यह कहो कि कभी कृपालु रामचन्द्र जी मुझे अपने दास के समान स्मरण भी करते हैं? ॥८॥

छंद—निज दास ज्यों रघु-बंस-भूषन कबहुँ मम सुमिरन कर्यो।
सुनि भरत बचन बिनीत अति कपि पुलकि तनचरनन्हि पर्यो॥
रघुबीर निज मुख जासु गुन गन कहत अग-जग-नाथ जो।
काहे न होइ बिनीत परम पुनीत सद-गुन-सिंधु सो॥

रघुकुल के भूषण रामचन्द्र जी ने क्या कभी अपने दास (भक्त) के समान मुझे स्मरण भी किया? इस प्रकार भरत जी के विनीत वचनों को सुनकर हनुमान जी का समस्त शरीर पुलकायमान हो गया और वे उनके चरणों में गिर पड़े (और अपने मन में विचार करने लगे कि) जो चर, अचर के स्वामी हैं, वे श्री रघुवीर अपने श्री मुख से जिनके गुण समूहों का वर्णन करते हैं, वे भरत जी भला ऐसे विनयशील, परम पवित्र एवं सद्गुणों के समूह क्यों न हों।

दो०—राम-प्रान-प्रिय नाथ तुम्ह, सत्य बचन मम तात।
पुनि पुनि मिलत भरत सुनि, हरष न हृदय समात॥७॥

हनुमान जी ने कहा—हे नाथ! आप श्री रामचन्द्र जी को प्राणों के समान प्रिय हैं। हे तात! मेरा वचन सत्य जानिये। भरत जी हनुमान द्वारा यह सुनकर हनुमान जी से बार बार गले मिलने लगे और उनके हृदय में हर्ष (आनन्द) नहीं समाता था ॥७॥

सो०—भरतचरन सिरु नाइ, तुरित गयउ कपि राम पहिं।
कही कुसल सब जाइ, हरषि चले प्रभु जान चढ़ि॥८॥

फिर भरत जी के चरणों में सिर नवा कर हनुमान जी तुरन्त श्री रामचन्द्र जी के पास चले गये और जाकर सभी कुशल वृत्तान्त कहा। तब प्रभु श्री राम अत्यन्त हर्षित होकर विमान पर चढ़कर चल पड़े ॥८॥

चौ०–हरषि भरत कोसलपुर आये। समाचार सब गुरुहिं सुनाये।
पुनि मंदिर महँ बात जनाई। आवत नगर कुसल रघुराई॥

भरत जी प्रसन्न होकर (नन्दीग्राम से) अयोध्यापुरी में आये और सभी वृत्तान्त श्री वशिष्ठ जी से जाकर कह सुनाया। फिर राजमहलों में भी यह खबर भिजवाई कि श्री रघुनाथ जी कुशल पूर्वक नगर को आ रहे हैं ॥१॥

सुनत सकल जननी उठि धाईं। कहि प्रभु कुसल भरत समुझाईं।
समाचार पुरबासिन्ह पाये। नर अरु नारि हरषि सब धाये॥

(यह शुभ समाचार) सुनते ही कौशल्या आदि सभी माताएँ उठकर दौड़ आईं। भरत जी ने प्रभु श्री राम का कुशल वृत्तान्त सुनाकर उन्हें समझाया (ढाढ़स बँधाया)। फिर यह समाचार अयोध्या वासियों ने भी जाना (जिसे सुनकर) सभी स्त्री-पुरुष प्रसन्न होकर दौड़ पड़े।

दधि दुर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसीदल मंगल मूला।
भरि भरि हेमथार भामिनी। गावत चलीं सिंधुर गामिनी॥

दही, दूब, गोरोचन, फल, फूल और मंगल के मूल नवीन तुलसीदल सोने के थालों में भर भर कर गजगामिनी (हथिनी की सी चाल वाली) स्त्रियाँ मंगल गान गाती हुई चलीं ॥३॥

जो जैसेहिं तैसेहिं उठि धावहिं। बाल बृद्ध कहँ संग न लावहिं।
एक एकन्ह कहुँ बूझहिं भाई। तुम्ह देखे दयाल रघुराई॥

जो (मनुष्य) जैसी दशा में था वह वैसे ही उठ दौड़ता था। (शीघ्रता के कारण देर हो जाने के भय से) बालकों और बूढ़ों तक को भी साथ नहीं लेते थे। एक दूसरे को परस्पर पूछते थे कि हे भाई! क्या तुमने दयालु श्री रघुनाथ जी को देखा है? ॥४॥

अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल सोभा कै खानी।
बहइ सुहावन त्रिबिधसमीरा। भइ सरजू अति-निर्मल नीरा॥

अयोध्या नगरी यह जानकर कि प्रभु श्री रामचन्द्र जी आ रहे हैं, समस्त शोभाओं की खान हो गई। सरयू नदी का शीतल जल अत्यन्त निर्मल हो गया। पवन बहुत ही सुहावनी त्रिविध (शीतल, सुगन्धियुक्त, मन्द मन्द) तीनों प्रकारों से बहने लग पड़ी ॥५॥

दो०—हरषि गुरु परिजन अनुज, भू-सुर-बृन्द-समेत।
चले भरत अतिप्रेम मन, सनमुख कृपानिकेत ॥९॥

(इस खुशी में) प्रसन्न होकर भरत जी गुरु वशिष्ठ, कुटुम्बी जन, शत्रुघ्न तथा ब्राह्मणों के समूह के साथ कृपा के धाम श्री रामचन्द्र जी के सन्मुख चले। उनका मन (इस समय) अत्यन्त प्रेमपूर्ण था ॥९॥

बहुतक चढ़ी अटारिन्ह, निरखहिं गगन बिमान।
देखि मधुर सुर हरषित, करहिं सुमंगल गान ॥१०॥

(उस समय) बहुत सी स्त्रियां अटारियों पर चढ़कर आकाश में विमान को देखने लगी और उसे आता हुआ देखकर हर्षित होकर मीठे स्वर से सुन्दर मधुर गीत गाने लगीं ॥१०॥

राका ससि रघुपति पुर, सिंधु देखि हरषान।
बढ़ेउ कोलाहलु करत जनु, नारि-तरंग-समान ॥११॥

अयोध्यापुरी ही मानो समुद्र है वह रामचन्द्र रूपी पूर्णिमा के चाँद को देखकर प्रसन्न हुआ। (इधर उधर दौड़ती हुईं) नारियाँ ही मानो चंचल तरंगें हैं। इस प्रकार अयोध्या रूपी समुद्र में स्त्री रूपी तरंगें कोलाहल करती हुईं बढ़ रहीं हैं ॥११॥

चौ०—इहाँ भानु-कुल-कमल-दिवा-कर। कपिन्ह देखावत नगर मनोहर।
सुनु कपीस अंगद लंकेसा। पावन पुरी रुचिर यह देसा॥

इधर सूर्य-कुल रूपी कमल के सूर्य श्रीराम जी वानरों को मनोहर नगर दिखला रहे हैं। (श्री राम कहते हैं) हे सुग्रीव, अङ्गद, विभीषण, सुनो, यह पुरी (अयोध्या) पावनी (परम पवित्र) है और यह देश (कोशल) बड़ा सुन्दर है ॥१॥

जद्यपि सब वैकुण्ठ बखाना। वेद-पुराना-विदित जगजाना।
अवध सरिस प्रिय मोहि न सोऊ। यह प्रसंग जानै कोउ कोऊ॥

यद्यपि सभी ने वैकुण्ठ की बड़ाई की है। वैकुण्ठ वेद पुराणों में प्रसिद्ध है और समस्त जग इसे जानता है। परन्तु जितनी मुझे अयोध्या प्यारी है उतना वैकुण्ठ नहीं, इस बात को कोई कोई ही जानते हैं ॥२॥

जनमभूमि ममपुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि।
जा मज्जन तें बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा॥

यह सुहावनीपुरी (अयोध्या) मेरी जन्म भूमि है। इसकी उत्तर दिशा में परम पवित्र सरयू नदी बहती है। जिस (सरयू नदी) में स्नान करने से मनुष्य बिना ही परिश्रम के मेरे समीप निवास (मुक्ति) पा जाते हैं॥३॥

अतिप्रिय मोहि इहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुखरासी।
हरषे सब कपि सुनि प्रभु बानी। धन्य अवध जो राम बखानी॥

यहाँ के निवासी मुझे बहुत ही प्रिय हैं। यह पुरी सुख की राशि (समूह) है और मेरे परम धाम को देने वाली है। प्रभु श्री राम की यह वाणी सुन कर सब वानर प्रसन्न हुए (और कहने लगे) कि जिस अवध की स्वयं श्रीराम जी ने बड़ाई की वह (वस्तुतः) धन्य है॥४॥

दोहा—आवत देखि लोग सब, कृपासिंधु भगवान।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ, उतरेउ भूमि बिमान॥१२॥

कृपा के सागर भगवान् श्री रामचन्द्र जी ने सब लोगों को आते देखा, तो प्रभु ने विमान को नगर के समीप उतरने की प्रेरणा की, तब वह विमान नगर के निकट पृथ्वी पर उतरा॥१२॥

उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहिं, तुम्ह कुबेर पहिं जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो, हरष बिरहु अति ताहु॥१३॥

विमान से उतर कर श्री रामचन्द्र जी ने पुष्पक विमान से कहा कि तुम अब कुबेर के पास चले जाओ। श्रीराम जी की प्रेरणा से वह विमान चल पड़ा, अपने स्वामी कुबेर के पास जाने का तो उसे हर्ष था परन्तु श्रीरामचन्द्र जी से विलग होने का अत्यन्त दुःख भी हो रहा था॥१३॥

आये भरत संग सब लोगा। कृसतन श्रीरघुबीर बियोगा।
बामदेव बसिष्ठ मुनिनायक। देखे प्रभु महि धरि धनुसायक॥

सब लोग भरत जी के संग आ गये। श्री रघुवीर जी के वियोग में सभी के शरीर कृश (दुर्बल, क्षीण) हो रहे थे। जब श्री राम ने मुनियों के

घायक वामदेव, वशिष्ठ आदि श्रेष्ठ मुनियों को देखा तो उन्होंने धनुष बाण पृथ्वी पर रख कर— ॥१॥

धाइ धरे गुरु-चरन-सरोरुह। अनुजसहित अति-पुलक तनोरुह।
भेंटि कुसल बूझी मुनिराया। हमरे कुसल तुम्हारि हि दाया॥

उन्होंने छोटे भाई लचमण सहित दौड़कर गुरु जी के चरण कमल पकड़ लिये। दोनों के रोम रोम अत्यन्त पुलकित हो गये। मुनिराज वशिष्ठ जी ने मिलने पर कुशलता पूछी, उत्तर में श्री राम जी ने कहा—आपकी दया से हमारी सब कुशल है ॥२॥

सकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा। धरम-धुरंधर रघु-कुलनाथा।
गहे भरत पुनि प्रभु-पद-पंकज। नमत जिन्हहिं सुर मुनि संकर अज॥

धर्म की धुरी धारण करने वाले रघुवंश के स्वामी श्री रामचन्द्र जी ने सभी ब्राह्मणों से मिल कर उन्हें माथा नवाया। फिर भरत जी ने प्रभु जी के उन चरणों को पकड़ा, जिन्हें देवता, मुनि, शंकर जी और ब्रह्मा जी भी नमस्कार करते हैं ॥३॥

परे भूमि नहिं उठत उठाये। बर करि कृपासिंधु उर लाये।
स्यामलगात रोम भये ठाढ़े। नव-राजीव-नयन जल बाढ़े॥

प्रणाम करने के लिये जब भरत जी पृथ्वी पर गिरे तो उठाने से भी उठते नहीं थे, तब कृपा के सिन्धु (सागर) श्री रामचन्द्र जी ने बल पूर्वक उठाकर हृदय से लगा लिया, भरत के सांवले शरीर पर रोएं खड़े हो गये, नवीन कमल के समान नेत्रों में जल की बाढ़ आ गई (आंसू आ गये) ॥४॥

छंद—राजीवलोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी।
अतिप्रेम हृदय लगाइ अनुजहिं मिले प्रभु त्रिभुवनधनी॥
प्रभु मिलत अनुजहिं सोह मोपहिं जाति नहिं उपमा कही।
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुखमा लही॥

उनके कमल के समान नेत्रों से जल बहने लग पड़ा। सुन्दर शरीर पुलकावली से शोभायमान होने लगा। छोटे भाई श्री भरत को अत्यन्त प्रेम-पूर्वक हृदय से लगाकर त्रिलोकी पति श्री रामचन्द्र जी गले मिले। (गोस्वामी जी भरत मिलन का वर्णन करते हुए कहते हैं; अपने छोटे भाई से मिलते

समय प्रभु जैसे शोभायमान हो रहे हैं, उसकी उपमा मुझसे नहीं कही जाती। (ऐसा मालूम पड़ता है) मानो प्रेम और शृङ्गार दोनों शरीर धारण कर मिल रहे हों और श्रेष्ठ शोभा प्राप्त कर रहे हों।

बूझत कृपानिधि कुसल भरतहिं बचन बेगि न आवई।
सुनु सिवा सो सुख बचन मनतें भिन्न जान जो पावई॥
अब कुसल कोसलनाथ आरतजानि जन दरसन दियो।
बूड़त बिरहबारीस कृपानिधान मोहि कर गहि लियो॥

कृपा के निधान श्रीरामचन्द्र जी भरत जी से कुशल पूछते हैं। परन्तु प्रेमवश भरत जी के मुख से शीघ्र शब्द नहीं निकलते। (शिव जी कहते हैं) हे पार्वती! सुनो, श्रीरामचन्द्र जी और भरत जी के मिलाप में जो सुख प्राप्त हुआ, वह मन और वचन से भिन्न है। उसे वही जानता है जो उसे पाता है। (भरत जी बोले) हे कोशल नाथ? आपने आर्त (व्यथित) जान कर सेवक को दर्शन दिये इस से सब कुशल है। विरह रूपी समुद्र में डूबते हुये मुझ को हाथ पकड़ कर कृपा निधान ने बचा लिया।

दोहा०—पुनि प्रभु हरषित सत्रुहन, भेंटे हृदय लगाइ।
लछिमन भरत मिले तब, परम प्रेम दोउ भाइ॥१४॥

फिर प्रभु रामचन्द्र जी प्रमुदित हो कर शत्रुघ्न जी को हृदय से लगा कर उनसे मिले। तब लक्ष्मण जी और भरत जी दोनों भाई परम प्रेम से गले मिले॥१४॥

चौ०-भरतानुज लछिमन पुनिभेंटे। दुसह बिरहसंभव दुख मेटे।
सीताचरन भरत सिरु नावा। अनुज समेत परमसुख पावा॥

फिर भरत जी के छोटे भाई शत्रुघ्न के साथ लक्ष्मण जी गले लग कर मिले। इस प्रकार उन्हों ने वियोग से उत्पन्न दुःसह (नहीं सहने योग्य) दुःख का नाश किया। फिर भाई शत्रुघ्न जी सहित भरत जी ने सीता जी के चरणों में मस्तक नवाया और परम सुख को प्राप्त किया॥१॥

प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी। जनित बियोग बिपति सब नासी।
प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी॥

प्रभु श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन कर सभी अयोध्या निवासी हर्षित हुये।

वियोग से उत्पन्न हुई सब आपत्तियां नष्ट हो गईं। सब लोगों को प्रेमवश मिलने के लिये अत्यन्त आतुर देख कर खर नामक दैत्य के शत्रु कृपालु श्री रामचन्द्र जी ने एक कौतुक (चमत्कार) किया ॥

अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथाजोग मिले सबहिं कृपाला।
कृपा दृष्टि रघुबीर बिलोकी। किये सकल नर नारि बिसोकी ॥

उसी समय अपने असंख्य रूप प्रकट किये और यथायोग्य सभी नगर वासियों से प्रेम पूर्वक मिले। समस्त स्त्री-पुरुषों को कृपा भरी दृष्टि से देख कर शोक से रहित कर दिया ॥३॥

छनमहुँ सबहिं मिले भगवाना। उमा मरम यह काहु न जाना।
एहि बिधि सबहिं सुखीकरि रामा। आगे चले सील-गुन-धामा ॥
कौसल्यादि मातु सब धाई। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई ॥

इसके अनन्तर श्री भगवान रामचन्द्र जी क्षण भर में सभी से मिल लिये। (शिव जी कहते हैं) हे उमा! (पार्वती) इस मर्म (रहस्य) को कोई भी नहीं जान सका। शील और गुणों के धाम श्रीरामचन्द्र जी इस प्रकार सभी को सुखी कर आगे बढ़े। इतने में कौशल्या आदि मातायें ऐसे दौड़ीं जैसे लवाई अर्थात् नई ब्याई हुई (नव प्रसूता) गौएँ अपने बछड़ों को देख कर दौड़ती हैं ॥४॥४॥

छंद—जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृह चरन बन परबस गईं।
दिनअंत पुर रुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं ॥
अतिप्रेम प्रभु सब मातु भेंटी बचन मृदु बहु बिधि कहे।
गइ बिषम बिपतिबियोगभव तिन्ह हरष सुख अगनित लहे ॥

मानो नई ब्याही हुई गौएँ अपने बच्चों को घर पर छोड़ कर पराधीन हो कर जंगल में चरने के लिये गई हों और दिन के अन्त अर्थात् सायंकाल के समय नगर की ओर चलती हुईं, थनों से दूध गिराती और हुँकार करती हुईं दौड़ी हों। प्रभु श्रीरामचन्द्र जी सब माताओं से बड़े ही प्रेम पूर्वक मिले और उनसे बहुत प्रकार के कोमल वचन कहे। वियोग से पैदा हुई सब प्रकार की विषम विपत्ति नष्ट हो गई, और सबने अगणित सुख और हर्ष प्राप्त किये।

दोहा—भेंटेउ तनय सुमित्रा, राम-चरन-रति जानि।
रामहिं मिलत कैकई, हृदय बहुत सकुचानि ॥१५॥

सुमित्रा जी अपने लाड़िले पुत्र लछमण जी की श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में अधिक प्रीति जान कर उनसे (प्रेम पूर्वक) मिलीं। श्रीराम जी से मिलती हुई कैकेयी हृदय में बहुत संकुचाई ॥१५॥

लछिमन सब मातन्ह मिलि, हरषे आसिष पाइ।
कैकेई कहँ पुनि मिले, मन कर छोभ न जाइ ॥१६॥

लछमण जी भी सब माताओं से मिले और उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर आनन्दित हुये। कैकेयी जी से वे फिर बार बार मिले परन्तु उनके चित्त का क्षोभ (रोष) न मिटा ॥१६॥

सासुन्ह सबन्ह मिली बैदेही। चरनन्हि लागि हरषअतितेही।
देहिं असीस बूझि कुसलाता। होहु अचल तुम्हार अहिवाता॥

श्रीमती सीता जी भी अपनी सब सासुओं से मिलीं। उनके (अपनी सासुओं के) चरणों में गिर कर उन्हें बहुत आनन्द मिला। कुशल प्रश्न पूछने के अनन्तर सासुएँ उन्हें आशीर्वाद देतीं थीं कि तुम्हारा सुहाग अटल रहे ॥१॥

सब रघुपति-मुख-कमल बिलोकहिं। मंगलजानि नयन जल रोकहिं।
कनकथार आरती उतारहिं। बार बार प्रभुगात निहारहिं॥

सब माताएं रघुपति श्रीरामजन्द्र जी के मुख-कमल को देखतीं हुईं और (प्रेमाधिक्य के होने के कारण मंगल का समय जान कर) नेत्रों में आते हुये आंसुओं को रोक रखतीं हैं। वे सुवर्ण के थाल में श्रीराम जी की आरती उतारतीं हुईं बार बार उनके सुन्दर अङ्गों को निहारतीं हैं ॥२॥

नाना भाँति निछावरि करहीं। परमानन्द हरष उर भरहीं।
कौसल्या पुनिपुनि रघुबीरहिं। चितवति कृपासिंधु रनधीरहिं॥

माताएं नाना प्रकार की निछावरें करतीं थीं और परम आनन्द से हृदय में आनन्दित होतीं थीं। कौशल्या माता बार बार कृपा के सागर एवं रणधीर श्रीरघुवीर राम जी को निहार रहीं थीं ॥३॥

हृदय बिचारति बारहिं बारा। कवन भाँति लंकापति मारा।
अतिसुकुमार जुगुलमेरेबारे। निसिचर सुभट महाबल भारे॥

वे बार बार अपने हृदय में विचार करतीं थीं कि इन्होंने लंकेश रावण को कैसे मारा। ये दोनों बालक मेरे प्यारे बहुत ही सुकुमार (सुकोमल) हैं और राक्षस तो बड़े भारी योद्धा और महान बली थे ॥४॥

दो०—लछिमन अरु सीता सहित, प्रभुहिं बिलोकति मात।
परमानन्द-मगन-मन, पुनि पुनि पुलकितगात ॥१७॥

माता कौशल्या लक्ष्मण जी और श्री सीता जी सहित प्रभु श्रीरामचन्द्र जी को देख रहीं थीं। और परम आनन्द में निमग्न होने से शरीर बार बार पुलकित हो रहा था ॥१७॥

चौ०—लंकापति कपीस नल नीला। जामवंत अंगद सुभसीला।
हनुमदादि सब बानरबीरा। धरे मनोहर मनुजसरीरा॥

लंकापति विभीषण, वानरराज सुग्रीव, नल और नील, जाम्बवान, अङ्गद तथा हनुमान आदि सभी श्रेष्ठ स्वभाव वाले वीर बानरों ने मनुष्यों के शरीर धारण कर लिये ॥१॥

भरत सनेह सील व्रत नेमा। सादर सब बरनहिं अतिप्रेमा।
देखि नगरबासिन्ह कै रीती। सकल सराहहिं प्रभु-पद-प्रीती॥

वे सभी भरत जी के प्रेम, शील, व्रत और नियमों की बहुत प्रेम से आदर सहित प्रशंसा करने लगे। नगर निवासियों की रीति को देख कर के सब श्रीराम जी के चरणों में उनके प्रेम की सराहना करने लगे ॥२॥

पुनि रघुपति सब सखा बोलाये। मुनिपद लागहु सकल सिखाये।
गुरु बसिष्ट कुल पूज्य हमारे। इन्ह की कृपा दनुज रन मारे॥

रघुपति रामचन्द्र जी ने अपने सब सखा (वानर रीछ आदि) बुलाये और उन्हें सिखाया कि मुनि जी के चरणों में लगो। ये हमारे कुल के पूजनीय गुरु वशिष्ठ जी हैं। इन्हीं की असीम कृपा से युद्ध में राक्षस मारे गये हैं ॥३॥

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भये समरसागर कहँ बेरे।
मम हित लागि जनम इन्ह हारे। भरतहुँ ते मोहि अधिक पियारे।
सुनि प्रभुबचन मगन सब भये। निमिष निमिष उपजत सुख नये।

(फिर गुरु जी से कहने लगे) हे मुनि जी ? सुनिये, ये सब मेरे सखा हैं। ये युद्ध रूपी समुद्र में मेरे लिये बेड़े के समान (सहायक) हुये। मेरे हित

के लिये इन्होंने अपने जन्म तक हार दिये (न्योछावर कर दिये)। प्रिय भ्राता भरत से मुझे यह अधिक प्यारे हैं ॥४॥ प्रभु श्रीरामचन्द्र जी के इन वचनों सुन कर सभी प्रेम में मग्न हो गये और क्षण-क्षण में नये-नये सुख पैदा होने लगे ॥५॥

दो०—कौसल्या के चरनन्हि, पुनि तिन्ह नायउ माथ।
आसिष दीन्ही हरषि तुम्ह, प्रिय मम जिय रघुनाथ ॥१८॥

फिर उन मित्रों ने कौशल्या जी के चरणों में मस्तक नवाये। कौशल्या माता ने प्रसन्न हो कर सभी आशीर्वाद दिये और कहा कि तुम सब मुझे रघुनाथ के समान ही प्यारे हो।

सुमनवृष्टि नभ संकुल, भवन चले सुखकंद।
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं, नगर नारि-नर-वृंद ॥१९॥

आकाश फूलों की वृष्टि से छा गया और आनन्दकन्द श्रीरामचन्द्र जी अपने राजमहल की ओर चले। उस समय नगर के समस्त नर-नारियों के समूह अटारियों पर चढ़ कर उन्हे देखने लगे ॥१९॥

कंचनकलस बिचित्र सँवारे। सबहिं धरे सजि निज निज द्वारे ॥
वंदनवार पताका केतू। सबन्हि बनाये मंगल हेतू ॥

सब लोगों ने अपने अपने दरवाजों पर सुवर्ण के कलश विचित्र रीति से सजा कर रखे। मङ्गलाचार के हेतु सभी ने वंदनवार, ध्वजा और पताकाएँ लगाईं ॥१॥

वीथी सकल सुगंध सिंचाई। गजमनि रचि बहु चौकपुराई ॥
नाना भाँति सुमंगल साजे। हरषि नगर निसान बहु बाजे ॥

सब गलियाँ सुगन्धित पदार्थों से सजाई गईं और गज मोती आदि से रचना कर बहुत सी चौकें पुराई गईं, नाना प्रकार के मंगल साज सजे, और हर्षपूर्वक नगर में बहुत से डंके बजने लगे ॥२॥

जहँ तहँ नारि निछावरि करहीं। देहिं असीस हरष उर भरहीं ॥
कंचनथार आरती नाना। जुबती सजे करहिं सुभ गाना ॥

जहाँ तहाँ स्त्रियाँ निछावर कर रही हैं और हृदय में प्रसन्न होकर

आशीर्वाद दे रही हैं। युवतियाँ (सौभाग्यवतीं) अनेकों प्रकार की आरतियाँ सुवर्णरचित थालों में सजाकर मंगल गान कर रही हैं ॥३॥

करहिं आरती आरतिहर कें। रघुकुल-कमल-बिपिन-दिनकर कें ॥
पुरसोभा संपति कल्याना। निगम सेष सारदा बखाना ॥
तेउ यह चरित देखि ठगि रहहीं। उमा तासु गुन नर किमि कहहीं ॥

वे आरति हर (दुःखों को हरने वाले) रघुवंश रूपी कमलों के वन के सूर्य श्री रामचन्द्र जी की आरती करने लगीं। उस समय अयोध्यापुरी की मनोहर शोभा, सम्पत्ति और कल्याण को चारों वेद शेष भगवान जी और सरस्वती जी बखान कर रही थीं। शिवजी कहते हैं हे पार्वती! वे भी यह चरित्र देखकर ठगे से रह जाते हैं, फिर भला मनुष्य उनके गुणों को कैसे कह सकते हैं ॥४॥५॥ कमलिनी वियोग रूपी सूर्य

दो०—नारि कुमुदिनी अवध सर, रघुपतिबिरह दिनेस।
अस्त भये बिगसित भईं, निरखि राम राकेस ॥२०॥

अयोध्या रूपी सरोवर में, स्त्रियाँ ही मानो कुमुदिनी (कमलिनी) है जो रघुनाथ जी के वियोग रूपी सूर्य के अस्त होने पर श्री रामचन्द्र रूपी पूर्ण चन्द्र का अवलोकन कर खिल उठीं ॥२०॥

होंहि सगुन सुभ बिबिधबिधि, बाजहिं गगन निसान।
पुर-नर-नारि सनाथ करि, भवन चले भगवान ॥२१॥

उस समय अनेक प्रकार के शुभ शकुन हो रहे थे और आकाश में बाजे (नगाड़े) बज रहे थे। ऐसे आनन्दमय समय में श्री रामचन्द्र जी नगर के सभी स्त्री-पुरुषों को सनाथित कर राजभवन को चल पड़े ॥२१॥

प्रभु जानी कैकई लजानी। प्रथम तासु गृह गये भवानी ॥
ताहि प्रबोध बहुत सुख दीन्हा। पुनि निज भवन गवँन हरि कीन्हा ॥

(शङ्कर भगवान कहते हैं) हे पार्वती! प्रभु रामचन्द्र जी यह जानकर कि माता कैकेयी लज्जित हो गई हैं, पहले उन्हीं के घर (महल में) गये और उन्हें समझा बुझाकर बहुत सुख दिया, फिर वे अपने घर गये।

कृपासिंधु जब मंदिर गये। पुर-नर-नारी सुखी सब भये ॥
गुरु बसिष्ठ द्विज लिये बोलाई। आज सुघरी सुदिन सुमदाई ॥

कृपा के सागर जब श्री रामचन्द्र जी अपने महल को गये तब नगर के सभी स्त्री पुरुष सुखी हुए। कुल गुरु वसिष्ठ जी ने ब्राह्मणों को बुलाया और उनसे कहा कि आज शुभ घड़ी, सुन्दर दिन आदि सभी योग शुभ फल देने वाले हैं।

सब द्विज देहु हरषि अनुसासन। रामचन्द्र बैठहिं सिंहासन॥
मुनि वसिष्ठ के बचन सुहाये। सुनत सकल विप्रन्ह अति भाये॥

(अतएव) सब ब्राह्मण प्रसन्न होकर आज्ञा दें कि महाराज श्री रामचन्द्र जी सिंहासन पर बैठें। मुनि वसिष्ठ जी के यह सुन्दर वचन सभी ब्राह्मणों को बहुत ही प्यारे लगे।

कहहिं बचन मृदु विप्र अनेका। जग अभिराम राम अभिषेका॥
अब मुनिवर बिलमु नहिं कीजै। महाराज कहुँ तिलक करीजै॥

अनेक ब्राह्मण कोमल वचनों से कहने लगे कि श्रीराम जी का राज्याभिषेक सम्पूर्ण जगत को आनन्द देने वाला है। हे मुनि श्रेष्ठ! आप तनिक भी विलम्ब न करें और महाराज रामचन्द्र जी का अभिषेक शीघ्र कीजिए॥४॥

दो०—तब मुनि कहेउ सुमंत्र सन, सुनत चलेउ हरषाइ।
रथ अनेक बहु बाजि गज, तुरत सँवारेउ जाइ॥९॥

तब मुनि वसिष्ठजी ने सुमन्त्र मन्त्री से कहा। सुमन्त्र यह (राजतिलक का) समाचार सुनकर बहुत प्रसन्न होकर चला, और तुरन्त जाकर उसने अनेकों रथ, हाथी और घोड़े सजाये।

जहँ तहँ धावन पठइ पुनि, मंगल द्रव्य मँगाइ।
हरष समेत वसिष्ठपद, पुनि सिरु नायेउ आइ॥ १०॥

फिर इधर उधर दूतों को दौड़ाकर उसने माङ्गलिक द्रव्य मँगवाये और हर्ष के साथ आकर वसिष्ठ जी के चरणों में सिर नवाया।

अवधपुरी अति रुचिर बनाई । देवन्ह सुमनबृष्टि झरि लाई ॥
राम कहा सेवकन्ह बोलाई । प्रथम सखन्ह अन्हवाइह जाई ॥

अयोध्या नगरी बहुत ही सुन्दरता से सजाई गई । देवताओं ने पुष्प वृष्टि की झड़ी लगा दी । श्री रामचन्द्र जी ने सेवकों को बुलाकर कहा कि तुम पहले हमारे मित्रों को ले जाकर स्नान कराओ ॥१॥

सुनत वचन जहँतहँ जनधाये । सुग्रीवादि तुरत अन्हवाये ॥
पुनि करुनानिधि भरत हँकारे । निज कर राम जटा निरुवारे ॥

रघुकुल भूषण श्री रामचन्द्र जी के वचन सुनकर सेवक लोग जहाँ तहाँ दौड़े और तुरन्त ही उन्होंने सुग्रीव विभीषण आदि को स्नान कराया । फिर करुणा के भण्डार रामचन्द्र जी ने भरत जी को बुलाकर अपने हाथों उनकी जटाओं को सुलझाया ॥२॥

अन्हवाये प्रभु तीनिउँ भाई । भगतबछल कृपाल रघुराई ॥
भरतभाग्य प्रभु-कोमल-ताई । सेष कोटि सत सकहिं न गाई ॥

इसके पश्चात् भक्तों से स्नेह करने वाले कृपालु रघुनाथ जी ने तीनों भ्राताओं को स्नान कराया । उस समय भरत के भाग्य और प्रभु श्री रामचन्द्र जी की कोमलता की महिमा का वर्णन करोड़ों शेष जी भी नहीं कर सकते थे ।

पुनि निजजटा राम बिबराये । गुरु अनुसासन मांगि नहाये ॥
करि मज्जन प्रभु भूसन साजे । अंग अनंग कोटि छबि लाजे ॥

फिर श्री रामचन्द्र जी ने अपनी जटाओं को सुलझाया और गुरु वसिष्ठ जी की आज्ञा मांगकर स्नान किया । स्नान करने के अनंतर जिस समय प्रभु जी ने आभूषण धारण किये, उस काल के उनके अङ्गों के सौन्दर्य के आगे करोड़ों कामदेव भी लजा गये ॥

दो०—सासुन्ह सादर जानकिहि, मज्जन तुरत कराइ ।
दिव्य बसन बर भूषन, अँग अँग सजे बनाइ ॥

उधर कौशल्या कैकेयी आदि सासों ने आदर पूर्वक तुरन्त सीता जी को स्नान करा कर दिव्य (मनोहर) वस्त्र और आभूषण उनके प्रत्येक अङ्ग अङ्ग में भली भाँति सजा दिये ॥२४॥

राम-वाम-दिसि सोभित, रमारूप गुन खानि।
देखि मातु सब हरषीं, जनम सुफल निज जानि॥

श्री रामचन्द्र जी की बाईं ओर शोभायमान, लक्ष्मी के समान रूप वाली सब गुणों की खान श्री सीता जी को देखकर सब माताओं ने अपने जन्म को सार्थक समझा और वे प्रसन्न हुईं॥२५॥

सुनु खगेस तेहि अवसर, ब्रह्मा सिव मुनिवृंद।
चढ़ि विमान आये सब, सुर देखन सुखकंद॥ ११॥

(काक भशुण्डी जी कहते हैं) हे खगेश—पक्षिराज गरुड़ ? सुनो, उस समय ब्रह्मा जी, शिव जी और मुनियों के झुण्ड तथा विमानों पर सवार होकर सब देवता सुखधाम श्री रामचन्द्र जी के दर्शन करने के लिये आये ॥२६॥

प्रभु विलोकि मुनिमन अनुरागा। तुरत दिव्य सिंहासन माँगा॥
रवि सम तेज सो बरनि न जाई। बैठे राम द्विजन्ह सिरु नाई॥

मुनिराज वसिष्ठ जी का मन प्रभु श्री रामचन्द्र जी को देखकर अनुराग (प्रेम) से भर गया, उन्होंने तुरन्त दिव्य सिंहासन को मंगवाया, जो (सिंहासन) सूर्य के समान तेज वाला था, और जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। श्री रामचन्द्र जी ब्राह्मणों को सिर नवा कर उस पर बैठ गये।

जनक-सुता-समेत रघुराई। लखि प्रहरषे मुनि समुदाई॥
वेदमंत्र तब द्विजन्ह उचारे। नभ-सुर-मुनि-जयजयति पुकारे॥

जनकनन्दिनी श्री सीता जी के सहित श्री रघुनाथ जी को देख कर मुनियों का समुदाय (समूह) अत्यधिक प्रहर्षित हुआ। तभी ब्राह्मणों ने वेद मन्त्रों का उच्चारण किया, आकाश में देवता और मुनिगण जय जयकार करने लगे॥२॥

प्रथम तिलक वसिष्ठ मुनि कीन्हा। पुनि सब विप्रन्ह आयसु दीन्हा॥
सुत विलोकि हरषीं महतारी। बार बार आरती उतारीं॥

सर्व प्रथम मुनि वसिष्ठ जी ने (रघुनाथ जी को) तिलक किया फिर सब ब्राह्मणों से उन्होंने तिलक करने को कहा माताओं ने (राज सिंहासन पर बैठे हुए) अपने पुत्र (श्रीराम जी) को आनन्दयुक्त देख कर बार बार उनकी आरती उतारी॥३॥

विप्रन्ह दान विविध विधि दीन्हे । जाचक सकल अजाचक कीन्हे ॥
सिंहासन पर त्रि-भुवन-साईं । देखि सुरन्ह दुंदुभी बजाईं ॥

फिर उन्होंने समस्त ब्राह्मणों को अनेकों प्रकार के दान दिये, और सम्पूर्ण याचकों को अयाचक (बहुत द्रव्य देकर बिना मांगने वाला) बना दिया । त्रिभुवन पति श्री रामचन्द्र जी को राज सिंहासन पर विराज मान देखकर देवताओं ने नगारे बजाये ॥४॥

छंद—नभ दुंदुभी बाजहिं विपुल गंधर्व किन्नर गावहीं ।
नाचहिं अपसरावृंद परमानंद सुर मुनी पावहीं ॥
भरतादि अनुज विभीषनांगद हनुमदादि समेत ते ।
गहे छत्र चामर व्यजन धनु असि चर्म सक्ति विराजते ॥

आकाश में बहुत से नगाड़े बजने लगे और गन्धर्व तथा किन्नर मिल कर गाने लगे. अप्सराओं के झुण्डों ने नाचना प्रारम्भ कर दिया, तथा देवता और मुनिजन परमानन्द को प्राप्त करने लगे । भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्न जी, तथा विभीषण अङ्गद हनुमान और सुग्रीव आदि सहित हाथों में क्रमशः छत्र, चंवर पखा, धनुष तलवार. ढाल और पंखा लिये हुए शोभायमान हो रहे हैं ॥१॥

श्रीसहित दिन-कर-बंस-भूषन काम बहु छवि सोहई ।
नव-अंबु-धर-बर गात अंबर पीत मुनिमन. मोहई ॥
मुकुटांगदादि विचित्र भूषन अंग अंगन्हि प्रति सजे ।
अंभोजनयन बिसाल उर भुज धन्य नर निरखंत जे ॥

सूर्यवंश के विभूषण श्रीरामचन्द्र जी, सीता जी सहित अनेकों कामदेवों की सी छवि से सुशोभित हो रहे हैं, उनके नये जलयुक्त मेघ के समान सुन्दर शरीर पर वस्त्र मुनियों के मन को मोहित कर रहे हैं । मुकुट, अंगद बाजूबन्द आदि विचित्र आभूषण प्रत्येक अङ्ग में सजे हुए हैं । कमल के समान उनके नेत्र हैं, विशाल वक्षस्थल और लम्बी भुजाएं हैं, जो लोग उनको देखते थे वे धन्य थे ॥२॥

दो०—वह सोभा समाज सुख, कहत न बनै खगेस ।
बरनै सारद सेष श्रुति, सो रस जान महेस ॥

हे पक्षी श्रेष्ठ गरुड़ ? उस समय की उस कमनीय शोभा, समाज
सुख का वर्णन मुझसे करते नहीं बनता । सरस्वती जी, शेषजी और चारे
लगातार उसका वर्णन करते हैं, तथा उसका रस तो शङ्कर जी
जानते हैं ।

भिन्न भिन्न अस्तुति करि, गये सुर निज निज धाम ।
बंदिबेश धरि वेद तब, आये जहँ श्रीराम ॥

सब देवता लोग श्रीरामचन्द्र जी की अलग अलग स्तुति कर
अपने धाम को चले गये । इसके बाद बन्दी जनों का रूप धारण कर
वेद वहाँ आये जहाँ श्री रामचन्द्र जी विराजमान थे ।

प्रभु सर्वग्य कीन्हा अति, आदर कृपानिधान ।
लखेउ न काहू मरमु कछु, लगे करन गुनगान ॥१२॥

प्रभु श्री रामचंन्द्र जी सब कुछ समझते थे, इसलिये (वन्दीज
वेष में) चारों वेदों को पहिचान कर कृपानिधान ने उनका बहुत आदर
इस भेद को और कोई न समझ सका । फिर चारों वेद (मिलकर) श्री
जी का गुण गान करने लगे ।

छंद—जय सगुन निर्गुनरूप रूपअनूप भूप-शिरोमने ।
दसकंधरादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल भुजबल हने ॥
अवतार नर संसारभार बिभंजि दारुनदुख दहे ।
जय प्रणतपाल दयाल प्रभु संजुक्तसक्ति नमामहे ॥

[राम गुण गान करते हुए वेदगण बोले—] हे सगुण और नि
रूप ? अनुपम रूप वाले ? राजाओं के शिरोमणि ? आपकी सदैव जय
आपने अपने प्रबल भुजबल से रावण आदि प्रचण्ड दुष्ट दैत्यों का नाश
है । मनुष्य अवतार लेकर आपने संसार के भार को नष्ट करके अत्यन्त
दुःखों का नाश किया है । हे शरणागत रक्षक प्रभो ? आपकी जय हो ।
(श्री सीता जी) सहित आपको हम नमस्कार करते हैं ॥१॥

तव विषम मायावस सुरासुर नाग नर अग जग हरे
भवपंथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुनन्हि भरे ।

जे नाथ करि करुना बिलोके त्रिविध दुख ते निर्बहे ।
भव-खेद-छेदन-दच्छ हम कहँ रच्छ राम नमामहे ॥

हे हरे ? आपकी विषम (दुस्तर) माया के वशीभूत होने के कारण देव, दैत्य, नाग, मनुष्य और स्थावर जङ्गम सभी काल, कर्म और गुणों से भरे हुए चिरकाल तक दिन रात संसार चक्र में घूमते फिरते हैं । हे नाथ ? जिनको आपने दया दृष्टि कर देख लिया वे (आपकी माया मे पैदा हुए) आध्यात्मिक,आधिभौतिक,आधिदैविक इनतीनों प्रकार के दुःखों से मुक्ति पा गये हे विश्व के दुःखों से छुटकारा दिलाने में प्रवीण श्री रामचन्द्र जी ! हम आपको नमस्कार करते हैं । आप हमारी रक्षा कीजिये ।

जे ग्यान-मान-प्रमत्त तव भवहरनि भगति न आदरी ।
ते पाइ सुर-दुर्लभ-पदादपि परत हम देखत हरी ॥
बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे ।
जपि नाम तव बिनु स्रम तरहिं भवनाथ सोइ स्मरामहे ॥

हे हरे जो लोग मिथ्या ज्ञान के अहंकार में मतवाले हो रहे हैं, और संसार चक्र से मुक्ति दिलाने वाली आपकी पुण्य भक्ति का समादर नहीं करते, उन्हें देव दुर्लभ स्थान (ब्रह्म लोक) को प्राप्त कर लेने के अनंतर भी हम नीचे गिरते हुए देखते हैं । और विश्वास करके सभी आशाओं से मुख मोड़ कर जो आपके सेवक बनकर रहते हैं । वे केवल आपके नाम मात्र का जाप करके, बिना ही परिश्रम किये भवसागर से पार हो जाते हैं। इसलिये हे प्रभो ! हम आपका स्मरण करते हैं ॥३॥

जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनिपतनी तरी ।
नखनिर्गता मुनिबंदिता त्रैलोक्य-पावन सुरसरी ॥
ध्वज-कुलिस-अंकुस-कंज-जुत बन फिरत कंटककिन लहे ।
पद-कंज-द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे ॥४॥

जो (आपके) चरण शिव जी और ब्रह्मा जी द्वारा पूजित हैं । जिन के चरणों की सौभाग्य दायिनी धूल से गौतम पत्नी अहल्या तर गई । जिन चरणों के नखसे मुनियों द्वारा पूजित त्रिलोकी को पवित्र करने वाली देवनदी गङ्गाजी निकली, और ध्वजा, वज्र, अंकुश, कमल, इन चिन्हों से समन्वित जिन

वनों में फिरते समय कांटों की नोकें रह गई हैं। हे मोक्ष को देने
यक ? हे रमापति ? आपके उन दोनों चरण कमलों को हम नित्य
हैं ॥४॥

यक्तमूलमनादि तरुत्वच चारि निगमागम भने।
कंध साखा पंचबीस अनेक पर्न सुमन घने॥
जुगलबिधि कटु मधुरबेलि अकेलि जोहिआश्रितरहे।
लवत फूलत नव ललित संसारविटप नमामहे॥

संसारवृक्ष स्वरूप (विश्वरूप में प्रकट) भगवान! चारों वेद
र कहते हैं कि जिसका मूल अव्यक्त (प्रकृति) है, जिसकी चार
र छः स्कन्ध व पचीस शाखाएँ हैं। और अनेकों पुष्प और पत्ते हैं।
मधुर और कडुवे दोनों तरह के फल लगे हैं, जिस पर एक ही बेल
ी के आश्रय में रहने वाली है, और जो वृक्ष नित्य नवीन पुष्पों और
सुशोभित रहता है, ऐसे संसार वृक्ष रूपी आपको हम नमस्कार करते

जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मन पर ध्यावहीं।
ते कहहु जानहु नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं॥
करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव यह बर माँगहीं।
मन बचन कर्म बिकारतजि तव चरन हम अनुरागहीं॥

जो लोग ब्रह्म अज (जन्म न लेने वाला) है, और अद्वैत (जिसकी तुलना
कोई नहीं है ("एकं वै ब्रह्म द्वितीयं नास्ति" इस सिद्धान्त से) केवल
भव से ही जाना जाता है, और मन से दूर है, ऐसे परब्रह्म का
धरते हैं, वे ऐसा वर्णन किया करें और जाना करें, हम तो नित्य
सगुण रूप के यश का गान करते हैं। हे करुणानिधि, सद्गुणों की
प्रभो! हम (आपसे) यह वरदान मांगते हैं कि मन, वचन और
कारों का परित्याग करके आपके चरण कमलों में हमारा प्रेम बना
।

सब के देखते हुए चारों वेदों ने (वन्दीजनों के भेष में) यह उदार विनतिं की और फिर के अन्तर्ध्यान हो गये और ब्रह्मलोक को चले गये।

वैनतेय सुनु संभु तब, आये जहँ रघुबीर॥
बिनय करत गदगद गिरा, पूरित पुलक सरीर॥ १३॥

(काकभुशुण्डी जी कहते हैं) हे विनता पुत्र गरुड़ जी! सुनिये! जब वेद इस प्रकार स्तुति गानकर चले गये (अन्तर्ध्यान हो गये) तब महा देव जी उस स्थान पर आये जहां रघुनायक श्री राम जी विराज रहे थे; और (प्रेमवश) गद्गद् वाणी और पुलकित शरीर हो कर वे स्तुति करने लगे।

तोमरछंद—जय राम रमारमनं शमनं। भव-ताप-भयाकुल पाहिजनं॥
अवधेश सुरेश रमेश विभो। शरनागत माँगत पाहि प्रभो॥

हे श्री राम! आपकी जय हो; आप रमा रमण अर्थात् श्रीलक्ष्मी जी के पति हैं। सांसारिक जन्म मरण के संताप को नष्ट करने वाले हैं; इसलिये सेवक जन की रक्षा कीजिये। हे अयोध्यानाथ! देवों के अधिपति? रमानाथ मैं शरणागत आपसे यही मांगता हूं कि आप शरण में आये हुए अपने भक्तों की मेरी रक्षा कीजिये।

दस- सीस-विनाशन बीसभुजा। कृत दूरि महा-महि-भूरी-रुजा॥
रजनी-चर-वृंद-पतंग रहे। सर-पावक-तेज प्रचंड दहे॥

दस सिर और बीस भुजाओं वाले लंकापति रावण का विनाश करने वाले प्रभो? आपने पृथ्वी के समस्त महान् रोगों (कष्टों) को दूर किया है। राक्षसों के समूह (झुण्ड) रूपी जो पतंगे थे; उन्हें आपने अपने बाण रूपी अग्नि के प्रचण्ड तेज से नष्ट कर दिया है।

महि-मंडल-मंडन चारुतरं। धृत-सायकचाप-निषंग-वरं॥
मद मोह महा ममता रजनी। तमपुंज दिवाकर-तेज-अनी॥

आप समस्त पृथ्वी मण्डल के अत्युत्तम आभूषण रूप हैं। सुन्दर धनुष बाण एवं तरकस आपने धारण किये हुए हैं। महान् मद; मोह और ममता रूपी रजनी (रात्रि) के अन्धकार समूह को नष्ट करने के लिये आप सूर्यदेव के प्रकाश समूह हैं॥३॥

मनजात किरात निपात किये। मृग लोग कुभोग सरेन हये॥
हति नाथ अनाथन्हि पाहि हरे। विषयावन पाँवर भूलि परे॥४॥

कामदेव रूपी भील ने मनुष्य रूपी मृगों के हृदय में भोग रूपी वाण मार कर उन्हें गिरा दिया है। हे नाथ ! आप उन अनाथ पतित जनों की रक्षा कीजिये; जो विषय वासना रूपी जङ्गलों में भूले पड़े हैं ॥४॥

वहु रोग वियोगन्हि लोग हये। भवदंघ्रिनिरादर के फल ये॥
भवसिंधु अगाध परे नर ते। पद-पंकज-प्रेम न जे करते॥५॥

वहुत से रोगों (व्याधियों) और वियोगों के दुःखों से लोग मरते हैं आपके श्रीचरणों का निरादर करने से ही वे इस फल को प्राप्त हुए हैं। जो प्राणी (अज्ञान वश) आपके चरण कमलों से प्रेम नहीं करते; वे अथाह भवसागर में पड़े हुए हैं ॥५॥

अतिदीन मलीन दुखी नितहीं। जिनके पदपंकज प्रीति नहीं॥
अवलंब भवंत कथा जिन्ह के। प्रिय संत अनंत सदा तिन्ह के॥

जिन (मनुष्यों) की आपके चरण कमलों में प्रीति नहीं है वे बहुत ही दीन (दरिद्री) मैले और नित्यमेव दुखी रहते हैं। और जिन्हें आपकी लीला कथा का आधार है, उनको सन्त और अनन्त भगवान सर्वदा प्रिय लगने लगते हैं ॥६॥

नहिं राग न लोभ न मान सदा। तिन्हके सम वैभव वा विपदा॥
एहि तें तव सेवक होत मुदा। मुनि त्यागत जोग भरोस सदा॥

उनमें न तो राग (प्रेम वन्धन) है और न मोह लोभ, न ही मान है और नहीं मद (अभिमान) है सम्पति और विपत्ति उनके लिये दोनों समान है। इसलिये मुनि लोग योग (साधन) का भरोसा सदा छोड़े रहते हैं और प्रसन्नता के साथ आपके सेवक बन जाते हैं ॥७॥

करि प्रेम निरंतर नेम लिये। पदपंकज सेवित सुद्ध हिये॥
सम मानि निरादर आदरहीं। सब संत सुखी विचरंति मही॥

वे प्रेम पूर्वक निरन्तर नियम से पवित्र मन से आपके चरण कमलों की सेवा करते रहते हैं। वे संत जन आदर (सम्मान) और निरादर

(अपमान) को समान समझकर सुखी हो कर पृथ्वी पर स्वेच्छा से विचरते हैं ॥८॥

मुनि- मानस-पंकज-भृंग भजे । रघुवीर महा-रन-धीर अजे ॥
तव नाम जपामि नमामि हरी । भवरोग महागद मान अरी ॥९॥

हे रघुवीर ! हे महा युद्धवीर एवं अजेय भगवान् ? आप मुनिजनों के मन रूपी कमलों के भौंरे हैं, मैं आपका भजन करता हूं । हे हरे मैं आपके नाम का जप करता हूँ, और आपको नमस्कार करता हूँ आप संसार के जन्म मरण रूपी रोग की महान् औषधि और अहंकार के शत्रु हैं ॥९॥

गुनसील कृपापरमायतनं । प्रनमामि निरंतर श्रीरमणं ॥
रघुनंद निकंदय द्वन्द्वघनं । महिपाल विलोकय दीनजनं ॥

आप गुण शील और कृपा के परम धाम हैं । आप श्री (लक्ष्मी) के पति हैं । मैं आपको निरन्तर नमस्कार करता हूँ । हे रघुनन्दन ! आप सुख दुःख आदि द्वन्द्व समूहों का विनाश करें । हे पृथ्वीपालक ! मुझ दीन जन की ओर दृष्टिपात कीजिये ।

दो०—बार बार बर माँगउँ, हरषि देहु श्रीरंग ।
पद- सरोज अनपायनी, भगति सदा सतसंग ॥

हे श्री रङ्ग ! मैं आप से बार बार यही वर माँगता हूँ कि मुझे अपने चरण कमलों की अचल भक्ति और सत्सङ्ग सदा ही दीजिये ।

बरनि उमापति रामगुन, हरषि गये कैलास !
तब प्रभु कपिन्ह दिवाये, सब विधि सुखप्रद वास ।

श्रीरामचन्द्र जी के गुणों का वर्णन करके पार्वती के पति महादेव शङ्कर जी प्रसन्नचित हो कर कैलाश को चले गये । फिर प्रभु श्रीरामचन्द्र जी ने वानरों के लिये सब तरह के सुख देने वाले निवास स्थान दिलवाये ॥१२॥

सुनु खगपति यह कथा पावनी । त्रिविध ताप भव-भय-दायनी ॥
महाराज कर सुभ अभिषेका । सुनत लहहिं नर बिरति बिबेका ॥

(काकभुशुंडी जी बोले)—हे गरुड़ जी । सुनिये, यह (श्रीरामचन्द्र जी की) पवित्र कथा त्रिविध (दैहिक, दैविक और भौतिक) तापों का और

जन्म-मरण के भय का नाश करने वाली है। महाराज श्रीरामचन्द्र जी के शुभ राज्याभिषेक का चरित्र श्रवण कर मनुष्य वैराग्य और ज्ञान प्राप्त करते हैं ॥१॥

जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं। सुख संपति नानाविधि पावहिं ॥
सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं। अंतकाल रघुपति-पुर जाहीं ॥

जो मनुष्य सकाम (कुछ कामना मन में रख) इस पवित्र चरित्र को श्रवण करेंगे और गायेंगे, वे अनेकों प्रकार के सुख और सम्पत्ति प्राप्त करेंगे। वे संसार में देवताओं से भी दुर्लभ (नहीं भोगे जाने योग्य) सुखों को भोग कर अन्तकाल में रघुपति के धाम (मोक्ष) को प्राप्त करेंगे ॥२॥

सुनहिं विमुक्त विरत अरु विषई। लहहिं भगति गति संपति नई ॥
खगपति राम कथा मैं बरनी। स्व-मति-बिलास त्रास-दुख हरनी ॥

इस (पावनी) कथा को यदि विमुक्त सुनेंगे तो वे भक्ति का लाभ करेंगे, यदि वैरागी सुनेंगे तो मोक्ष को प्राप्त करेंगे और यदि विषयी (विलासी) सुनेंगे तो नई सम्पत्ति को प्राप्त करेंगे। हे पक्षिराज गरुड! भय और दुःख को हरने वाली यह श्रीराम की कथा का मैंने अपनी बुद्धि की पहुँच के अनुसार वर्णन किया है ॥३॥

बिरति बिबेक भगति दृढ़ करनी। मोह नदी कहँ सुंदर तरनी ॥
नित नव मंगल कोसलपुरी। हरषित रहहिं लोग सब कुरी ॥

यह (कथा) वैराग्य, विवेक और भक्ति को दृढ़ करने वाली है। तथा मोह रूपी नदी से छुटकारा दिलाने के लिये सुन्दर नाव है। कोशलपुरी (अयोध्या नगरी) में नित्य नये मङ्गलोत्सव होते हैं और सभी कुटम्बों के लोग प्रसन्न और प्रहर्षित रहते हैं ॥ ४ ॥

नित नइ प्रीति राम-पद-पंकज। सब के जिन्हहिं नमत सिव मुनि अज ॥
मंगन बहु प्रकार पहिराये। द्विजन्ह दान नाना विधि पाये ॥

उन श्री रामचन्द्र जी के चरणकमलों में जिनमें नित्य नई प्रीति सबको होती है, जिनको की शिवजी, मुनिगण और ब्रह्माजी भी नमस्कार करते है। भिक्षुकों को (राज तिलक की समाप्ति के अवसर पर) बहुत प्रकार के वस्त्राभूषण पहिनाये गये, और ब्रह्मणों ने नाना प्रकार के दान प्राप्त किये ॥ ५ ॥

दो०—ब्रह्मानंदमगन कपि, सब के प्रभुपद प्रीति।
जात न जाने दिवस तिन्ह, गये मास पट बीति ॥१५॥

सब के सब वानर ब्रह्मानन्द में मग्न हैं, प्रभु जी के चरणों में सबका परम प्रेम है। वहां निवास करते हुए उन सभी को छः मास बीत गये परन्तु किसी ने दिन बीतते नहीं जाने ॥ १५ ॥

बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाहीं। जिमि पर द्रोह संत मन माहीं ॥
तब रघुपति सब सखा बोलाये। आइ सबन्हि सादर सिरु नाये ॥

जिस प्रकार सन्तजनों के मन में दूसरों से द्रोह करने की बात स्वप्न में भी नहीं आती, उसी प्रकार वे सब वानर अपने अपने घरों से भूल गये। तब श्री रघुनाथ जी ने सभी सखाओं को बुलाया, और सभी ने आकर श्री राम जी को आदर सहित सिर झुकाकर प्रणाम किया ॥ १ ॥

परम प्रीति समीप बैठारे। भगत सुखद मृदु बचन उचारे ॥
तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई। मुखपर केहि बिधि करौं बड़ाई ॥

बहुत ही प्रेम पूर्वक श्री रामचन्द्र जी ने उनको अपने पास बैठाया और भक्तों के लिये सुख दायक कोमल वचनों से कहा, तुम लोगों ने मेरी बड़ी भारी सेवा की है, तुम्हारे मुंह पर किस तरह मैं (तुम्हारी) बड़ाई (प्रशंसा) करूं ॥२॥

तातें मोहि तुम्ह अति प्रिय लागे। मम हित लागि भवन सुख त्यागे ॥
अनुज राज संपति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही ॥

मेरे हित के लिये आपने अपने घरों को तथा समस्त सुखों को त्याग दिया, इस कारण तुम लोग मुझे अति ही प्यारे लग रहे हो। मेरे छोटे भाई, राज्य, सम्पत्ति, सीता, अपना शरीर, घर, कुटुम्ब और मित्र—॥३॥

सब मम प्रिय नहिं तुम्हहिं समाना। मृषा न कहौं मोर यह बाना ॥
सब के प्रिय सेवक यह नीती। मोरें अधिक दास पर प्रीती ॥

ये सभी मुझे इतने प्यारे नहीं हैं, जितने कि आप हैं। मैं झूठ नहीं कहता (बिलकुल सत्य कह रहा हूँ) यद्यपि यह नीति है कि सेवक सभी को प्रिय होते हैं परन्तु मुझे अपने (प्रेमी) दासों पर अधिक प्रेम है ॥४॥

दो०—अब गृह जाहु सखा सब, भजेहु मोहि दृढ़ नेम ।
सदा सर्वगत सर्वहित, जानि करेहु अतिप्रेम ॥१६॥

हे सखाओ ! अब आप सब लोग अपने अपने घरों को जाओ और दृढ़ नियम पूर्वक मुझे भजते रहो । मुझे सदा सर्वत्र व्यापक (विराजमान) और सब का हितकारी जान कर अत्यन्त प्रेम करना ॥१६॥

सुनि प्रभु वचन मगन सब भये । को हम कहाँ बिसरि तन गये ॥
एक टक रहे जोरि कर आगे । सकहिं न कछु कहि अति अनुरागे ॥

प्रभु श्रीरामचन्द्र जी के इन वचनों को सुन कर सभी वानरगण प्रेममग्न हो गये । हम कौन हैं और कहाँ पर हैं इत्यादि सब देह की सुध-बुध भूल गये । वे हाथ जोड़ कर एक टक नयनों से निहारते हुए सामने देखते रहे और अत्यधिक प्रेम के कारण कुछ भी न कह सके ॥१॥

परमप्रेम तिन्हकर प्रभु देखा । कहा बिबिध बिधिग्यान बिसेखा ॥
प्रभु सनमुख कछु कहइ न पारहिं । पुनिपुनि चरन सरोज निहारहिं ॥

प्रभु जी ने अत्यन्त प्रेम पूर्वक उन सब (वानरों) को देखा और उन्हें अनेकों प्रकार से विशेष ज्ञान का उपदेश दिया । वे श्रीरामचन्द्र जी के सामने तो कुछ कह नहीं सके और बार बार प्रभु के चरण कमलों को निहारते रहे ॥२॥

तब प्रभु भूषन बसन मँगाये । नाना रंग अनूप सुहाये ॥
सुग्रीवहिं प्रथमहिं पहिराये । बसन भरत निज हाथ बनाये ।

तब प्रभु श्रीरामचन्द्र जी ने अनेकों प्रकार के, नाना रङ्गों से विभूषित, अनुपम सुन्दर वस्त्र और आभूषण मंगवाये । पहले भरत जी ने अपने हाथों से संवार कर वानरराज सुग्रीव को वस्त्र और आभूषण पहिनाये ॥३॥

प्रभुप्रेरित लछिमन पहिराये । लंकापति रघुपति मन भाये ॥
अंगद बैठि रहा नहिं डोला । प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला ॥

श्रीरामचन्द्र जी द्वारा संकेत पाने पर लक्ष्मण जी ने लंकापति विभीषण जी को वस्त्र-भूषण पहिनाये, जो श्रीराम जी के मन को बहुत ही प्रिय लगे । अङ्गद बैठे ही रहे, वे अपनी जगह से हिले-डुले नहीं, उनकी अत्यधिक प्रीति को देख कर श्रीरामचन्द्र जी ने उन्हें नहीं बुलाया ॥४॥

दो०—जामवंत नीलादि सब, पहिराये रघुनाथ ।
हिय धरि रामरूप सब, चले नाइ पद माथ ॥

जामवान् और नील आदि सभी को श्री रघुनाथ जी ने स्वयं गहने कपड़े पहिनाये। वे सब अपने हृदय में प्रभु श्री रामचन्द्र जी के मनोहर रूप को धारण करके उनके चरणों में मस्तक झुका कर (नमस्कार करके) चल पड़े ॥१७॥ (क)

तब अंगद उठि नाइ सिरु, सजलनयन कर जोरि ।
अति बिनीत बोलेउ बचन, मनहुँ प्रेमरस बोरि ॥ १७ ॥

तब अङ्गद उठकर श्री रामचन्द्र जी के चरणों में सिर नवाकर और आँखों में आँसू भरकर हाथ जोड़ कर अत्यन्त विनीत और प्रेम रस में डुबाये हुए वचनों से बोला।

सुनु सर्बग्य कृपा-सुख-सिंधो । दीन-दया-कर आरतबंधो ।
मरती बेर नाथ मोहि बाली । गयउ तुम्हारेहि कोछें घाली ॥

हे सब कुछ जानने वाले ? भक्तों के हितकारी, दया और सुख के सागर, दीनों पर दया दिखाने वाले आर्त्तों (दुःखितों) के बन्धु ! हे नाथ मेरे पिता बाली मरते समय मुझे आप ही की गोदी में डाल गये थे ॥१॥

असरन-सरन बिरद संभारी । मोहि जनि तजहु भगत-हित-कारी ।
मोरे तुम्ह प्रभु गुरु पितु माता । जाऊँ कहाँ तजि पद जलजाता ।

इसलिये हे भक्तों के हितकारी ? आप अपनी अशरण शरण की बान को सम्भाल कर मुझे न बिसारिये। हे प्रभु ! मेरे तो स्वामी गुरु पिता माता और सब कुछ आप ही हैं। आपके इन चरण कमलों को त्याग कर (बताइये) मैं कहाँ जाऊँ ॥२॥

तुम्हहिं बिचारि कहहु नरनाहा । प्रभु तजि भवन काजु मम काहा ।
बालक ग्यान-बुद्धि-बल-हीना । राखहु सरन जानि जन दीना ।

हे नरनाथ ! आप ही विचार कर कहिये आपके श्रीचरणों का परित्याग कर घर में मेरा क्या काम है। (अर्थात् कुछ भी नहीं) हे स्वामी मैं बालक (अबोध हूँ) ज्ञान बुद्धि और बल से हीन हूँ इसलिये मुझे दीन समझ कर अपनी शरण में रखिये ॥४॥

नीचि टहल गृह कै सब करिहौं। पद-पंकज बिलोकि भव तरिहौं॥
अस कहि चरन परेउ प्रभु पाही। अब जनि नाथ कहहु गृह जाहीं॥

मैं आपके घर की नीची से नीची सब तरह की सेवा करूंगा और आपके चरण कमलों को निहारता हुआ भवसागर में तर जाऊंगा पार हो जाऊंगा। इतना कह कर अङ्गद यह कहता हुआ श्रीराम जी के चरणों में गिर पड़ा और बोला—हे प्रभो! अब मुझे घर जाने के लिये मत कहिये ॥४॥

दो०—अंगद बचन बिनीत सुनी, रघुपति करुनासीवँ।
प्रभु उठाइ उर लायेउ, सजल नयनराजीव॥

अंगद के विनय से भरे वचनों को सुनकर करुणा की सीमा प्रभु रामचन्द्रजी ने अंगद को उठा कर हृदय से लगा लिया। उस समय रघुनाथ जी के नेत्र कमल प्रेमाश्रुओं से भर आये ॥१८॥ (क)

निज उर माल बसन मनि, बालितनय पहिराइ।
बिदा कीन्ह भगवान तब, बहु प्रकार समुझाइ॥ १८॥

फिर बालि पुत्र अंगद को भगवान ने अपने हृदय की माला वस्त्र और मणि आदि पहिना कर और बहुत प्रकार से समझा बुझा कर विदा कर दिया ॥१८॥

भरत-अनुज-सौमित्र-समेता। पठवन चले भगत कृतचेता॥
अंगद हृदय प्रेम नहिं थोरा। फिरि फिरि चितव राम की ओरा॥

फिर भरत जी अपने छोटे भाई शत्रुघ्न और लक्ष्मण जी सहित भक्त (अंगद) की करनी को स्मरण करके उन्हें पहुँचाने चले। (उस समय) अङ्गद के हृदय में थोड़ा प्रेम नहीं था, अर्थात् बहुत अधिक प्रेम हृदय में भरा हुआ था। वह फिर फिर कर रामचन्द्र जी की ओर देखता था ॥१॥

बार बार कर दंड प्रनामा। मन अस रहन कहहिं मोहि रामा॥
राम बिलोकनि बोलनि चलनी। सुमिरि समिरि सोचत हँसि मिलनी॥

(अङ्गद) बारम्बार (रामचन्द्र जी को) दण्डवत् प्रणाम करता जाता था और मन में यह विचारता जाता था कि श्री रामचन्द्र जी मुझे रहने को कह दें (तो अच्छी बात है)। श्री रामचन्द्र जी की देखने की बोलने की चलने की

हँसने की सब प्रकार की रीति को याद करके अङ्गद मन में विचार करता हुआ जा रहा था ॥२॥

प्रभु रुख देखि विनय बहु भाखी। चलेउ हृदय पद-पंकज राखी ॥
अति आदर सब कपि पहुँचाये। भाइन्ह सहित भरत पुनि आये ॥

प्रभु का रुख (भेज देने का) देख कर, बहुत से विनय भरे वचन कह कर, तथा उनके (श्री राम जी के) चरण कमलों को हृदय में रखकर अङ्गद (इच्छा न होने पर भी) चल पड़ा। भाइयों सहित भरत जी आदर पूर्वक सब बन्दरों को पहुँचाकर (मार्ग में छोड़ कर) वापिस लौट आये ॥३॥

तब सुग्रीव चरन गहि नाना। भाँति विनय कीन्ही हनुमाना ॥
दिन दस करि रघुपति-पद-सेवा। पुनि तव चरन देखिहौं देवा ॥

तब हनुमान जी ने सुग्रीव जी के चरण कमल पकड़ कर कई प्रकार से विनती की और कहा, महाराज मैं दस दिन तक रघुनाथ जी की सेवा करके फिर मैं आकर आपके चरणों के दर्शन करूंगा ॥४॥

पुन्य पुंज तुम्ह पवन कुमारा। सेवहु जाइ कृपा आगारा ॥
अस कहि कपि सब चले तुरंता। अंगद कहइ सुनहु हनुमंता ॥

(सुग्रीव जी ने उत्तर दिया—) हे पवनपुत्र हनुमान्! तुम बड़े पुण्य पुंज (पुण्यवान्) हो, जाओ और जाकर श्री रामचन्द्र जी की सेवा करो। फिर अङ्गद बोले—हे हनुमान्! सुनिये ॥५॥

दो॰—कहेहु दंडवत प्रभु सन, तुम्हहि कहौं कर जोरि।
बार बार रघुनायकहि, सुरति करायेहु मोरि ॥

मैं तुमसे दोनों हाथ जोड़कर कहता हूं कि प्रभु श्री रामचन्द्र जी से मेरा दण्डवत प्रणाम कहना, और उनको बार बार मेरी याद दिलाते रहना।

अस कहि चलेउ बालिसुत, फिरि आयेउ हनुमंत।
तासु प्रीति प्रभु सन कही, मगन भये भगवंत ॥

ऐसा कहकर अङ्गद जी चल दिये और हनुमान जी वापिस लौट आये, और आकर प्रभु श्री रामचन्द्र जी से उनके प्रेम का वर्णन किया जिसे सुन कर भगवान् प्रेम में मग्न हो गये ॥१८॥ (क)

कुलिसहु चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि।
चित खगेस अस रामकर, समुझि परै कहु काहि॥ १६॥

(काकभुशुण्डी जी कहते हैं—) हे पक्षिराज गरुड़! सुनो, श्री रामचन्द्रजी का चित्त जब कठोर होता है (किसी अपराधी को दण्ड देने के समय) तो वह वज्र से भी अधिक कठोर हो जाता है, और जब (किसी भक्त पर प्रसन्न होकर वर देने के लिये) कोमल होता है तो उसकी कोमलता पुष्पों से भी अधिक हो जाती है। इस प्रकार का रामचन्द्र जी का चित्त भला किसी की समझ में आ सकता है? (अर्थात्, कदापि नहीं)।

पुनिकृपाल लियो बोलि निपादा। दीन्हे भूषन बसन प्रसादा॥
जाहु भवन मम सुमिरन करेहू। मन क्रम वचन धर्म अनुसरेहू॥

फिर कृपालु रामचन्द्र जी ने निषादराज गुह को बुलाया और उसे वस्त्र और भूषण प्रसाद (उपहार) में दिये और कहा तुम भी अब अपने घर जाओ और मेरा स्मरण करते रहना। अपने मन, वचन और कर्म से सदैव धर्म का आचरण करते रहना॥१॥

तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता॥
वचन सुनत उपजा सुख भारी। परेउ चरन भरि लोचन वारी॥

तुम मेरे सखा (मित्र) हो, और जैसे भरत मेरा भाई है, उसी प्रकार तुम भी मेरे भाई हो, अतएव (भाई के नाते) सदैव अयोध्यापुरी में आते जाते रहना। रामचन्द्र जी के इन (प्रेम भरे) वचनों को सुनकर गुहराज को बहुत सुख पहुँचा (प्रसन्नता हुई) और (प्रेम में मग्न हो कर) आँखों में जल (आँसू) भरकर रामचन्द्रजी के श्री चरणों में गिर पड़ा॥२॥

चरन नलिन उर धरि गृह आवा। प्रभुसुभाउ परिजनन्हि सुनावा॥
रघुपतिचरित देखि पुरवासी। पुनिपुनि कहहिं धन्य सुखरासी॥

फिर भगवान् के चरण रूपी कमलों को हृदय में रखकर गुहराज अपने घर में आये और आकर अपने कुटम्बी जनों को भगवान् का स्वभाव सुनाया। श्री रघुनाथ जी का यह चरित्र देखकर अवधपुरी के निवासी यह कहते थे कि सुख को देने वाले श्री रामचन्द्र जी धन्य हैं॥३॥

राम राज बैठे त्रैलोका । हरपित भये गये सब सोका ॥
बयरु न कर काहू सन कोई । रामप्रताप विपमता खोई ॥

भगवान् रामचन्द्र जी ने राज्यसिंहासन पर बैठने पर तीनों लोकों के सभी शोक दूर हो गये और सब लोग आनन्दित हो गये । कोई किसी के साथ बैर (शत्रुता) नहीं करता था, श्री रामचन्द्र जी के प्रताप से सभी की विपमता (ऊंच-नीच भाव) मिट गई ॥४॥

दो०—बरनाश्रम निज धरम, निरत वेदपथ लोग ।
चलहिं सदा पावहिं सुख, नहिं भय सोक न रोग ॥ २० ॥

सभी लोग अपने अपने वर्ण और आश्रम में रहते हुए वैदिक मार्ग में तत्पर हो धर्म पूर्वक चलते थे (जीवन बिताते थे) । इस प्रकार वे सदैव सुख प्राप्त करते थे और काम शोक तथा रोग किसी को भी न सताते थे ।

दैहिक दैविक भौतिक तापा । रामराज नहिं काहुहि व्यापा ॥
सब नर करहिं परसपर प्रीती । चलहिं स्वधर्मनिरत स्रुतिनीती ॥

रामराज्य में किसी को भी दैहिक, (शरीर में होने वाला) दैविक (जल में गिरना अग्नि में जलना आदि) तथा भौतिक (हिंसक जन्तु आदि से काटना) तीनों प्रकारों के तापों दुःखों में से कोई भी नहीं सताता था । सभी मनुष्य परस्पर प्रेम करते और वेदों में बताई हुई नीति-मर्यादा में तत्पर रहकर अपने अपने धर्म का पालन करते थे ॥२॥

चारिहु चरन धरम जगमाहीं । पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं ॥
राम-भगति-रत सब नरनारी । सकल परमगति के अधिकारी ॥

संसार में धर्म तपस्या, दया ज्ञान और दान रूप चारों चरणों से भर गया। और पाप तो स्वप्न में भी जाता रहा । पुरुष और स्त्री सभी रामचन्द्र जी की भक्ति में रत (लीन) थे । इस कारण सभी परम गति मोक्ष के अधिकारी हो गये ॥३॥

अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा । सब सुंदर सब बिरुज सरीरा ॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना । नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना ॥

न किसी की छोटी अवस्था में मृत्यु होती थी न किसी को किसी भी प्रकार की पीड़ा दुःख ही होता था । सभी के शरीर सुन्दर और रोग रहित होते

रामराज्य में न कोई दुखी था, न कोई मूर्ख (अनपढ़) था, और न ही शुभ लक्षणों से ही हीन था ॥३॥

सब निर्दम्भ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी ॥
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपटसयानी ॥

सभी लोग दम्भ (अभिमान) से रहित थे, सब धर्म में रत और पुण्यात्मा थे, सभी नर नारी चतुर और गुणी थे। सभी, गुणों के ज्ञाता और पंडित तथा ज्ञानी थे। सभी कृतज्ञ (किये हुए उपकार को जानने वाले) और कपट करने की चतुराई से हीन थे ॥४॥

दो०—रामराज नभगेस सुनु, सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन, कृत दुख काहुहि नाहिं ॥२१॥

(काकभुशुण्डी जी कहते हैं) हे गरुड़ जी! सुनिये, श्री रामचन्द्र जी के राज्य में स्थावर जङ्गमात्मक सारे जगत् में काल, कर्म और स्वभाव तथा गुणों से उत्पन्न होने वाले दुःख किसी को भी नहीं होते थे ॥२१॥

भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला
भुवन अनेक राम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू

सातों समुद्रों की मेखला (घिरी हुई) भूमि के एकमात्र राजा अयोध्या-पति श्री रामचन्द्र जी थे। जिन के एक एक रोम में ब्रह्माण्ड (व्याप्त) हैं उनके लिये (सातों द्वीपों की) यह प्रभुता कुछ भी नहीं है ॥१॥

सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरनत हीनता घनेरी ॥
सो महिमा खगेस जिन्ह जानी। फिरि यहिं चरित तिन्हहुँ रति मानी ॥

प्रभु श्री रामचन्द्र जी की इस महिमा को समझ लेने पर तो यह कहने में कि वे सम्पूर्ण पृथ्वी के एक मात्र स्वामी हैं, उनकी बड़ी हीनता है। पर हे गरुड़ जी! उस महिमा को जिन्होंने (भली प्रकार) समझ लिया है, उन्होंने फिर भी इस लीला में बड़ा प्रेम माना है ॥

सोउ जाने कर फल यह लीला। कहहिं महा मुनिवर दम सीला ॥
रामराज कर सुख संपदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा ॥

क्योंकि प्रभु जी की उस महिमा को भी विचार लेने का फल यह लीला है इस प्रकार जितेन्द्रिय (इन्द्रियों को वश में रखने वाले) बड़े बड़े मुनिराज

ते हैं। रामराज्य की सुख सम्पत्ति का वर्णन शेषनाग जी और सरस्वती भी नहीं कर सकती ॥२॥

सब उदार सब पर उपकारी। विप्र--चरन---सेवक नरनारी ॥
एक-नारि-व्रत-रत सब झारी। ते मन वचक्रमपति-हितकारी ॥

(रामराज्य में) सभी स्त्री पुरुष उदार स्वभाव वाले, परोपकारी और भी ब्राह्मणों के पवित्र चरणों के सेवक थे। सभी पुरुष एक नारीव्रत वाले, र सभी स्त्रियाँ मन, वचन एवं शरीर से पति का हित करने वाली थीं।

दो०—दंड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्तक नृत्यसमाज।
जितहु मनहिं अस सुनिय जग, रामचंन्द्र के राज ॥२२॥

रामचन्द्र जी के राज्य मे दंड केवल सन्यासियों के हाथों मे सुना जाता था, अर्थात् कोई भी ऐसा अपराध नहीं करता था जिसे कि दण्ड दिया जाता हो, इस लिये सन्यासाश्रम की मर्यादा के लिये दण्ड केवल सन्यासियों के हाथ ही रहते थे। भेद शब्द नाचने वालों के नृत्य समाज में ही सुना जाता था अन्यत्र नहीं, अर्थात् भेद शब्द वार बार तालो के नाचने पर ही सुना जाता था, इस प्रकार नहीं कि किसी में भेद भाव हो, अर्थात् सभी प्रजा गण परस्पर प्रेम पूर्वक रहते थे। और जीत शब्द केवल मन को जीतने के लिये ही सुनाई पड़ता था, क्योंकि और कोई शत्रु शेष न था जिसके लिये जीत शब्द व्यवहृत होता।

फूलहिं फरहि सदा तरु कानन। रहहिं एक संग गज पंचानन ॥
खगमृग सहज वयरु विसराई। सवन्हि परसपर प्रीति वढ़ाई ॥

वनों में हमेशा वृक्ष फलते फूलते थे। हाथी और शेर एक साथ रहते थे। पक्षियों और हिरनों आदि पशुओं ने स्वाभाविक वैर भाव भुला कर आपस में प्रेम भाव बढ़ा लिया था ॥१॥

कूजहिं खग मृग नाना वृंदा। अभय चरहिं वन करहिं अनंदा ॥
सीतल सुरभि पवन वह मंदा। गुंजत अलि लै चलि मकरंदा ॥

पक्षीगण मीठी बोली बोलते हुए, और नाना प्रकार के पशु (मृगादिक) वनों मे भय रहित होकर विचरते और आनन्द करते थे। शीतल सुखदायक

गन्धित पवन हमेशा मन्द मन्द चलता रहता था। भ्रमर गुंज गुंज कर
पों का रस लेते थे ॥२॥

लता विटप माँगे मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं ॥
ससंपन्न सदा रह धरणी। त्रेता भइ कृत जुग कै करणी ॥

बेलें और वृक्ष मांगने से ही मधु (रस) टपका देते थे। गौएँ मन चाहा
ध देतीं थीं। पृथ्वी सदा शस्य सम्पन्न (खेतों से भरी हुई) रहती थी।
ता युग में सत्ययुग की सी करनी (स्थिति) हो गई थी ॥३॥

प्रगटी गिरिन्ह विविध मनिखानी। जगदातमा भूप जग जानी ॥
सरिता सकल बहहिं बरबारी। सीतल अमल स्वादु सुखकारी ॥

सम्पूर्ण जगत के आत्मा स्वरूप भगवान श्री रामचन्द्र जी को जगत का
जा जान कर पर्वतों ने अनेकों प्रकार की मणियों की खानें प्रकट कर दी
भी नदियों में श्रेष्ठ, शीतल, निर्मल और सुखप्रद स्वादिष्ट जल बहता
॥४॥

सागर निज मरजादा रहहीं। डारहिं रतन तटन्हि नर लहहीं ॥
सरसिज-संकुल सकल तड़ागा। अतिप्रसन्न दस-दिसा-विभागा ॥

(सातों) समुद्र अपनी मर्यादा में रहते थे, और अपनी लहरों के द्वारा
केनारों पर रत्न डाल देते थे। जिनको मनुष्य प्राप्त कर लेते थे। सभी सरोवर
कमलों से भरे रहते थे, और दिशायें अत्यन्त प्रसन्न थीं ॥५॥

दो०—बिधु महि पूर मयूखन्हि, रवि तप जेतनेहिं काज।
माँगे बारिद देहिं जल, रामचन्द्र के राज ॥२३॥

श्री रामचन्द्र जी के राज्य में चन्द्रमा अपनी अमृत वर्षा किरणों से पृथ्वी
को भर देता था। सूर्य उतना ही तपता था जितनी उसकी आवश्यकता होती
ी और मेघ मांगने मात्र से ही (जहां जितनी उनकी आवश्यकता हो) जल
रसा देते थे। ॥२३॥

कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कहुँ दीन्हे ॥
स्रुति-पथ-पालक धरम-धुरंधर। गुनातीत अरु भोगपुरंदर ॥

करोड़ों (असंख्य) अश्वमेध यज्ञ प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने किये, और
ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के दान दिये। श्री रामचन्द्र जी वेद मार्ग के रक्षक

धर्म की धुरी को धारण करने वाले और गुणातीत होने पर भी ऐश्वर्य में इन्द्र के समान थे ।।१।।

पतिअनुकूल सदा रह सीता । सोभाखानि सुसील विनीता ॥
जानति कृपासिंधु-प्रभुताई । सेवति चरनकमल मन लाई ॥

शोभा की खान सुन्दर स्वभाव वाली विनयशील श्री सीता जी भी सदा पति के अनुकूल रहती थीं । वे कृपा के धाम श्री रामचन्द्र जी की प्रभुता (असीम महिमा) को जानती थीं । और मन लगा कर रामचन्द्र जी के चरण कमलों की सेवा करती थी ।।२।।

जद्यपि गृह सेवक सेवकिनि । विपुलसकल सेवाविधि गुनी ॥
निजकर गृहपरिचरजा करई । रामचंद्र-आयसु अनुसरई ॥

यद्यपि घर में बहुत से सेवक और सेविकाएं है, और वे सभी सेवा में संलग्न थीं, तो भी श्री सीता जी अपने हाथ से गृह का काम काज करतीं और श्री रामचन्द्र जी की आज्ञा का अनुसरण करती थीं ।।२।।

जेहि विधि कृपासिंधु सुख मानइ । सोइ कर श्री सेवा विधि जानइ ॥
कौसल्यादि सासु गृह माही । सेवइ सबन्हि मान मन नाहीं ॥
उमा -- रमा -- ब्रह्मादि -- वंदिता । जगदंबा संततसनिंदिता ॥

कृपासिन्धु श्री रामचन्द्र जी जिस प्रकार से प्रसन्न रहें श्री सीता जी उसी प्रकार से काम करती थीं । वे सेवा करने की सब प्रकार की विधि को समझती थीं । घर में कौसल्या आदि सभी सासुओं की जानकी जी सेवा करती थीं (इस कार्य के लिये) न तो उन्हें अभिमान था और न मद ही, श्री सीता जी पार्वती, लक्ष्मी जी और ब्रह्माणी आदि देवियों से वंदित और सदा अनिन्दित जिसकी कभी कोई निन्दा न करे, एसी जगत् की माता थी ।

दो०—जासु कृपाकटाच्छ सुर, चाहत चितवनु सोइ ।
राम-पदारविंद-रति, करति सुभावहिं खोइ ।।२४।।

देवता (सदैव) जिनकी कृपादृष्टि चाहते हैं, परन्तु वे ध्यान नहीं देतीं, वे ही लक्ष्मी रूपा श्री सीता जी अपने (चन्चल) स्वभाव का परित्याग कर श्री रामचन्द्र जी के चरण कमलों में-प्रीति-स्नेह करती हैं ।।२४।।

सेवहिं सानुकूल सब भाई। राम-चरन-रति अति अधिकाई॥
प्रभु-मुख-कमल विलोकत रहहीं। कबहुँ कृपाल हमहिं कछु कहहीं॥

सभी (चारों) भाई अनुकूल (सेवा में) रह कर उनकी सेवा करते हैं, श्री रामचन्द्र जीके चरणारविन्दों में उनका प्रेमभाव अधिकाधिक बढ़ता जाता है। सब (भाई) प्रभु श्रीराम जी के कमल के समान मुख की ओर निहारते रहते हैं कि कृपालु श्री रामचन्द्र जी कभी कुछ आज्ञा हमें भी करें ॥१॥

रामकरहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नानाभाँति सिखावहिं नीती॥
हरषित रहहिं नगर के लोगा। करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा॥

श्री रामचन्द्र जी भी अपने भाइयों से स्नेह करते हैं, और उनको नाना भांति की नीतियाँ सिखलाते रहते हैं। नगर के समस्त लोग प्रसन्न चित्त रहते हैं और सब प्रकार के देवताओं को भी कठिनता से प्राप्त होने योग्य देव दुर्लभ भोगों को भोगते हैं ॥२॥

अहनिसि विधिहिं मनाव रहहीं। श्रीरघुवीर-चरन-रति चहहीं॥
दुइ सुत सुंदर सीता जाये। लवकुश वेद पुरानन्हि गाये॥

वे लोग रात दिन विधाता को मनाते रहते हैं, और उनसे रघुवीर जी के चरणों में प्रीति चाहते हैं। सीता जी के लव और कुश (नामक) दो पुत्र रत्न पैदा हुए जिनका वेद पुराणों ने वर्णन किया है ॥३॥

दोउ विजई विनई गुनमंदिर। हरि-प्रतिविंब मनहुँ अतिसुन्दर॥
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे। भये रूप गुन सील घनेरे॥

वे दोनों ही युगल (लव और कुश) बड़े ही विजयी, विनयशील और गुणों के धाम थे। सुन्दर इतने अधिक थे मानो स्वयं श्री विष्णु को प्रतिबिम्ब हों। सभी भ्राताओं के दो दो पुत्र हुए वे बड़े ही सुन्दर गुणवान और सुशील थे ॥४॥

दो०—ग्यान-गिरा-गो-ऽतीत अज, माया-मन-गुन-पार।
सोइ सच्चिदानंदघन, कर नरचरित उदार॥२५॥

जो (भगवान्) ज्ञान वाणी और इन्द्रियों से दूर तथा अजन्मा है, एवं माया, मन और गुणों से परे हैं। वही सत् चित् आनन्द घन भगवान श्रेष्ठ नरलीला करते हैं ॥२५॥

प्रातकाल सरजू करि मज्जन। बैठहिं सभा संग द्विज सज्जन ॥
बेद पुरान बसिष्ठ बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं ॥

श्री रघुनायक रामचन्द्र जी प्रातःकाल सरयू नदी में स्नान करके ब्राह्मणों और सज्जनों के साथ मिल करके सभा में बैठते हैं, मुनि वशिष्ठ जी वेद और पुराणों का बखान करते हैं, तथा श्री रामचन्द्र जी यद्यपि सभी कुछ जानते हैं फिर भी (ध्यान पूर्वक) सुनते हैं।

अनुजन्ह संजुत भोजन करहीं। देखि सकलजननी सुख भरहीं ॥
भरत सत्रुहन दोनों भाई। सहित पवनसुत उपवन जाई ॥

सभी अनुजों (भ्राताओं) को साथ लेकर भोजन करते हैं, जिन्हें देख देख कौशल्यादि सभी माताएँ आनन्द से भर जाती हैं। भरत और शत्रुघ्न दोनों भ्राता पवन कुमार हनुमान के साथ उद्यानों में जाकर ॥२॥

बूझहिं बैठि राम गुन गाहा। कह हनुमान सुमति अवगाहा ॥
सुनत बिमल गुन अति सुख पावहिं। बहुरि बहुरि करि बिनय कहावहिं ॥

और वहाँ बैठ कर (हनुमान जी से) श्री रामचन्द्र जी के गुणों की कथाएँ पूछते हैं। और पवनकुमार हनुमान जी अपनी सहजबुद्धि के अनुसार उन गुणों का वर्णन करते हैं। श्री रघुनाथ जी के निर्मल गुणों को श्रवण कर दोनों भाई अत्यन्त सुख प्राप्त करते हैं और विनय पूर्वक बार बार (उस पुण्य कथा को) कहलवाते हैं ॥३॥

सब के गृह गृह होंहिं पुराना। रामचरित पावन बिधि नाना ॥
नर अरु नारि राम गुन गानहिं। करहिं दिवस निसि जात न जानहिं ॥

सभी (अवध वासियों के) घरों में पुराणों और अनेकों प्रकार के पवित्र रामचरित्रों की कथा होती हैं। क्या स्त्री क्या पुरुष सभी श्रीरामचन्द्र जी के गुण गाते हैं। और आनन्दाधिक्य के कारण दिन रात का बीतना उन्हें मालूम ही नहीं होता। ॥४॥

दोहा—अवधपुरी बासिन्ह कर सुख संपदा समाज ॥
सहस सेष नहिं कहि सकहिं जहँ नृप राम बिराज ॥ २६ ॥

जहाँ पर राजश्रेष्ठ श्री रामचन्द्र जी विराजमान हैं। उस अयोध्यापुरी

निवासियों के सुख सम्पत्ति (ऐश्वर्य) और समाज का वर्णन हजारों शेष-
ाग नहीं कर सकते ॥२६॥

नारदादि सनकादि मुनीसा । दरसन लागि कोसलाधीसा ॥
दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं । देखि नगरु बिरागु बिसरावहिं ॥

नारद आदि और सनक आदि मुनीश्वर अयोध्यापति रामचन्द्र जी के दर्शनों के लिये रोज रोज अयोध्यापुरी में आते हैं और अयोध्या के दर्शन कर वैराग्य को भुला देते हैं (अनुरक्त हो जाते हैं) ॥१॥

जातरूप मनि रचित अटारीं । नाना रंग रुचिर गच ढारीं ॥
पुर चहुँ पास कोट अति सुन्दर । रचे कँगूरा रंग रंग बर ॥

(अयोध्यानगरी) में रत्न और मणियों से सजी हुई अटारियाँ थीं और उनमें अनेक (मणि रत्नों से जडी हुई) फर्शें थीं । नगर के चारों ओर बड़ा सुन्दर परकोटा (दीवार) थी, जिस पर सुन्दर रंग बिरंगे कंगूरे बने हुए थे ॥ २ ॥

नव ग्रह निकर अनीक बनाई । जनु घेरी अमरावति आई ॥
महि बहु रंग रचित गच काँचा । जो बिलोकि मुनिबर मन नाचा ॥

मानों (सूर्यचन्द्र) आदि नवों ग्रहों की बड़ी भारी सेना ने मिल कर अमरावती (इन्द्रपुरी) से आकर घेर लिया हो । फर्श पर नाना प्रकार के रङ्गों के शीशों की पच्चीकारी थी, जिसे देख कर श्रेष्ठ मुनियों के मन नाच उठते थे ॥ ३ ॥

धवल धाम ऊपर नभ चुंबत । कलस मनहुँ रबि ससि दुति निंदत
बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं । गृह गृह प्रति मनि दीप बिराजहिं

धवल (श्वेत) मकानों के शिखर मानो आकाश को चूम रहे और उनके ऊपर लगे हुए कलश मानो अपने प्रकाश से सूर्य और चन्द्रम कान्ति की भी निन्दा कर रहे थे । (राजमहलों में) बहुत सी मणियों रचे हुए झरोखे शोभायमान हो रहे थे, और प्रत्येक घर घर में मणि दीपक शोभा पा रहे थे ॥ ४ ॥

छन्द—मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरीं विद्रुम रची ॥
मनि खंभ भीति बिरंचि बिरची कनक मनि मरकत खची ।
सुन्दर मनोहर मंदिरायत अजिर रुचिर फटिक रचे ॥
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे ।

मणियों के दीपक भवनों की शोभा बढा रहे थे, विद्रुम (मूंगे) बनी हुई देहलियाँ चमक रही थीं । मणियों के खम्भे थे, पन्ने से जड़ी सुवर्ण की दीवारें इतनी सुन्दर थी मानो ब्रह्मा ने (विशेष रूप से बनाई हों । महल सुन्दर मनोहर और विशाल थे, और उनमें सु स्फटिक के आंगन बने हुए थे प्रत्येक द्वार पर सोने के किवाड़ थे, और उ हीरे जड़े हुए थे ॥ ५ ॥

दोहा—चारु चित्रसाला गृह गृह प्रति लिखे बनाइ ॥
राम चरित जे निरख मुनि ते मन लेहिं चुराइ ॥ २७ ॥

प्रत्येक घर घर में सुन्दर चित्र शालाएँ थीं, जिनमें श्री रामचन्द्र के चरित्र के चित्र बड़ी सुन्दरता के साथ संवार कर अंकित हुए थे । वे (चि देखने वाले मुनियों तक के चित्त को चुरालेते थे । (साधारण जनकी तो ही क्या) ॥२७॥

सुमन वाटिका सबहिं लगाई । बिबिध भांति करि जतन बना
लता ललित बहु जाति सुहाई । फूलहिं सदा बसंत कि ना

सभी (नगर निवासी) लोगों ने प्रयत्न करके भिन्न भिन्न प्रकार पुष्प वाटिकाएँ (फुलवारियां) लगा रक्खी थीं । जिनमें बहुत प्रकार की जा की-सुन्दर और ललित लताएँ सदा वसन्त ऋतु के समान फूलती फ रहती थीं ॥१॥

गुंजत मधुकर मुखर मनोहर । मारुत त्रिबिधि सदा बह सुन्दर
नाना खग बालकन्हि जिआए । बोलत मधुर उड़ात सुहाए

उन पुष्पवाटिकाओं में भ्रमर सुरीली मनोहर ध्वनि से गूँजा क थे । वायु सदैव तीनों प्रकार की (शीतल, मंद, सुगंधित) बहती रह थी । बालकों ने नाना प्रकार के पत्ती पाल रक्खे थे जो मधुर बोलि बोलते हुए और उड़ते हुए बहुत सुंदर लगते थे ॥ २ ॥

मोर हंस सारस पारावत। भवननि पर सोभा अति पावत॥
जहँ तहँ देखहिं निज परिछाहीं। बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं॥

मोर, हंस, सारस और कबूतर भवनों के ऊपर (ठहरे हुए) अत्यधिक शोभा प्राप्त कर रहे थे, वे पक्षी जहाँ-तहाँ (शीशों की दीवारों पर और छतों पर) अपनी परछाईं देख कर (उन्हें और पक्षी समझ कर बहुत प्रकार से मधुर बोली बोलते और नाचते फिरते थे ॥३॥

सुक सारिका पढ़ावहीं बालक। कहहु राम रघुपति जनपालक॥
राज दुआर सकल बिधि चारू। बीथीं चौहट रुचिर बजारू॥

कहीं पर बालक तोता और मैना को पढा रहे थे, कि कहो राम, रघुपति, जनपालक। राजद्वार सब प्रकार से मनोहर थे और गलियाँ चौराहे और बाजार सभी सुन्दर थे।

छं०—बाजार रुचिर न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए।
जहँ भूप रमानिवास तहँ की संपदा किमि गाइए॥
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते।
सब सुखी सब सच्चरित सुन्दर नारि नर सिसु जरठ जे॥

सुन्दर बाजारों का वर्णन करते नहीं बनता था, जहाँ पर सभी वस्तुएँ बिना मूल्य ही मिल जाती थीं। जहाँ के राजा स्वयं लक्ष्मीनाथ हों वहाँ की सुख सम्पत्ति का वर्णन कैसे किया जा सकता है। बजाज (कपड़े के व्यापारी) सराफ (सोने चांदी के व्यापारी) तथा अन्य बनिये बैठे हुए ऐसे मालूम पड़ते थे कि मानों अनेकों कुबेर (बैठे हों)। सब स्त्री पुरुष बच्चे और बूढ़े जो भी वहां पर थे, सभी सुखी-सच्चरित्र और सुन्दर थे॥ ४॥

दो०—उत्तर दिसि सरजू बह निर्मल जल गंभीर।
बाँधे घाट मनोहर स्वल्प पंक नहिं तीर॥ २८॥

अयोध्या नगरी के उत्तर दिशा में स्वच्छ निर्मल गहरे जल वाली सरयू नदी बहती थी, जिसके मनोहर घाट बंधे हुए थे, और किनारों पर स्वल्प मात्र भी कीचड़ नहीं था।

दूरि फराक रुचिर सो घाटा । जहँ जल पिअहिं बाजि गज ठाटा ॥
पनिघट परम मनोहर नाना । तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना ॥

वहां से कुछ ही दूरी पर खुली हुई जगह में वह सुन्दर घाट है जहां पर घोड़ों और हाथियों के झुण्ड के झुण्ड आकर पानी पिया करते थे। पानी भरने के लिये भी बहुत से सुन्दर पनघट बने हुए थे जहाँ पर (स्त्रियों का आवागमन होने के कारण) पुरुष स्नान नहीं करते थे।

राजघाट सब बिधि सुन्दर बर । मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर ॥
तीर तीर देवन्ह के मंदिर । चहुँ दिसि तिन्ह के उपवन सुन्दर ॥

सब प्रकार से सुन्दर और श्रेष्ठ (एक ओर) राजघाट भी बने हुए थे, जहां पर चारों वर्णों के पुरुष स्नान करते थे। और किनारे-किनारे पर देवताओं के मन्दिर बने हुए थे, जिनके चारों ओर (बहुत ही मनोहर) सुन्दर उपवन लगाये हुए थे ॥ २ ॥

कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी । बसहिं ग्यान रत मुनि सन्यासी ॥
तीर तीर तुलसिका सुहाई । बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई ॥

सरयू नदी के किनारे कहीं कहीं उदासी और सन्यासी मुनि लोग ज्ञान में तत्पर हुए निवास करते थे। कहीं-कहीं नदी के किनारे पर मुनि जनों के लगाये हुए पवित्र तुलसी के झुण्ड के झुण्ड दिखाई दे रहे थे ॥ ३ ॥

पुर सोभा कछु बरनि न जाई । बाहेर नगर परम रुचिराई ॥
देखत पुरी अखिल अघ भागा । बन उपवन बापिका तड़ागा ॥

नगर की शोभा का तो कुछ वर्णन ही नहीं किया जा सकता था नगर के बाहिर भी बहुत प्रकार की रमणीकता थी। श्री अयोध्या पुरी के दर्शन करते ही समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, वहां सर्वत्र वन, उपवन (बगीचे) बावड़ियाँ और तालाब (भरे हुए थे) ॥ ४ ॥

छं०—बापीं तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहीं ।
सोपान सुन्दर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहहीं ॥
बहु रंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुञ्जारहीं ।
आराम रम्य पिकादि खग रव जनु पथिक हंकारहीं ॥

(सर्वत्र) निरुपम बावड़ियां तालाव, एवं मनोहर तथा विशाल कुँएँ शोभा बढ़ा रहे थे, जिनकी सुन्दर, निर्मल जल वाली सीढ़ियां देवताओं और मुनियों तक के मनों को मोहित कर रही थी। उनमें रंगविरंगे कमल खिल रहे थे और अनेक पक्षी चहचहा रहे थे, और गुंजार कर रहे थे। अत्यन्त मनोहर बागों में कोयल पपीहा आदि पक्षी गणों की सुन्दर बोलियां ऐसी जान पड़ती थी मानों वे पक्षी राह चलने वालों को (अपने पास) बुला रहे हों।

दो०—रमानाथ जहँ राजा, सो पुर बरनि कि जाय।
अनिमादिक सुख संपदा, रहीं अवध सब छाइ ॥२६॥

जिस नगरी के राजा स्वयं लक्ष्मीपति श्री भगवान् हों, उस नगरी का कहाँ तक वर्णन किया जा सकता है। अणिमा आदिक आठों सिद्धियां तथा सम्पूर्ण सुख सम्पत्तियां अयोध्या में छा रही थीं ॥ २६ ॥

जहँ-तहँ नर रघुपति गुन गावहिं। बैठि परसपर इहइ सिखावहिं॥
भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहि। शोभा शील रूप गुन धामहि॥

लोग जहाँ-तहाँ श्री रघुनाथ जी का ही गुण गान करते हुए विचर रहे थे, और परस्पर मिलकर बैठकर एक दूसरे को यही शिक्षा दे रहे थे कि शरण में आये हुए की रक्षा करने वाले श्री रामचन्द्र जी का भजन करो एवं शोभा शील और गुणों के धाम श्री रघुनाथ जी का भजन करो ॥ १ ॥

जलज विलोचन स्यामल गातहि। पलक नयन इव सेवक त्रातहि॥
धृत सर रुचिर चाप तूनीरहि। संत कंज बन रवि रनधीरहि॥

कमल के समान नेत्रों वाले और एवं श्यामल (नीले रङ्ग के) शरीर वाले श्री रघुनाथ जी का भजन करो, जैसे पलकें आंखों की रक्षा करती हैं, वैसे ही सेवकों की रक्षा करने वाले श्री रघुनाथ जी का भजन करो, सुन्दर बांण, धनुष और तरकस धारण करने वाले का भजन करो। संत रूपी कमलों के वन को प्रफुल्लित करने वाले सूर्य रूप रणधीर श्री रामचन्द्र जी को भजो ॥ २ ॥

काल कराल व्याल खगराजहि। नमत राम अकाम ममता जहि॥
लोभ मोह मृगजूथ किरातहि। मनसिज करि-हरिजन सुखदातहि॥

काल रूपी भयानक सर्प के नाश करने वाले श्रीराम रूप गरुड़ जी का भजन करो। निष्काम (मनोकामना रहित) भाव से नमस्कार करते ही जो ममता का नाश कर देते हैं उन श्री रामचन्द्र जी को भजो। लोभ मोह रूपी हिरणों के समूह को नष्ट कर देने वाले श्रीराम रूप किरात का भजन करो। कामदेव रूपी हाथी के लिये सिंह रूप तथा सेवक जनों को सुख देने वाले श्रीरामचन्द्र जी का भजन करो॥ ३॥

संसय सोक निविड़ तम भानुहि। दनुज गहन वन दहन कृसानुहि॥
जनकसुता समेत रघुवीरहि। कस न भजहु भंजन भव भीरहि॥
वहु वासना मसक हिम रासिहि। सदा एकरस अज अविनासिहि॥
मुनि रंजन भंजन महि भारहि। तुलसीदास के प्रभुहि उदारहि॥

संशय (सन्देह) और शोक रूपी घने अन्धकार को नष्ट करने के लिये श्रीराम रूप सूर्य का भजन करो, और राक्षस रूपी घने जङ्गल को भस्म कर देने वाले श्रीराम रूप अग्नि को भजो। अनेक वासना रूपी मच्छों का नाश करने के लिये हिम-वर्फ, ठंड के समूह रूप और नित्य एक रस, अजन्मा और अविनाशी श्री राम जी को भजो, मुनियों को रंजन करने वाले, पृथ्वी का भार उतारने वाले और तुलसीदास के उदार स्वामी श्री रामचन्द्र जी का भजन करो॥ ४॥

दो०—एहि विधि नगर नारि नर करहिं राम गुन गान।
सानुकूल सव पर रहहिं संतत कृपानिधान॥३०॥

इस प्रकार नगर के सभी स्त्री पुरुष श्री रामचन्द्र जी का यशोगान कर रहे थे, और दयावतार श्री रामचन्द्र जी सभी पर सदा अनुकूल (सहायक) होकर रहते थे॥ ३०॥

जव ते राम प्रताप खगेसा। उदय भयउ अति प्रवल दिनेसा॥
भूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका। वहुतेन्ह सुख वहुतन मन सोका॥

(काक भुशण्डी जी कह रहे हैं—) हे खगेश (गरुड़)! जव से राम प्रताप रूपी सूर्य का उदय हुआ, तव तीनों लोकों में प्रकाश छा गया। इससे वहुतों को सुख और वहुतों को शोक हुआ॥ १॥

जिन्हहि सोक ते कहउँ बखानी। प्रथम अविद्या निसा नसानी ॥
अघ अलूक जहँ तहँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने ॥

जिन-जिन को शोक हुआ उन सभी का मैं वर्णन करता हूँ, सर्व प्रकार तो अविद्या रूपी रात्रि नष्ट हो गई, पाप रूपी उल्लू इधर-उधर छुप गये। और काम क्रोध रूपी कुमुद मुँद गये।

बिबिध कर्म गुन काल सुभाऊ। ए चकोर सुख लहहिं न काऊ ॥
मत्सर मान मोह मद चोरा। इन्ह कर हुनर न कवनिहुँ ओरा ॥

भाँति-भाँति के कर्म, गुण, काल और स्वभाव रूपी चकोर थे। इसलिये जैसे सूर्योदय होने पर चकोर दुःखी होता है, वैसे ही वे भी दुःखी थे। कोई भी सुख प्राप्त न करता था। मत्सर डाह मान, मोह मद रूपी चोरों का कोई भी हुनर (षड्यन्त्र) किसी भी ओर नहीं चलता था।

धरम तड़ाग ग्यान बिग्याना। ए पंकज बिकसे बिधि नाना ॥
सुख संतोष बिराग बिबेका। बिगत सोक ए कोक अनेका ॥

धर्म रूपी तालाब में ज्ञान विज्ञान रूपी अनेकों प्रकार के कमल खिल उठे। सुख, सन्तोष, वैराग्य और विवेक रूपी अनेकों चकवे शोक रहित हो गये।

दो०—यह प्रताप रबि जाकें उर जब करइ प्रकास।
पछिले बाढ़हिं प्रथम जे कहे ते पावहिं नास ॥३१॥

यह प्रताप रूपी सूर्य जिसके हृदय में प्रविष्ट हो कर प्रकाश कर दे, तब पहिले कहे हुए दोष आदि नष्ट हो जाते हैं और बाद में कहे हुए ज्ञान-विज्ञानादि गुण बढ़ जाते हैं ॥ ३ ॥

भ्रातन्ह सहित राम एक बारा। संग परम प्रिय पवनकुमारा ॥
सुन्दर उपवन देखन गए। सब तरु कुसुमित पल्लव नए ॥

अपने भाइयों समेत एक दिन श्री रामचन्द्र जी, परम प्रिय वायुपुत्र हनुमान जी को लेकर एक सुन्दर उद्यान को देखने गये। उद्यान में जाकर उन्होंने देखा कि वहाँ के सभी वृक्ष खिले हुए हैं और उनमें नवीन पत्ते आ गये हैं ॥१॥

जानि समय सनकादिक आए। तेज पुंज गुन सील सुहाए ॥
ब्रह्मानन्द सदा लवलीना। देखत बालक बहुकालीना ॥

अच्छा अवसर जान कर वहाँ पर सनकादिक मुनिवृन्द आये और जो तेज के पुञ्ज, गुण और शील से युक्त सुन्दर तथा सदा ब्रह्मानन्द में लीन रहते थे, वे बहुत समय के पुराने थे परन्तु देखने में तो बालक लगते थे ॥ २ ॥

रूप धरें जनु चारिउ बेदा। समदरसी मुनि बिगत बिभेदा ॥
आसा बसन ब्यसन यह तिन्हहीं। रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं ॥

ऐसा मालूम पड़ता था मानों चारों वेदों ने ही रूप धारण कर लिया हो, वे मुनि समदर्शी (सभी को समान देखने वाले और भेदभाव से रहित हैं। दिशाएँ ही (सर्वत्र व्याप्त रहने के कारण) मानों उनके वस्त्र हैं और उन्हें एक ही व्यसन था कि जहाँ पर रामचरित (राम कथा) हो वहाँ वे उसे सुनते थें ।

तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहँ घटसंभव मुनिवर ग्यानी ॥
राम कथा मुनिवर बहु बरनी। ग्यान जोनि पावक जिमि अरनी ॥

शिवजी महाराज कहते हैं—हे पार्वती सनकादि मुनि (सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार) जहाँ पर उनके तपोवन में गये थे । उनसे श्रेष्ठमुनि अगस्त्य जी ने बहुत सी कथाएँ वर्णन की थीं, जो ज्ञान उत्पन्न करने का मूल कारण हैं, जैसे अरणी लकड़ी से अग्नि उत्पन्न होती है वैसे ही वे कथाएँ ज्ञान उत्पन्न करने वाली हैं ॥ ३ ॥

दो०—देखि राम मुनि आवत हरषि दंडवत कीन्ह ।
स्वागत पूँछि पीत पट प्रभु बैठन कहँ दीन्ह ॥३२॥

रामचन्द्र जी ने जब देखा कि सनकादि मुनि उनके पास आ रहे हैं तो प्रसन्नचित्त होकर उन्होंने उन्हें दण्डवत प्रणाम किया और स्वागत (कुशल समाचार) पूछ कर उनके बैठने के लिये अपने पीताम्बर को बिछा दिया ॥ ३२ ॥

कीन्ह दंडवत तीनिउँ भाई। सहित पवनसुत सुख अधिकाई ॥
पुनि रघुपति छबि अतुल बिलोकी। भए मगन मन सके न रोकी ॥

फिर हनुमान जी के साथ तीनों भाइयों सनकादिकों को दंडवत प्रणाम किया। वे मुनि श्री रघुनायक रामचन्द्र जी की मन मोहिनी अतुलनीय छवि (रूप) को देख कर बहुत प्रसन्न हुए और उसी छवि में मग्न हो गये. अपने मन को रोक न सके ॥ १ ॥

स्यामल गात सरोरुह लोचन। सुन्दरता मंदिर भव मोचन ॥
एकटक रहे निमेष न लावहिं। प्रभु कर जोरें सीस नवावहिं ॥

वे श्याम शरीर, कमल नयन, सुन्दरता के धाम स्वयं संसार बंधन से छुड़ाने वाले श्री राम जी को आंखों की पलकें विना बन्द किये ही टकटकी लगा कर देख रहे हैं और श्री रामचन्द्र जी उन मुनियों को हाथ जोड़ कर सिर नंवा रहे हैं ॥ २ ॥

तिन्ह कै दसा देखि रघुवीरा। स्रवत नयन जल पुलक शरीरा ॥
कर गहि प्रभु मुनिवर बैठारे। परम मनोहर वचन उचारे ॥

जब रामचन्द्र जी ने सनकादिकों की यह अवस्था देखी तो उनका शरीर पुलकायमान हो गया और उन्हीं की भांति नेत्रों से जल बहने लगा तत्पश्चात् श्री रामचन्द्र जी के हाथ पकड़ कर श्रेष्ठमुनियों को बैठाया और अत्यन्त मनोहर वचन बोलने लगे— ३ ॥

आजु धन्य मैं सुनहु मुनीसा। तुम्हरें दरस जाहिं अघ खीसा ॥
बड़े भाग पाइव सतसंगा। बिनहिं प्रयास होहिं भव भंगा ॥

हे महर्षियो! आज मैं बहुत धन्य हूं; केवल मात्र तुम्हारे दर्शनों से ही मेरे सभी पाप नष्ट हो गये हैं ।। आज बड़े भाग्यों से मैंने सत्संग (आपका साक्षात्कार) प्राप्त किया है। (जिसे आपके दर्शन हो जाते उसके) विना ही परिश्रम किये सभी पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ४ ॥

दो०—संत संग अपवर्ग कर कामी भव कर पंथ ।
कहहिं संत कवि कोविद श्रुति पुरान सद्ग्रंथ ॥३३॥

साधु सन्त विद्वान्, चतुर और वेद पुराण आदि सभी अच्छे अच्छे ग्रन्थ कहते है कि संत का संग मोक्ष (मुक्ति का और कामी का सङ्ग मृत्यु के बन्धन में पड़ने का मार्ग है ॥ ४ ॥

सुनि प्रभु वचन हरषि मुनि चारी। पुलकित तन अस्तुति अनुसारी॥
जय भगवंत अनंत अनामय। अनघ अनेक एक करुनामय॥

प्रभु श्री रामचन्द्र जी के सुन्दर वचने को सुनकर चारों मुनि बड़े प्रसन्न हुए और पुलकित शरीर होकर स्तुति करने लगे कि हे भगवान्। आपकी जय हो, आप अनंत, निर्दोष, निष्पाप, अनेक रूपों में प्रकार अतएव अद्वितीय करुणा के रूप हैं॥ १॥

जय निर्गुन जय जय गुन सागर। सुख मंदिर अति नागर॥
जय इंदिरा रमन जय भूधर। अनुपम अज अनादि सोभाकर॥

हे निर्गुण आपकी जय हो, हे गुण सागर। आपकी जय हो, जय हो आप सुख के स्थान सुन्दर और अत्यन्त निपुण हैं, हे लक्ष्मीपति। आपकी जय हो। आप सब प्रकार की उपमाओं से रहित, अजन्मा, अनादि औरशोभा की खान हैं, हे भूधर (समस्तभूतल को धारण करने वाले। आपकी जय हो॥ २॥

ग्यान निधान असान मानप्रद। पावन सुजसपुरान वेद बद॥
तग्य कृतग्यता अग्यता भंजन। नाम अनेक अनाम निरंजन॥

आप ज्ञान के भाण्डार अभिमानरहित और मान देने वाले हैं। वेद और पुराण आपके पुनीत सुन्दर यश को गाते हैं। आप तत्व को जानने वाले हैं, कृतज्ञ (किये हुए कार्य को मानने वाले हैं) और अज्ञान रूपी अन्धकार का विनाश करने वाले हैं। हे निरञ्जन माया रहित) आपके अनेक नाम हैं तो भी आप नाम से रहित और निरंजन है॥ ३॥

सर्व सर्वगत सर्व उरालय। बससि सद हम कहुँ परिपालय॥
द्वंद विपती भव फंद विभंजय। हृदि बसि राम काम मद गंजय॥

आप सर्वगत (सब कुछ जानने वाले) सभी के हृदय में विराजमान और सर्वव्यापक हैं। आप हमारी रक्षा कीजिये। आप हमारी सुख दुखादि समस्त द्वन्द की विपत्ति और जन्म मृत्यु के जाल को काट दीजिये। हे श्रीराम। हमारे हृदय में निवास कर आप काम और मद का नाश कीजिये॥ ४॥

दो०—परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहिं श्रीराम॥३४॥

आप परम, आनन्द के स्वरूप कृपा के धाम और भक्तों के मनोरथों को पूर्ण करने वाले हैं। हे श्री रामचन्द्र जी! आप हमें (कभी भी) खण्डित न होने वाली अपनी भक्ति दीजिये ॥ ३४ ॥

देहु भगति रघुपति अति पावनि। त्रिविधि ताप भव दाप नसावनि ॥
प्रनत काम सुरधेनु कल्पतरु। होइ प्रसन्न दीजै प्रभु यह बरु ॥

हे प्रभु? आप हमें अपनी अत्यन्त पवित्र करने वाली तीनों प्रकार के तापों और संसार के अभिमान को छुड़ानेवाली भक्ति दीजिये। हे प्रणतपाल शरणागत जनों के कामधेनु स्वरूप कल्पवृक्ष। आप प्रसन्न हो कर यह वरदान दीजिये ॥१॥

भव वारिधि कुंभज रघुनायक। सेवत सुलभ सकल सुखदायक ॥
मन संभव दारुन दुख दारय। दीनबंधु समता विस्तारय ॥

हे रघुवंश शिरोमणि श्रीराम जी! आप जन्म मृत्युरूप समुद्र को सुखाने वाले अगस्त्य मुनि के समान हैं, आप सेवकों के लिये सुलभ सभी तरह के सुखों को देने वाले हैं। आप हमारे मानसिक घोर दुखों को नाश करने वाले हैं। हे दीनरक्षक! आप हममें वैर विरोध को नाश कर समदृष्टि का विस्तार कीजिये ॥२॥

आस त्रास इरिषादि निवारक। विनय विवेक बिरती बिस्तारक ॥
भूप मौलि मुनि मण्डन धरनी। देहि भगति संसृति सरि तरनी ॥

आप आशा, ईर्ष्या, भय आदि को निवारण करने वाले हैं तथा विनय विवेक और वैराग्य का विस्तार करने वाले हैं। हे राजाओं के मुकुट मणि और पृथ्वी के भूषणस्वरूप! आप हमें संसार रूपी नदी को पार होने के लिये नाव रूपी अपनी भक्ति प्रदान कीजिये ॥३॥

रघुकुल केतु सेतु श्रुति रच्छक। काल करम सुभाउ गुन भच्छक ॥
तारन तरन हरन सब दूषन। तुलसिदास प्रभु त्रिभुवन भूषन ॥

हे मुनिजनों के मन रूपी सरोवर में नित्य निवास करने वाले हंस! ब्रह्माजी और शङ्कर जी द्वारा आपके चरण कमल वन्दित हैं। आप रघुवंश के केतु (ध्वज) वेद मर्यादा के रक्षक, और काल कर्म, स्वभाव और तीनों गुणों

को भक्षण करने वाले हैं ॥४॥ आप तरन तारन हैं, (स्वयं तरे हुए हैं और औरों को तारने वाले हैं) तथा सब प्रकार के दोषों का हरण करने वाले हैं। गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं कि आप तीनों लोकों के भूषण और मेरे प्रभु हैं ॥

दो०—बार बार अस्तुति करि प्रेम सहित सिरु नाइ।
ब्रह्म भवन सनकादि गे अति अभीष्ट बर पाइ ॥ ३५ ॥

इस प्रकार (सनकादिकों ने) बारम्बार भगवान की स्तुति की और सिर नवाकर (वन्दना कर) अपना अभीष्ट वर प्राप्त कर ब्रह्मलोक को चले गये ॥१॥

सनकादि बिधि लोक सिधाए। भ्रातन्ह राम चरन सिरु नाए ॥
पूछत प्रभुहि सकल सकुचाहीं। चितवहिं सब मारुतसुत पाहीं ॥

जब सनकादिक चारों मुनि ब्रह्मलोक को पधार गये, तब लक्ष्मणादि तीनों भाइयों ने श्रीराम जी को सिर नवाया। फिर सब हनुमान जी को देखते हुए मन में कुछ सकुचाते (लजाते) हुए रामचन्द्र जी से पूछते हैं ॥१॥

सुनी चहहिं प्रभु मुख कै बानी। जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी ॥
अंतर जामी प्रभु सभ जाना। बूझत कहहु काह हनुमाना ॥

सभी प्रभु रामचन्द्र जी की मुख की सुन्दर वाणी सुनना चाहते थे, जो कि समस्त भ्रमों का नाश करने वाली है। अन्तर्यामी प्रभु सब कुछ जान गये और हनुमान जी से पूछने लगे, कहो हनुमान जी क्या बात है ॥२॥

जोरि पानि कह तब हनुमंता। सुनहु दीनदयाल भगवंता ॥
नाथ भरत कछु पूँछन चहहीं। प्रश्न करत मन सकुचत अहहीं ॥

तब हनुमान जी दोनों हाथ जोड़ कर कहने लगे—हे दीनदयालु भगवान् सुनिये। नाथ। भरत जी महाराज आप से कुछ कहना चाहते हैं। परन्तु प्रश्न करते हुए मन में कुछ लजा रहे हैं ॥३॥

तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ। भरतहि मोहि कछु अंतर काऊ ॥
सुनि प्रभु बचन भरत गहे चरना। सुनहु नाथ प्रनतारति हरना ॥

श्रीराम जी बोले—हनुमान जी तुम तो मेरे स्वभाव को भलीभांति जानते हो, भरत जी में और मेरे में भला कुछ अन्तर है? प्रभु जी के इन वचनों को सुनते ही भरत जी ने उनके चरण कमलों को पकड़ लिया और कहा—हे शरणागत के दुःखों को हरने वाले! हे नाथ! सुनिये ॥४॥

दो०—नाथ न मोहि संदेह कछु सपनेहुँ सोक न मोह।
केवल कृपा तुम्हारिहि कृपानंद संदोह ॥ ३६ ॥

हे नाथ! दया और आनन्द के आगार! मुझे न तो कुछ संदेह है और न मोह है, यह केवल आपकी ही असीम कृपा का फल है।

करउँ कृपानिधि एक ढिठाई। मैं सेवक तुम्ह जन सुखदाई ॥
संतन्ह के महिमा रघुराई। बहु विधि वेद पुरानन्ह गाई ॥

हे कृपानिधान! मैं आप से एक ढिठाई करना चाहता हूँ, मैं सेवक हूँ और आप सेवकों के सुखदाता हैं। हे रघुराई! वेद और पुराणों ने सन्तों की महिमा बहुत गाई है।

श्रीमुख तुम्ह पुनि कीन्हि बड़ाई। तिन्ह पर प्रभुहि प्रीति अधिकाई ॥
सुना चहउँ प्रभु तिन्ह कर लच्छन। कृपासिंधु गुन ग्यान बिचच्छन ॥

आपने भी अपने ही मुख से उनकी प्रशंसा की है, और उनके ऊपर आपका प्रेम भी बहुत अधिक है। हे प्रभो! मैं उनके लक्षण सुनना चाहता हूँ, आप गुण और ज्ञान में अत्यन्त निपुण हैं और कृपा के सिन्धु हैं ॥२॥

संत असंत भेद बिलगाई। प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई।
संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता। अगनित श्रुति पुरान बिख्याता ॥

हे शरणागत रक्षक! आप मुझे सन्त और असन्त दोनों के भेद अलग अलग समझा कर कहने की कृपा कीजिये, (तब श्रीराम जी कहते हैं—) हे भाई भरत! सुनो, (जिन संतों के तुम लक्षण पूछना चाहते हो) संतों के लक्षण अनगिनत हैं जो वेद और पुराणों में प्रसिद्ध हैं ॥३॥

संत असंतन्हि कै असि करनी। जिमि कुठार चंदन आचरनी।
काटइ परसु मलय सुनु भाई। निज गुन देइ सुगंध बसाई ॥

संतों और असंतों की करनी ऐसी है जैसे कुल्हाड़ी और चन्दन का

आचरण होता है। हे भाई सुनो! कुल्हाड़ा तो चन्दन को काट डालता है (क्योंकि उसका स्वभाव ही वृक्षों को काटना है) परन्तु चन्दन अपना गुण उसे देकर सुगन्धि से सुवासित कर देता है ॥४॥

दो०—ताते सुर सीसन्ह चढ़त जग बल्लभ श्रीखंड।
अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दंड ॥ ३७ ॥

अपने इसी (स्वभावज) गुण के कारण चन्दन देवताओं के सिरपर चढ़ता है, और कुल्हाड़े को यह दण्ड मिलता है कि उसका मुँह आग में जलाया जाता है, और हथौड़े से उसे पीटा जाता है ॥३॥

विषय अलंपट सील गुनाकर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर ॥
सम अभूतरिपु विमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी ॥

संत लोग विषयों में लिप्त नहीं हो पाते, वे शील स्वभाव वाले गुणों की खान, और दूसरे के दुःख को देख कर दुःखी और सुख को देखकर सुखी होते हैं। वे सर्वत्र सब में समता (समानभाव) रखते हैं, और जगत में कोई भी उनका शत्रु नहीं होता। वे अभिमान से रहित और वैराग्यवान होते हैं, तथा (सर्वत्र) लोभ, क्रोध, हर्ष और भय का त्याग किये रहते हैं ॥१॥

कोमलचित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया ॥
सबहि मानप्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी ॥

उनका चित्त बड़ा कोमल होता है और वे दीनों पर दया करते हैं, और मन, कर्म और वाणी से निष्कपट भाव से मेरी भक्ति करते हैं आप अभिमान रहित रह कर वे दूसरे को मान देते हैं, हे भरत! वे प्राणी (सन्तजन) मुझे प्राण से प्यारे हैं।

बिगत काम मम नाम परायन। सांति बिरति बिनती मुदितायन ॥
सीतलता सरलता मयत्री। द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री ॥

वे विगतकाम अर्थात् इच्छा रहित होते हैं और मेरे नाम में परायण होते हैं तथा शान्ति, वैराग्य नम्रता एवं प्रसन्नता के स्थान होते हैं। वे शीतलता, सरलता, मित्रता और धर्म को उत्पन्न करने वाले ब्राह्मणों के चरणों में प्रीति से युक्त होते हैं ॥६॥

ए सब लच्छन बसहिं जासु उर। जानेहु तात संत संतत फुर ॥
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष वचन कबहूँ नहिं बोलहिं ॥

ये (उपरोक्त) सभी लक्षण जिसके हृदय में निवास करते हों, हे तात ! उसे निश्चय सच्चा संत जानना। वे शम (मनो निग्रह) दम (इंद्रिय निग्रह) नियम और नीति से कभी नहीं हिलते और कठोर वचन नहीं बोलते।

दो०—निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुन मंदिर सुख पुंज ॥ ३८ ॥

जिनके लिये निन्दा और स्तुति दोनों बराबर हैं, तथा मेरे चरण कमलों से जिन्हें ममता (स्नेह) है। वे सज्जन मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं तथा वेही गुण के धाम और सुखकी राशि (समूह) हैं ॥३८॥

सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहुँ संगति करिअ न काऊ ॥
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहि घालइ हरहाई ॥

असन्तों (दुष्टों का स्वभाव सुनो ! उनकी संगति तो कभी भूलकर भी नहीं करनी चाहिये। उनका साथ सदैव दुखदाई होता है जैसे हरिआई गाय (जो बुरी जाति की होती भी हैं) वह कपिला (दुधार) गाय को अपने संग से नष्ट कर देती हैं ॥१॥

खलन्ह हृदय अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी ॥
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुं परि निधि पाई ॥

दुष्टों के हृदय में अधिक ज्यादा सन्ताप रहता है, वे दूसरे की सम्पत्ति को देखकर सदा जलते हैं और जहाँ कहीं दूसरे की निन्दा सुनते हैं वहाँ ऐसे प्रसन्न होते हैं मानों मार्ग में पड़ी हुई सम्पत्ति उन्हें मिल गई हो ॥२॥

काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन ॥
बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों ॥

वे काम, क्रोध, मद और लोभ में परायण (उपासक) तथा निर्दयी, कपटी कुटिल और पापों के घर होते हैं, सब किसी से बिना ही कारण द्वेष करते फिरते हैं, तथा जो भलाई करे उसके साथ भी बुराई करने में नहीं चूकते ॥३॥

झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चवेना ॥
बोलहिं मधुर वचन जिमि मोरा। खाइ महा अहि हृदय कठोरा ॥

उनका झूठ ही लेना और झूठ ही देना होता है, झूठ ही चवेना और झूठ ही भोजन होता है। बोलने में तो ऐसे मधुर शब्द बोलते है मधुर शब्द बोलने में जैसे (सुनने वाला समझे) कि यह मेरा (अत्यन्त हितैषी) है, परन्तु उनका हृदय बड़ा कठोर और दुष्ट होता है, जैसे कि सुन्दर (होता हुआ भी) मोर विषैले महासर्प को खा जाता है ॥४॥

दो०—पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद।
ते नर पाँवर पापमय देह धरे मनुजाद ॥ ३६ ॥

वे दूसरों से द्रोह करते तथा परस्त्री में अनुरक्त रहते, तथा सदैव पराये धन और पराई निन्दा में लगे रहते हैं। वे नीच और पापमय मनुष्य हैं। मनुष्य का रूप धारण किये हुए भी राक्षस हैं ॥३६॥

लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न ॥
काहू की जो सुनहिं बड़ाई। स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई ॥

उन पुरुषों का लोभ ही ओढ़ना है और लोभही बिछौना हैं; वे सदैव इन्द्रिय और पेट की प्राप्ति में लगे रहते हैं। उन्हें यम का भय जरा नहीं लगता यदि किसी की बड़ाई सुन लेते हैं तो ऐसी सांस लेते हैं मानों शीत ज्वर आ गया हो ॥१॥

जब काहू कै देखहिं बिपती। सुखी भए मानहुँ जग नृपती ॥
स्वारथ रत परिवार बिरोधी। लंपट काम लोभ अति कोधी ॥

जब वे (दुष्ट लोग) किसी के ऊपर किसी प्रकार विपत्ति पड़ी हुई देखते हैं, तो ऐसे सुखी होते हैं; मानों वेही संसार भर के राजा हों। वे स्वार्थपरायण और परिवार वालों के विरोधी व लम्पट होते हैं; और उनमें काम लोभ तथा क्रोध की मात्रा अधिक होती है ॥२॥

मातुपिता गुरु बिप्र न मानहिं। आपु गए अरु घालहिं आनहिं ॥
करहिं मोह बस द्रोह परावा। संत संग हरि कथा न भावा ॥

वे लोग माता-पिता, गुरु और ब्राह्मणों को नहीं मानते (सत्कार नहीं करते) स्वयं तो गये तो गए ही थे परन्तु औरों को भी अपनी तरह ही नष्ट

कर देते हैं। वे मोह के वश हो कर दूसरों से द्रोह करते हैं उन्हें न सन्तों का संग अच्छा लगता है, और न हरि की कथा से ही प्रीति होती है ॥३॥

अवगुन सिंधु मंदमति कामी। वेद विदूषक परधन स्वामी ॥
विप्र द्रोह पर द्रोह विसेषा। दंभ कपट जिय धरें सुवेषा ॥

वे अवगुणों के समुद्र; मंदमति कामी; वेदों के निन्दक और पराये धन के स्वामी (अर्थात् पराये धन को चुराने वाले) होते हैं। वे विशेष कर ब्राह्मणों और देवताओं से द्वेष करते हैं। दम्भ (मत्सरता) और कपट तो उनके हृदय में सदैव भरा रहता है परन्तु वे सुंदर वेष धारण किए रहते हैं ॥४॥

दो०—ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेताँ नाहिं।
द्वापर कछुक बृंद बहु होइहहिं कलिजुग माहिं ॥४०॥

ऐसे नीच और दुष्ट मनुष्य सतयुग और त्रेता में नहीं होते। द्वापर में ये थोड़े होंगे और कलियुग में तो इनके बहुत समूह होंगे ॥४०॥

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥
निर्णय सकल पुरान वेद कर। कहेउँ तात जानहिं कोविद नर ॥

हे भाई दूसरों की भलाई के बराबर कोई धर्म नहीं है और दूसरों को दुःख पहुंचाने के समान कोई नीचता नहीं है। हे तात! समस्त पुराणों और वेदों का निर्णय मैंने तुमसे कहा है; इस बात को बुद्धिमान् लोग समझते हैं ॥१॥

नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भव भीरा ॥
करहिं मोह वस नर अघ नाना। स्वारथरत परलोक नसाना ॥

मनुष्य का शरीर धारण कर जो मनुष्य पर (अन्य प्राणी मात्र) को दुःख पहुंचाते हैं। उनको जन्म मृत्यु के महान् संकट सहने पड़ते हैं। मनुष्य मोह के वशीभूत हो कर नाना प्रकार के पाप करता रहता है। इसी से उसका परलोक नष्ट हो जाता है ॥२॥

कालरूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता। सुभ अरु असुभ कर्म फल दाता ॥
अस बिचारि जे परम सयाने। भजहिं मोहि संसृत दुख जाने ॥

हे भाई भरत! उन लोगों के लिये मैं कालरूप हूँ; क्योंकि मैं

उनके शुभ और अशुभ (अच्छे और बुरे) दोनों तरह के कर्मों के फल को देने वाला हूँ। ऐसा विचार करके जो लोग परम सयाने (समझदार) हैं; वे संसार सम्बन्धी दुःखों को जान कर मेरा भजन करते हैं ॥३॥

त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक। भजहिं मोहि सुर नर मुनिनायक॥
संत असंतन्ह के गुन भाषे। ते न परहिं भव जिन्ह लखि राखे॥

इस कारण वे शुभ और अशुभ फल को देने वाले कर्मों का परित्याग कर देवता (समझदार) मनुष्य और श्रेष्ठ मुनि लोग मेरा भजन करते हैं। यह मैंने तुम्हें संतों (सज्जनों) और असन्तों (दुर्जनों) के गुण कहे हैं; जिन्होंने इन गुणों को जान लिया है वे संसार चक्र में नहीं पड़ते ॥४॥

दो०—सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अविवेक ॥ ४१ ॥

हे तात ! सुनो, माया द्वारा किये हुए अनेकों गुण और दोष हैं। गुण (भलाई इसी में है) कि इन दोनों को ही न देखा जाय। इनको ओर देखना ही अविवेक (अविचार) है ॥४१॥

श्रीमुख बचन सुनत सब भाई। हरषे प्रेम न हृदयँ समाई ॥
करहिं बिनय अति बारहिं बारा। हनूमान हियँ हरष अपारा ॥

श्रीरामचन्द्र जी के श्रीमुख से निकले हुए इन (शिक्षाप्रद) वचनों को सुन कर, सब भाई बड़े हर्षित हुए। प्रेम उनके हृदय में समाता नहीं था। वे बहुत बार बड़ी विनती करने लगे। हनुमान् जी के हृदय में तो अपार प्रसन्नता हो रही थी।

पुनि रघुपति निज मंदिर गए। एहि बिधि चरित करत नित नए॥
बार बार नारद मुनि आवहिं। चरित पुनीत राम के गावहिं॥

इसके पश्चात् रघुनायक श्री रामचन्द्र जी अपने महल को चले गये और इसी प्रकार के प्रतिदिन नित्य नए चरित्र दिखाते (लीला करते)। नारद मुनि बार-बार अयोध्या में आते थे और श्रीरामचन्द्र जी के पवित्र चरित्र का यशोगान करते थे ॥२॥

नित नव चरित देखि मुनि जाहीं। ब्रह्मलोक सब कथा कहाहीं॥
सुनि बिरंचि अतिसय सुख मानहि। पुनि पुनि तात करहु गुन गानहिं॥

मुनि लोग यहां से नित्य नवीन चरित्र देख जाते थे और जाकर ब्रह्म लोक में सब कथा (राम चरित्र वर्णन) करते थे, जिसे सुनकर ब्रह्मा जी अत्यधिक सुख मानते थे और कहा करते थे हे तात! बार-बार राम गुण गान करो॥

सनकादिक नारदहि सराहहिं। जद्यपि ब्रह्म निरत मुनि आहहिं॥
सुनि गुन गान समाधि बिसारी। सादर सुनहिं परम अधिकारी॥

सनकादि चारों मुनि नारद जी की बहुत सराहना (प्रशंसा) किया करते थे, यद्यपि वे मुनि सदैव ब्रह्म में लीन रहते थे फिर भी श्री रामचन्द्र जी का यशोगान श्रवण करके समाधि (ब्रह्मध्यान) को भूल जाते थे और आदर पूर्वक (रामकथा) को सुनते थे, क्योंकि वे उसके अधिकारी भी थे॥४॥

दो०—जीवनमुक्त ब्रह्मपर चरित सुनहिं तजि ध्यान।
जे हरि कथा न करहिं रति तिन्ह के हिय पापान॥ ४२॥

जो सनकादि मुनिवृन्द जीवन्मुक्त (जन्ममरण के बन्धन से रहित) और ब्रह्मनिष्ठ हैं वे भी (ब्रह्म का) ध्यान छोड़कर जिस हरि कथा का श्रवण करते हैं उस हरिकथा में जो लोग रति (प्रेम) नहीं करते उनके हृदय निःसन्देह पत्थर के समान हैं॥४१॥

एक बार रघुनाथ बोलाए। गुरु द्विज पुरबासी सब आए॥
बैठे गुरु मुनि अरु द्विज सज्जन। बोले बचन भगत भव भंजन॥

एक समय श्री रामचन्द्र जी के बुलाये हुए गुरु वशिष्ठ जी, सभी ब्राह्मण लोग और सभी अयोध्यावासी सभा में आये। जब सभी गुरु, मुनि ब्राह्मण और सज्जन नगर निवासी जन यथास्थान बैठ गये तब भक्तों के भयनाशक श्री रामचन्द्र जी (मधुर शब्दों में) कहने लगे कि—

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउँ न कछु ममता उर आनी॥
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहिं सोहाई॥

सम्पूर्ण नगर निवासी मेरी बात को सुनें, मैं हृदय में कुछ ममता

लाकर (स्नेहवश होकर) नहीं कहता हूँ, न तो मैं कुछ अनीति की बात कहना चाहता हूँ और नहीं प्रभुता (स्वामीपन) की ही। इसलिये मेरी बातों को ध्यानपूर्वक सुन लीजिये, उन पर आचरण तभी करना यदि वे तुम्हें अच्छी लगें।

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई॥
जौं अनीति कछु भाखौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई॥

वही मेरा सेवक है वही मेरा प्रियतम है (अधिक प्यारा है) जो मेरा अनुशासन माने (मेरी आज्ञा में रहे)। हे भाइयो! यदि मैं कुछ अनीति की बात कहूँ तो भय का परित्याग कर मुझे रोक देना।

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा॥

सभी धर्मग्रन्थों ने इस बात को गाया (कहा) है कि जो मनुष्य शरीर देवताओं के लिये भी दुष्प्राप्य है, जो साधना करने का धाम और मोक्ष को देने वाला द्वार है, इसे प्राप्त करके भी जिसने परलोक को न बना लिया।

दो०—सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥ ४३॥

वह परलोक (यमलोक) में जाकर दुःख को प्राप्त करता है, और सिर पीट-पीट कर पछताता है। वह मनुष्य काल, कर्म और ईश्वर को भी व्यर्थ में दोष लगाता है (परन्तु अपने दोष को नहीं समझता)।

एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
नर तन पाइ बिषय मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥

हे भाइयो! (देवदुर्लभ) इस मनुष्य शरीर की प्राप्ति का फल विषय भोग नहीं है। स्वर्ग का सुख भी थोड़े ही दिन रहता है। अन्त में वह भी दुःख को देने वाला होता है। मनुष्य का शरीर प्राप्त कर जो मनुष्य विषयों में मन को लगाए रहते हैं वे दुष्ट अमृत के बदले में विष (भी) लेते हैं।

ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई॥
आकर चारि लच्छ चौरासी। जानि भ्रमत यह जिव अविनासी॥

उस मनुष्य को कोई भी बुद्धिमान नहीं कहता, जो पारस मणि को गँवा कर उसके बदले में घुँघची-रत्ती ले लेता है। वह अविनाशी जीव (प्राणी) चार खानों वाली (अण्डज, स्वेदज, जरायुज, उद्भिज्ज) और चौरासी लाख योनियों में विचरता रहता है।

फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥
कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिन हेतु सनेही॥

वह मनुष्य सर्वदा मेरी माया से प्रेरित किया हुआ और काल, कर्म, स्वभाव और माया के गुण से घेरा हुआ फिरता है, बिना ही किसी कारण के स्नेह करने वाले ईश्वर दया करके कभी इसे मनुष्य शरीर दे देते हैं

नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥

यह मनुष्य शरीर सब संसार से (संसार रूपी समुद्र से) पार जाने के लिये बेड़ा है। और इस (बेड़े) का कर्णधार (चलाने वाला) सद्गुरू है। इस प्रकार दुर्लभ साधन (कठिनता से प्राप्त होने योग्य शमादि) उसे सुलभ होकर प्राप्त हो जाते हैं।

दो०—जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥ ४४॥

जो नरसमाज (प्राणी) इन साधनों को प्राप्त कर भवसागर से पार न हो जावे, वह कृतनिंदक (कृतघ्न—किये हुए का उपकार न मानने वाला) और मन्दबुद्धि है। वह आत्महत्या करने वालों की गति को प्राप्त करता है।

जौं परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदयँ दृढ़ गहहू॥
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई॥

यदि परलोक में भी और यहाँ भी सुख प्राप्त करना चाहते हो तो मेरे वचनों को सुन कर हृदय में दृढ़ता से पकड़ लो।

हे भाइयो ? यह मेरी भक्ति का मार्ग सुलभ और सुखदायक है, और पुराणों और वेदों ने इसका गान किया है।

ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका॥
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भक्ति हीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ॥

ज्ञान अगम है (कठिनता से प्राप्त होने योग्य है) उसमें अनेकों प्रकार के विघ्न हैं और उसके साधन (प्राप्त करने के उपाय) कठिन हैं। वे मन को स्थिर रखने वाले अवलम्ब नहीं हैं। अनेक प्रकार के कष्टों को पाकर कोई उस (ज्ञान) को प्राप्त भी कर लेता है, परन्तु वह भी यदि मेरी भक्ति के बिना हो तो मुझे प्रिय नहीं होता।

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी॥
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता॥

मेरी भक्ति स्वतन्त्र है और सब प्रकार के सुखों की खान है। उसको प्राणी सत्सङ्ग के बिना प्राप्त नहीं कर सकते। बड़े भारी पुण्यों के समूह के बिना संतजन भी नहीं मिलते। और (संसार बन्धन से) छुटकारा सन्तों की सङ्गति से ही होता है।

पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा॥
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपटु करइ द्विज सेवा॥

संसार में पुण्य एक ही है (उसके बराबर) और कोई दूसरा पुण्य नहीं है। और वह है मन, वचन कर्म से ब्राह्मणों की पूजा करना। जो कपट को छोड़ कर ब्राह्मणों की सेवा करता है, उस पर मुनि और देवता प्रसन्न रहते हैं।

दो०—और उ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥ ४२॥

अब मैं सभी को हाथ जोड़ कर एक गुप्त मत और भी बतलाता हूँ कि शङ्कर जी के भजन के बिना मनुष्य मेरी भक्ति को प्राप्त नहीं कर पाता।

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा॥
सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई॥

यह कहो कि भक्ति मार्ग में क्या प्रयास करना पड़ता है, इसमें न तो योग की आवश्यकता है और न यज्ञ, जप,-तप, उपवास आदि की। इसकी प्राप्ति के लिये मन कुटिलता रहित और सरल स्वभाव का होना चाहिये। और जो कुछ जितना मिल जाय उसी से सन्तुष्ट रहे।

मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा॥
बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई। एहि आचरन बस्य मैं भाई॥

जो मेरा दास (सेवक) कहला कर यदि मनुष्यों की आशा रक्खे, तो फिर तुम ही बताओ उसका क्या विश्वास है। इस कथा (प्रसङ्ग) को मैं बहुत बढ़ा-चढ़ा कर क्या कहूँ। हे भाइयो। मैं तो स्वयं इसी आचरण (नियम) के वश में हूँ।

बैर न बिग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा॥
अनारंभ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी॥

(मनुष्य) न किसी से वैर विरोध करे, न लड़ाई-झगड़ा ही करे, न किसी प्रकार की आशा रक्खे और न भय ही करे। उसके लिये सभी दिशाएँ सदा सुख से भरी हैं, जो आरम्भ अर्थात् फल की इच्छा से कार्य नहीं करता, तथा जिसका घर नहीं है, (गृह से ममत्व नहीं है) अभिमान नहीं है, पाप और क्रोध नहीं है। जो चतुर और ज्ञान वेत्ता है।

प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा॥
भगति पच्छ हठ नहिं सठताई। दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई॥

सज्जनों के सत्सङ्ग करने में जिसको सदा प्रीति (स्नेह) है, विषय भोग, तथा स्वर्ग और मोक्ष को जो सदा तृण के समान तुच्छ समझता है, जो भक्ति के पक्ष में हठ करता है, और दुष्टता नहीं करता तथा सब प्रकार के बुरे तर्कों को जिसने दूर बहा दिया है।

दोहा—सम गुन ग्राम नाम रत गत ममता मद मोह।
ता कर सुख सोइ जानइ परानन्द संदोह॥ ४६॥

जो ममता, अभिमान और मोह से रहित होकर मेरे गुण समूहों का और मेरे नाम का उपासक है उसके इस सुख को वही जानता है जो परमानन्द राशि को प्राप्त होगा।

सुनत सुधासम बचन राम के। गहे सबनि पद कृपाधाम के॥
जननि जनक गुर बन्धु हमारे। कृपा निधान प्रान ते प्यारे॥

श्री रामचन्द्र जी के इन अमृत के समान वचनों को सुनकर सब ने कृपा के धाम श्रीराम जी के चरण कमलों को पकड़ लिया और कहने लगे—हे कृपानिधान! आप हम लोगोंके माता-पिता-गुरु और भाई सब कुछ हैं और प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं।

तनु धनु धाम राम हितकारी। सब विधि तुम्ह प्रनतारति हारी॥
असि सिख तुम्ह बिनु देइ न कोऊ। मातु पिता स्वारथ रत ओऊ॥

अपकी शरण में आये हुए की रक्षा करने वाले हे श्री रामचन्द्र जी! आप हमारे शरीर, धन, घरबार और सभी प्रकार से हित करने वाले हैं यह शिक्षा आपके बिना और कोई दूसरा नहीं दे सकता। यद्यपि माता-पिता भी इस प्रकार की शिक्षा दे देते हैं परन्तु उनकी शिक्षा स्वार्थ से भरी होती हैं।

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥
स्वारथ मीत सकल जग माहीं। सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं॥

हे राक्षसों के शत्रु श्री रामचन्द्र जी, इस मिथ्या जगत में स्वार्थ रहित उपदेश को देने वाले केवल दो ही हैं। एक तो आप स्वयं और दूसरे आपके सेवक। हे प्रभो! जगत में स्वार्थी मित्र तो सभी हैं परन्तु परमार्थ की भावना उनमें स्वप्न में भी नहीं होती।

सब के बचन प्रेम रस साने। सुनि रघुनाथ हृदयँ हरषाने॥
निज निज गृह गए आयसु पाई। बरनत प्रभु बतकही सुहाई॥

इस प्रकार सब अयोध्यावासियों के प्रेम रस में सने हुए (डुबोये हुए) वचनों को सुनकर रघुनाथ जी हृदय में बहुत अधिक प्रसन्न हुए। फिर सभी आज्ञा पाकर प्रभु जी की सुहावनी बातचीत का वर्णन करते हुए अपने-अपने घर गये।

दो०—उमा अवधवासी नर नारि कृतारथ रूप।
सच्चिदानन्दघन रघुनायक जहँ भूप॥ ४७॥

शिव जी कहते हैं—हे उमा (पार्वती)! उस अयोध्या के निवासी

पुरुष और स्त्रियाँ सब कृतार्थ स्वरूप हैं, जहाँ पर सत्, चित्, आनन्दघन पर ब्रह्म श्री रघुनायक रामचन्द्र जी राजा हैं।

एक बार वसिष्ट मुनि आए। जहाँ राम सुखधाम सुहाए॥
अति आदर रघुनायक कीन्हा। पद पखारि पादोदक लीन्हा॥

एक वार जहाँ पर श्री रामचन्द्र जी के सुख का स्थान (निवास गृह) शोभायमान था, वहाँ पर उनके कुल गुरु वशिष्ठ जी पधारे। रघुनाथ जी ने उनका बहुत आदर किया और उनके चरण धोकर चरणामृत लिया (पिया)।

राम सुनहु मुनि कह कर जोरी। कृपासिंधु विनती कछु मोरी॥
देखि देखि आचरन तुम्हारा। होत मोह मम हृदयँ अपारा॥

फिर मुनिराज वशिष्ट जी हाथ जोड़कर कहने लगे—हे दयासागर श्री रामचन्द्र जी! आप कुछ मेरी विनती सुनिये? आपका आचरण (सुचरित्र) देख कर मेरे हृदय में अधिक मोह (भ्रम) हो रहा है।

महिमा अमिति वेद नहिं जाना। मैं केहि भाँति कहउँ भगवाना॥
पुरोहित्य कर्म अति मंदा। वेद पुरान सुमृति कर निंदा॥

हे भगवान्! वेदों से भी नही जानने योग्य आपकी महिमा अपार हैं। उसका वर्णन मैं कैसे कर सकता हूं। पुरोहित का कर्म बहुत ही मंद (नीचता का) है, वेद पुराण और स्मृतियों ने भी इस पुरोहित कर्म की निन्दा की है। (पुरोहिती कर्म के लिये कहा गया है कि पौरोहित्य करने वाले को यजमान के पापों का भी कुछ अंश मिलता है और बदले में अपने पुण्यों का फल देना पड़ता है)

जब न लेउँ मैं तब विधि मोही। कहा लाभ आगें सुत तोही॥
परमातमा ब्रह्म नर रूपा। होइहि रघुकुल भूपन भूपा॥

जब मैं इस पुरोहित के कर्म को स्वीकार नहीं करता था तब ब्रह्मा जी ने मुझे कहा था, कि हे पुत्र! इससे आगे चलकर तुम्हें बहुत लाभ होगा। स्वयं परब्रह्म परमात्मा मनुष्य रूप धारण करके (अवतार लेंगे) रघुकुल के भूषण राजा होंगे॥४॥

दोहा—तब मैं हृदयँ बिचारा जोग जग्य व्रत दान।
जा कहुँ करिअ सो पैहउँ धर्म न एहि सम आन॥ ४८॥

तब मैंने अपने हृदय में विचार किया कि जिसके लिये योग, यज्ञ, व्रत और दान किये जाते हैं। उसी परमात्मा को मैं इसी (पौरोहित्य कर्म द्वारा ही) प्राप्त कर लूंगा, इसके तुल्य और हमारा कोई भी धर्म नहीं है ॥४६॥

जप तप नियम जोग निज धर्मा। श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा॥
ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन॥

जप, तप, नियम, अपने अपने धर्म, श्रुतियों (वेदों से उत्पन्न बहुत से शुभ कर्म, ज्ञान, दया, दम (इन्द्रिय दमन) तीर्थस्नान आदिक जहाँ तक वेद और सज्जन लोग धर्म कहते हैं ॥१॥

आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका॥
तव पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुन्दर॥

(इन उपरोक्त धर्मों को करने का तथा) वेद, शास्त्र एवं अनेकों पुराण पढ़ने और सुनने का फल केवल एक यही है और सभी साधनों का फल भी यही है कि आपके चरणारविन्दों में सदैव प्रेम हो ॥२॥

छूटइ मल कि मलहि के धोएँ। घृत कि पाव कोइ बारि बिलोएँ॥
प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई॥

मैल के ही धोने से भला क्या कभी मैल छूट सकता है? क्या जल को बिलोने (मथने) से कोई घी पा सकता है? इसी तरह हे रघुनाथ जी! प्रेम भक्तिरूपी जल के बिना अभ्यन्तर का (हृदय के भीतर का) मैल कभी भी नहीं जाता ॥३॥

सोइ सर्बग्य तग्य सोइ पंडित। सोइ गुन गृह बिग्यान अखंडित॥
दच्छ सकल लच्छन जुत सोई। जाकें पद सरोज रति होई॥

वही सर्वज्ञ (सब कुछ जानने वाला) है, वही तत्त्वज्ञ है, वही पंडित है, वही समस्त गुणों का घर और अखण्ड विज्ञानवान है, वही चतुर एवं सब लक्षणों से समन्वित है, जिसका आपके पादारविन्दों (चरण कमलों में प्रेम हो ॥४॥

दोहा—नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु॥ ४९॥

हे नाथ श्री रामचन्द्र जी, मैं आपसे केवल एक वरदान माँगता हूँ

जिसे आप कृपा कर दीजिये, वह यह कि जन्म जन्मान्तरों में भी आपके चरणारविन्दों से मेरा स्नेह कभी कम न हो ॥४६॥

अस कहि मुनि वसिष्ट गृह आए। कृपासिंधु के मन अति भाए ॥
हनूमान भरतादिक भ्राता। संग लिए सेवक सुखदाता ॥

इस प्रकार कह करके मुनिराज वशिष्ठ जी अपने घर चले आये। और दया के सागर श्री रामचन्द्र जी को वह बहुत प्रिय लगे। इसके अनन्तर सेवकों के सुख दायक श्री राम जी हनुमान और भरत लक्ष्मणादि भाईयों को साथ लेकर ॥१॥

पुनि कृपाल पुर बाहेर गए। गज रथ तुरग सँगावत भए ॥
देखि कृपा करि सकल सराहे। दिए उचित जिन्ह जिन्ह तेइ चाहे ॥

कृपालु श्री रामचन्द्र जी अयोध्यापुरी के बाहर गये वहां जाकर उन्होंने हाथी, रथ और घोड़े मंगवाये, और उनको (आया हुआ) देख कर सब पर दया करके उनकी सराहना की और जिन्होंने जो जो (वाहन) चाहे उस उस के लिये उचित रीत से दे दिये ॥२॥

हरन सकल श्रम प्रभु श्रम पाई। गए जहाँ सीतल अवराई ॥
भरत दीन्ह निज बसन डसाई। बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई ॥

समस्त परिश्रमों को हरने वाले श्री रामचन्द्र जी थकित होकर विश्राम लेने के लिये जहाँ शीतल अमराई (आमवृक्षों का उपवन) था वहाँ गये। तब भरत जी ने (श्री रामचन्द्र जी को थकित जानकर) अपना वस्त्र बिछा दिया, जिस पर प्रभु रामचन्द्र जी बैठ गये और सभी भाई उनकी सेवा करने लग गये ॥३॥

मारुतसुत तब मारुत करई। पुलक बपुष लोचन जल भरई ॥
हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी ॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई ॥

उस समय पवन पुत्र हनुमानजी का शरीर पुलकित होगया और वे लोचनों (आँखों) में जल भरके श्री रामचन्द्र जी को हवा करने लगे। हनुमान जी के समान बड़भागी और रामचन्द्र जी के चरण कमलों में अनुराग (स्नेह)

करने वाला और दूसरा कोई नहीं है। शिवजी कहते हैं कि हे गिरिजे (पार्वती) जिनके प्रेम की और सेवा की स्वयं श्रीरामचन्द्र जी ने अपने श्रीमुख से सराहना (प्रशंसा) की ॥४॥५॥

दोहा—तेहि अवसर मुनि नारद आए करतल बीन।
गावन लगे राम कल कीरति सदा नवीन ॥ ५० ॥

उसी समय महामुनि नारद जी हाथ में वीणा लिये हुए वहाँ आये। वे रामचन्द्र जी की सर्वदा नवीन रहने वाली सुन्दर कीर्ति का गान करने लगे ॥५०॥

मामवलोकय पंकज लोचन। कृपा बिलोकनि सोच बिमोचना ॥
नील तामरस स्याम काम अरि। हृदय कंज मकरंद मधुप हरि ॥

हे कमल के समान नेत्रों वाले! और शोक को दूर करने वाले श्री रामचन्द्र जी! आप मेरी ओर कृपादृष्टि से देखिये, हे हरि! आप नील कमल के समान श्याम वर्ण वाले हैं, और कामदेव के शत्रु शिवजी के हृदय कमल के मकरन्द (फूलों का रस) के पान करने वाले भ्रमर रूप हैं ॥१॥

जातुधान बरूथ बल भंजन। मुनि सज्जन रंजन अघ गंजन ॥
भूसुर ससि नव बृंद बलाहक। असरन सरन दीन जन गाहक ॥

आप असंख्य राक्षसों की सेना के बल को नाश करने वाले हैं, एवं मुनियों और सज्जनों को आनंद देने वाले तथा पापों का नाश करने वाले हैं। ब्राह्मणरूपी हरी भरी खेती को बढ़ाने के लिये आप नये मेघ समूह हैं। अशरण (शरणहीनों) को शरण देने वाले (रक्षा करने वाले) हैं। तथा दीन दुःखी जनों को अपने आश्रय में लेने वाले हैं ॥२॥

भुज बल बिपुल भार महि खंडित। खर दूषन बिराध बध पंडित ॥
रावनारि सुखरूप भूपबर। जय दसरथ कुल कुमुद सुधाकर ॥

आप अपनी भुजाओं के बल से पृथ्वी के बड़े भारी भार को नष्ट करने वाले तथा खरदूषण और विराध आदि महाराक्षसों के वध करने में निपुण हैं। रावण के वैरी, सुख स्वरूप राजाओं में श्रेष्ठ, दशरथ के कुल रूपी कुमुद के लिये चन्द्र रूप हे श्रीरामचन्द्र जी! आपकी जय हो ॥३॥

सुजस पुरान विदित निगमागम । गावत सुर मुनि संत समागम ॥
कारुनीक व्यलीक मद खंडन । सब बिधि कुसल कोसला मंडन ॥
कलि मल मथन नाम ममताहन । तुलसीदास प्रभु पाहि प्रनत जन ॥

आपकी मनोहर कीर्ति पुराणों और वेद शास्त्रों में प्रसिद्ध है। उस (आपकी कीर्ति को) देवता, ऋषिगण और संत समूह गाते हैं। हे करुणा सागर ! आप व्यर्थ के अभिमान को खंडित करने वाले, सब प्रकार से प्रवीण कोशल नगरी (अयोध्या) के भूषण हैं। आपका नाम कलियुग के पापों को मथन करने वाला (नष्ट भ्रष्ट करने वाला) तथा ममता (मोह) को नाश करने वाला है। हे तुलसीदास के प्रभु श्रीरामचन्द्र जी ! आप शरणागत भक्त जनों की रक्षा कीजिये ॥४॥५॥

दो०—प्रेम सहित मुनि नारद, बरनि राम गुन ग्राम।
सोभासिंधु हृदयँ धरि गए जहाँ बिधिधाम ॥ ५१ ॥

इस प्रकार प्रेम पूर्वक श्रीरामचन्द्र जी के गुण समूहों का वर्णन करके श्री नारद जी, शोभा के समुद्र श्रीरामचन्द्र जी (की मूर्ति को) हृदय में धारण कर जहां ब्रह्मलोक है वहाँ को पधार गये ॥५॥

गिरिजा सुनहु बिसद यह कथा। मैं सब कही मोरि मति जथा ॥
राम चरित सत कोटि अपारा। श्रुति सारदा न बरनै पारा ॥

शिव जी कहते हैं—हे पार्वती ! सुनो, श्रीरामचन्द्र जी की यह विस्तृत मनोहर कथा मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार सब कह दी है। रामचन्द्र जी के चरित्र सैकड़ों करोड़ और अनन्त हैं, जिनको सरस्वती जी और चारों वेद भी वर्णन नहीं कर सकते ॥१॥

राम अनंत अनंत गुनानी। जन्म कर्म अनंत नामानी ॥
जल सीकर महिरज गनि जाहीं। रघुपति चरित न बरनि सिराहीं ॥

रामचन्द्र जी अनंत हैं, और अनंत ही उनके गुण हैं, जन्म कर्म तथा नाम भी अनंत हैं। पानी की बूंदे और धूलि के कण तो गिने जा सकते हैं परंतु श्रीरामचद्र जी के चरित्र वर्णन करके समाप्त नहीं किये जा सकते, [नहीं गिने जा सकते] ॥२॥

बिमल कथा हरि पद दायनी। भगति होइ सुनि अनपायनी॥
उमा कहिउँ सब कथा सुहाई। जो भुसुंडि खगपतिहि सुनाई॥

यह श्री रामचन्द्र जी की पवित्र कथा हरिपद (विष्णुलोक) को देने वाली है, और इसको सुनकर श्रीरामचन्द्र जी में अगाधभक्ति हो जाती है। हे उमा ! मैंने यह सब कथा तुम्हें कही है जो काकभुशुण्डी जी ने गरुड़ जी को सुनाई थी ॥२॥

कछुक राम गुन कहेउँ बखानी। अब का कहौं सो कहहु भवानी॥
सुनि सुभ कथा उमा हरषानी। बोली अति बिनीत मृदु बानी॥
धन्य धन्य मैं धन्य पुरारी। सुनेउँ राम गुन भव भय हारी॥

(उसमें से) मैंने यह थोड़े से श्रीरामचन्द्र जी के गुण तुम्हें कह कर सुनाए हैं. हे भवानी ! अब बताओ. और क्या कहूं ? श्रीरामचन्द्र जी की पवित्र कथा सुन कर पार्वती जी बहुत संतुष्ट हुईं, और अत्यन्त विनीत और कोमल शब्दों में कहने लगी हे श्रीपुरारी ! मैं बारम्बार धन्य हूं. जो कि मैंने जगत के भय को नाश करने वाले रामचन्द्र जी के गुण सुने ॥४॥५॥

दोहा०—तुम्हरी कृपाँ कृपायतन अब कृतकृत्य न मोह।
जानेउँ राम प्रताप प्रभु चिदानंद संदोह ॥ ५२ (क) ॥

हे कृपायतन (दया के धाम) आपकी कृपा से मैं अब कृतकृत्य हो गई हूं और (मेरे मनमें लेश मात्र भी) मोह बाकी नहीं रहा है. अब मैंने चैतन्य आनन्दकन्द भगवान रामचन्द्र जी के प्रताप को जान लिया है ॥५२॥ (क)

नाथ तवानन ससि स्रवत कथा सुधा रघुबीर।
श्रवन पुटन्हि मन पान करि नहिं अघात मतिधीर ॥ ५२(ख) ॥

हे नाथ ! आपके मुख रूपी शशि (चन्द्रमा) से श्रीरघुवीर रूपी की कथा अमृत बरसता है। हे धैर्यवान बुद्धिवाले ! मेरा मन इस कथा को कान रूपी पात्रों से पान करके तृप्त नहीं होता ॥५२॥ (ख)

राम चरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं॥
जीवनमुक्त महामुनि जेऊ। हरि गुन सुनहिं निरंतर तेऊ॥

श्रीरामचन्द्र जी के चरित्रों को सुन सुनकर जो तृप्त हो जाते हैं, उन्होंने

वों उस रस विशेष को जाना तक नहीं। जीवन से मुक्ति प्राप्त करने वाले जो महर्षि हैं, वे भी भगवान् के गुणों को निरन्तर सुनते रहते हैं ॥१॥

भव सागर चह पार जो पावा। राम कथा ताकहँ दृढ़ नावा ॥
विषइन्ह कहँ पुनि हरि गुन ग्रामा। श्रवन सुखद अरु मन अभिरामा ॥

जो संसार रूपी सागर से पार (मुक्ति) प्राप्त करना चाहता है, उसके लिये तो राम कथा मजबूत नौका है। और श्रीरामचन्द्र के गुणों के समूह विषयों में फंसे हुए पुरुषों के लिये कानों को सुख देने वाले और मन को आनन्द देने वाले हैं ॥२॥

श्रवनवंत अस को जग माहीं। जाहि न रघुपति चरित सोहाहीं ॥
ते जड़ जीव निजात्मक घाती। जिन्हहि न रघुपति कथा सोहाती ॥

कानों वाला संसार में ऐसा कौन है, जिसे रघुनाथ जी के चरित्र न सुहाते हो। जिन प्राणियों को रघुपति जी की कथा अच्छी न लगती हो वे दुष्ट जीव अपना आत्मघात करने वाले हैं ॥३॥

हरिचरित्र मानस तुम्ह गावा। सुनि मैं नाथ अमिति सुख पावा ॥
तुम्ह जो कही यह कथा सुहाई। काग भसुंडि गरुड़ प्रति गाई ॥

हे नाथ ! आपने रामचरित मानस का जो गायन किया, उसको सुन कर मैंने अनन्त सुखको प्राप्त किया है। आपने जो यह कहा कि यह सुन्दर कथा काकभुशुण्डी जी ने गरुड़ जी से कही थी ॥४॥

दोहा—बिरति ग्यान बिग्यान दृढ़ राम चरन अति नेह।
बायस तन रघुपति भगति मोहि परम संदेह ॥ ५३ ॥

(इस बात में) मुझे एक बड़ा सन्देह है कि जो वैराग्य- ज्ञान और विज्ञान में दृढ़ (निपुण) हैं, तथा श्रीराम जी के चरणों में जिन्हें अगाध प्रेम है, उन काकभुशुण्डी जी को कौवे का शरीर किस प्रकार मिला ! और फिर उस शरीर में भी रघुनाथ जी की भक्ति कैसे प्राप्त हुई।

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म व्रतधारी ॥
धर्मसील कोटिक महँ कोई। बिषय बिमुख बिराग रत होई ॥

हे त्रिपुरारी ? सुनिये, हजारों मनुष्यों में कोई एक धर्म के व्रत को

सुनहिं सकल मति विमल मराला। बसहिं निरंतर जे तेहिं ताला॥
जब मैं जाइ सो कौतुक देखा। उर उपजा आनंद बिसेषा॥

सब निर्मल बुद्धि वाले हंस जो सदा उस तालाब पर बसते थे, वे सब भी इस (राम महिमा) को सुना करते थे। जब मैंने वहाँ जाकर यह कौतुक (दृश्य) देखा तो मेरे हृदय में विशेष आनन्द प्राप्त हुआ।

दो०—तब कछु काल मराल तनु धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति गुन पुनि आयउँ कैलास॥ ५७॥

तब मैंने कुछ समय हंस का रूप धारण कर वहाँ निवास किया, और आदर पूर्वक श्री रघुपति रामचन्द्र जी के गुण सुनकर फिर कैलाश पर वापिस आ गया।

गिरिजा कहेउँ सो सब इतिहासा। मैं जेहि समय गयउँ खग पासा॥
अब सो कथा सुनहु जेहि हेतू। गयउ काग पहिं खग कुल केतू॥

हे पर्वत पुत्रि पार्वती? मैं जिस समय उस पक्षी (काकभुशुण्डी) के पास गया था वह सब इतिहास मैंने तुम्हें कह दिया है। अब तुम वह सारी कथा सुनो, जिस कारण पक्षियों के कुल के ध्वजारूप गरुड़ जी उस काक के पास गये थे।

जब रघुनाथ कीन्हि रन क्रीड़ा। समुझत चरित होति मोहि ब्रीड़ा॥
इंद्रजीत कर आपु बँधायो। तब नारद मुनि गरुड़ पठायो॥

जब रघुनाथ जी ने ऐसी रणलीला की जिस लीला के स्मरण मात्र से भी मुझे लज्जा आ रही है—रावण के पुत्र इन्द्रजी तमेघनाद के हाथों जब अपने आपको बंधा लिया, तब नारद नारद मुनि ने गरुड़ जी को लङ्का में भेजा था।

बंधन काटि गयो उरगादा। उपजा हृदयँ प्रचंड बिषादा॥
प्रभु बंधन समुझत बहु भाँती। करत बिचार उरग आराती॥

सर्पों का भक्षण करने वाले गरुड़ जी नागपाश के बन्धन को काट कर वापिस चले गये, परन्तु उनके हृदय में बड़ा भारी विषाद हुआ। प्रभु रामचन्द्र जी का बंध जाना जान कर सर्प शत्रु गरुड़ जी बहुत प्रकार से विचार करने लगे।

व्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा। माया मोह पार परमीसा ॥
सो अवतार सुनेउं जग माहीं। देखेउं सो प्रभाव कछु नाहीं ॥

जो सर्व व्यापक (सर्वत्र विद्यमान) विकार रहित, वाणी के पति और माया मोह से परे ब्रह्म परमेश्वर हैं, उसने जगत् में अवतार लिया हुआ है, पर मैंने तो उस अवतारधारी परमेश्वर का कुछ भी प्रभाव नहीं देखा।

दो०—भव बंधन ते छूटहिं नर जपि जा कर नाम ।
खर्व निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम ॥ ५८ ॥

जिसके नाम मात्र का जप कर मनुष्य संसारिक बन्धन से छूट जाते हैं, उन्हीं श्रीराम जी को एक तुच्छ निशाचर ने नागपश से बांध लिया।

नाना भाँति मनहि समुझावा। प्रगट न ग्यान हृदयँ भ्रम छावा ॥
खेद खिन्न मन तर्क बढ़ाई। भयउ मोहबस तुम्हरिहिं नाई ॥

गरुड़ जी ने नाना प्रकार से अपने मन को समझाया परन्तु उन्हें ज्ञान नहीं हुआ और मन में भ्रम (सन्देह) ही छाया रहा। हे पार्वती! तब उस दुःख से दुःखी होकर, मन में तर्क बढ़ा कर, तुम्हारे ही समान गरुड़ मोह के अधीन हो गये।

ब्याकुल गयउ देवरिषि पाहीं। कहेसि जो संसय निज मन माहीं ॥
सुनि नारदहि लागि अति दया। सुनु खग प्रबल राम कै माया ॥

व्याकुल होकर वे देवर्षि नारद जी के पास गये, और मन में जो सन्देह था वह जाकर गरुड़ जी ने कह सुनाया। उसे सुन कर नारद जी को बड़ी दया आई और उन्होंने कहा- हे गरुड़! सुनो, रामचन्द्र जी की माया बड़ी प्रबल है।

जो ग्यानिन्ह कर चित अपहरई। बरिआई बिमोह मन करई ॥
जेहि बहु बार नचावा मोही। सोइ ब्यापी बिहंगपति तोही ॥

जो ज्ञानी जनों के चित्त को भी भली भान्ति हर लेती है, और दृढ़तापूर्वक मन में मोह उत्पन्न कर देती है, तथा जिसने मुझको भी अनेक बार नचाया है, हे गरुड़ ? वही माया इस समय तुम्हें घेरे हुए है।

महामोह उपजा उर तोरे । मिटिहि न बेगि कहे खग मोरे ॥
चतुरानन पहिं जाहु खगेसा । सोइ करेहु जेहि होइ निदेसा ॥

हे पक्षिराज गरुड़ ? तुम्हारे हृदय में बड़ा मोह उत्पन्न हो गया है, यह मेरे समझाने से तुरन्त दूर न होगा, अतएव हे पक्षिराज ! आप ब्रह्मा जी के पास जाइये, वे जो आपको आज्ञा दें; वैसे ही आप करें ।

दो०—अस कहि चले देवरिषि करत राम गुन गान ।
हरि माया बल बरनत पुनि पुनि परम सुजान ॥ ५१ ॥

इस प्रकार कह करके अतीव चतुर देवर्षि नारद जी, श्री रामचन्द्र जी का गुणगान करते हुए और भगवान् की माया का बल वर्णन करते हुए चले गये ॥४९॥

तब खगपति बिरंचि पहिं गयऊ । निज संदेह सुनावत भयऊ ॥
सुनि बिरंचि रामहि सिरु नावा । समुझि प्रताप प्रेम अति छावा ॥

तब खगपति गरुड़ जी ब्रह्मा जी के पास गये और अपना सारा सन्देह उन्हें जाकर सुना दिया । ब्रह्मा जी ने उसे सुन करके श्री रामचन्द्र जी को सिर नवाकर पा और रामप्रताप को समझ कर उनके हृदय में बड़ा भारी प्रेम छा गया ॥१॥

मन महुँ करइ बिचार बिधाना । माया बस कबि कोबिद ग्याता ॥
हरि माया कर अमिति प्रभावा । बिपुल बार जेहिं मोहि नचावा ॥

ब्रह्मा जी अपने मन में विचार करने लगे, कि जिसकी माया के वश में सभी कवि, कोविद और ज्ञानी हैं, उस हरि की माया का प्रभाव अपार है और तो और, जिसने मुझ ब्रह्मा को भी कई बार नाच नचाया है ॥२॥

अग जगमय जग मम उपराजा । नहिं अचरज मोह खगराजा ॥
तब बोले बिधि गिरा सुहाई । जान महेस राम प्रभुताई ॥

स्थावर जङ्गमात्मक यह सारा जगत मेरा रचा हुआ है, यदि मैं भी माया के वश में होकर नाचने लगा हूं तो कोई आश्चर्य नहीं यदि पक्षिराज गरुड़ को भी मोह हो गया है । फिर ब्रह्मा जी सुन्दर वाणी से बोले— कि रामचन्द्र जी की प्रभुता (महिमा) को महादेव जी जानते हैं । (अतएव उन्हीं के पास जाओ) ॥३॥

वैनतेय संकर पहिं जाहू । तात अनत पूछहु जनि काहू ॥
तहँ होइहि तव संसय हानि । चलेउ विहंग सुनत विधि बानी ॥

इसलिये हे गरुड़ ! तुम शंकर जी के पास चले जाओ, हे तात ! और कहीं भी किसी से कुछ न पूछना ((इस समय में) तुम्हारे संदेह का विनाश वहीं पर होगा, ब्रह्मा जी की इस प्रकार की वाणी को सुनकर गरुड़ जी वहाँ से चल दिये ॥४॥

दो०—परमातुर विहंगपति आयउ तब मो पास ।
जात रहेउँ कुबेर गृह रहिहु उमा कैलास ॥ ६० ॥

शिवजी कहते हैं—हे पार्वती ! तब बड़ी व्याकुलता से पक्षिराज गरुड़ मेरे पास आये । उस समय मैं कुबेर के घर को जा रहा था और तुम कैलाश पर थी ॥६॥

तेहिं मम पद सादर सिरु नावा । पुनि आपन संदेह सुनावा ॥
सुनि ता करि विनति मृदु बानि । प्रेम सहित मैं कहेउँ भवानी ॥

गरुड़ जी ने बड़े आदर सहित आकर मेरे चरणों में सिर झुकाया । और फिर मुझे अपना सन्देह कह सुनाया । हे भवानी ! उनकी विनय भरी मधुर वाणी को सुन कर मैंने प्रेम पूर्वक गरुड़ जी से कहा— ॥१॥

मिलेहु गरुड़ मारग महँ मोही । कवन भाँति समुझावौं तोही ॥
तबहिं होइ सब संसय भंगा । जब बहु काल करिअ सतसंगा ॥

हे गरुड़ ! तुम मुझे मार्ग में मिले हो, मार्ग में चलते हुए मैं तुम्हें किस भाँति समझाऊं । सभी सन्देहों का नाश (निवारण) तभी हो सकता है जब बहुत समय तक सत्सङ्ग (वार्तालाप) किया जाय ॥२॥

सुनिअ तहाँ हरि कथा सुहाई । नाना भाँति मुनिन्ह जो गाई ॥
जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना । प्रभु प्रतिपाद्य एक भगवाना ॥

और उस सत्सङ्ग में सुहावनी हरि कथा सुनी जाय । जिस हरि कथा को मुनिजनों ने नाना प्रकार से गाया है । और जिस कथा के आदि, मध्य और अन्त में स्वामी महाराज रामचन्द्र जी के विषय में ही सब कुछ है ॥३॥

नित हरि कथा होत जहँ भाई। पठवउँ तहाँ सुनहु तुम्ह जाई॥
जाइहि सुनत सकल संदेहा। राम चरन होइहि अति नेहा॥

इसलिये हे भाई! जहां पर नित्य ही हरि कथा होती है, वहीं पर मैं तुम्हें भेजता हूं। तुम वहां जाकर हरि कथा का श्रवण करो, उसे सुनते ही तुम्हारा सम्पूर्ण सन्देह दूर हो जायगा और श्री रामचन्द्र जी के चरण कमलों में अतीव स्नेह हो जायगा॥४॥

दो०—बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥ ६१॥

सत्सङ्ग किये बिना हरि कथा नहीं मिलती, और हरि की कथा को सुने बिना मोह नष्ट नहीं होता, तथा जब तक मोह का नाश न हो तब तक श्री रामचन्द्र जी के चरणों में दृढ स्नेह नहीं होता॥६१॥

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा। किएँ जोग तप ग्यान बिरागा॥
उत्तर दिसि सुंदर गिरि नीला। तहँ रह काकभुसुंडी सुसीला॥

रघुपति श्री रामचन्द्र जी बिना अनुराग (प्रेम) के नहीं मिलते, चाहे कितने ही योग, तप, ज्ञान और वैराग्य किये जायें। (अतः तुम सत्सङ्ग करने के लिये वहीं पर जाओ जहां पर) उत्तर दिशा में एक रमणीक नील पर्वत है, वहां हर सुन्दर शील (स्वभाव) वाले काक भुशुण्डी जी रहते हैं॥१॥

राम भगति पथ परम प्रबीना। ग्यानी गुन गृह बहु कालीना॥
राम कथा सो कहइ निरंतर। सादर सुनहिं बिबिध बिहंगवर॥

वे राम भक्ति के पथ में अत्यधिक प्रवीण (कुशल) हैं, वे ज्ञानी हैं, गुणों के सागर हैं और बहुत पुराने हैं। वे सदैव राम कथा का वर्णन करते रहते हैं, जिसे बहुत से पक्षी श्रेष्ठ आदर सहित श्रवण करते हैं॥२॥

जाइ सुनहु तहँ हरि गुन भूरी। होइहि मोह जनित दुख दूरी॥
मैं जब तेहि सब कहा बुझाई। चलेउ हरषि मम पद सिरु नाई॥

तुम वहाँ जाकर बहुत से हरि के गुणों को सुनो, जिनके सुनने से तुम्हारा मोह जन्य दुःख दूर हो जायगा। (हे पार्वती) मैंने जब गरुड़ को

सब प्रकार समझा बुझा कर यह कहा तो वह मेरे चरणों में सिर नवाकर प्रसन्न होकर चला गया ॥३॥

तातें उमा न मैं समुझावा। रघुपति कृपाँ मरमु मैं पावा॥
होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सो खोवै चह कृपानिधाना॥

ऐ उमा ! मैंने उन्हें हरि गुण इस कारण नहीं समझाये कि रघुपति जी की अपार कृपा से मैं उसका सारा मर्म (गुप्त बात) समझ गया था। उसने कभी किसी अवसर पर अभिमान किया होगा, उसको कृपानिधान भगवान नष्ट करना चाहते थे ॥४॥

कछु तेहि ते पुनि मैं नहिं राखा। समुझइ खग खगही कै भाषा॥
प्रभु माया बलवंत भवानी। जाहि न मोह कवन अस ग्यानी॥

फिर कुछ इस कारण से भी मैंने गरुड़ को अपने पास नहीं रक्खा कि पक्षी पक्षी की बोली को भली प्रकार समझ सकता है। हे भवानी ! प्रभु रामचन्द्र जी की माया अतीव बलवती है, ऐसा कौन ज्ञानी होगा भला, जिसको वह मोह न ले ॥५॥

दोहा—ग्यानी भगत सिरोमनि त्रिभुवनपति कर जान।
ताहि मोह माया नर पावँर करहिं गुमान॥६२ (क)॥

जो गरुड़ ज्ञानियों और भक्तों में शिरोमणी हैं, एवँ त्रिलोकीनाथ श्री विष्णु भगवान के वाहन हैं, उस गरुड़ को भी माया ने मोह लिया, फिर भी तुच्छ जीव अभिमान करते हैं ॥६२॥ (क)

सिव बिरंचि कहुँ मोहइ को है बपुरा आन।
अस जियँ जानि भजहिं मुनि मायापति भगवान॥६२ (ख)॥

भगवान की माया इस ने शिव ब्रह्मादिकों को भी मोह लिया है और उन्हें अज्ञान में डाल दिया है। फिर उसके समक्ष कोई दूसरा बिचारा तो भला चीज ही क्या है। इसी प्रकार अपने हृदय में विचार कर मुनि लोग उस मायापति भगवान को भजते हैं ॥६२॥ (ख)

गयउ गरुड़ जहँ बसइ भुसुंडा। मति अकुंठ हरि भगति अखंडा॥
देखि सैल प्रसन्न मन भयऊ। माया मोह सोच सब गयऊ॥

गरुड़ जी वहीं पर चले गये जहाँ अकुण्ठित (खण्डित न होने वाली) बुद्धि वाले तथा अखंड भगवद्भक्ति करने वाले काकभुशुण्डी जी निवास करते थे। उस नील पर्वत को देखकर गरुड़ मन में बहुत सन्तुष्ट हुए और उनका मायामोह और सोच सब कुछ जाता रहा ॥१॥

करि तड़ाग मज्जन जलपाना। बट तर गयउ हृदयँ हरषाना॥
बृद्ध बृद्ध बिहंग तहँ आए। सुनै राम के चरित सुहाए॥

गरुड़ तो तालाब में स्नान करके और जल पीकर के, प्रसन्नचित हो र उस बड़ के वृक्ष के नीचे गये। वहाँ हर बूढ़े बूढ़े पक्षियों के समूह ीरामचन्द्र जी के सुन्दर चरित्र को सुनने के लिये आये हुये थे ॥२॥

कथा अरंभ करै सोइ चाहा। तेही समय गयउ खगनाहा॥
आवत देखि सकल खगराजा। हरषेउ बायस सहित समाजा॥

ाकाभुशुण्डी जी श्रीराम कथा प्रारम्भ करने ही वाले थे कि उसी समय पक्षी ाज गरुड़ जी वहाँ पहुँचे। तब समस्त पक्षियों के राजा गरुड़ जी को आते ेख कर काका भुसुण्डी जी सहित सम्पूर्ण पक्षिगण बहुत प्रसन्न हुए ॥३॥

अति आदर खगपति कर कीन्हा। स्वागत पूछि सुआसन दीन्हा॥
करि पूजा समेत अनुरागा। मधुर बचन तब बोलेउ कागा॥

उन सभी ने पक्षियों के (अपने) राजा गरुड़ भगवान का बहुत ही आदर सत्कार किया, और स्वागत (कुशल प्रश्नादि) पूछ कर उन्हें सुन्दर आसन बैठने के लिये दिया। फिर काकभुशुण्डी जी प्रेम सहित पूजन करके बहुत ही मधुर वचनो से बोले ॥४॥

दो०—नाथ कृतारथ भयउँ मैं तव दरसन खगराज।
आयसु देहु सो करौं अब प्रभु आयहु केहि काज ॥६३(क)॥

हे नाथ! हे पक्षिराज! मैं आप के दर्शनो से कृतार्थ हो गया हूँ, आप जो आज्ञा दें मैं अब वही करूँगा। हे प्रभो! आप किस कार्य के लिये आये हैं ॥६३॥

सदा कृतारथ रूप तुम्ह कह मृदु बचन खगेस।
जेहि कै अस्तुति सादर निज मुख कीन्हि महेस ॥६३(ख)॥

(यह सुन कर) पक्षीराज गरुड़ जी कोमल शब्दों में बोले—आप तो सदा कृतार्थ रूप हैं, जिनकी प्रशंसा स्वयं महादेव जी ने आदर पूर्वक अपने श्रीमुख से की है।

सुनहु तात जेहि कारन आयउँ। सो सब भयउ दरस तव पायऊँ॥
देखि परम पावन तव आश्रम। गयउ मोह संसय नाना भ्रम॥

हे तात, सुनिये, मैं जिस काम के वास्ते आया हूँ वह सब आपके दर्शन पाते ही सिद्ध हो गया है, आपका यह परम पवित्र आश्रम देख कर मेरा मोह सन्देह और नाना प्रकार का भ्रम नष्ट हो गया है॥१॥

अब श्रीराम कथा अति पावनि। सदा सुखद दुख पुंज नसावनि॥
सादर तात सुनावहु मोही। बार बार बिनवउँ प्रभु तोही॥

हे तात! अब मुझे अत्यन्त पवित्र, सदा सुख को देनेवाली, दुःख समूहों को नष्ट करने वाली श्रीराम जी की कथा को आदर के साथ सुनाइये हे प्रभु मैं बारम्बार आप से यही प्रार्थना करता हूँ॥२॥

सुनत गरुड़ कै गिरा बिनीता। सरल सुप्रेम सुखद सुपुनीता॥
भयउ तासु मन परम उछाहा। लाग कहै रघुपति गुन गाहा॥

गरुड़ जी की सरस, सुन्दर, प्रेमपूर्ण, सुखदायिनी, अति पवित्र वाणी सुनते ही काकभुशुण्डी जी के मन में बड़ा उत्साह हुआ और वे श्री रघुनाथ जी के गुणों की कथा कहने लगे॥३॥

प्रथमहिं अति अनुराग भवानी। रामचरित सर कहेसि बखानी॥
पुनि नारद कर मोह अपारा। कहेसि बहुरि रावन अवतारा॥
प्रभु अवतार कथा पुनि गाई। तब सिसु चरित कहेसि मन लाई॥

हे पार्वती पहिले तो उन्होंने बड़े ही प्रेम से रामचरित मानस सरोवर का रूपक समझा कर कहा, फिर नारद जी का अपार मोह और फिर रावण का अवतार कहा॥४॥ फिर प्रभु के अवतार की कथा वर्णन की, तदनन्तर मन लगा कर श्रीरामचन्द्र जी की बाल लीलायें कहीं॥४॥५॥

दो०—बालचरित कहि बिबिधि बिधि मन महँ परम उछाह।
रिषि आगवन कहेसि पुनि श्री रघुबीर बिबाह॥६४॥

मन में परम उत्साह पाकर अनेकों प्रकार की बाल लिलाएँ कह कर फिर ऋषि विश्वामित्र जी का अयोध्या आना कहा, और श्रीरघुवीर जी का विवाह वर्णन किया ॥६४॥

बहुरि राम अभिषेक प्रसंगा। पुनि नृप बचन राज़ रस भंगा ॥
पुरबासिन्ह कर बिपादा। कहेसि राम लछिमन संबादा ॥

फिर श्रीराम जी के राज्यभिषेक का प्रसङ्ग, फिर राजा दशरथ जी के वचन से राज्यभिषेक के आनन्द में भङ्ग पड़ना, तदनतर नगरनिवासियों का विरह, विपाद और श्रीराम लक्ष्मण का संवाद कहा ॥१॥

बिपिन गवन केवट अनुरागा। सुरसरि उतरि निवास प्रयागा ॥
बालमीक प्रभु मिलन बखाना। चित्रकूट जिमि बसे भगवाना ॥

फिर श्रीरामचन्द्र जी का वन में जाना, केवट (गुहराज) का अनुराग (विशेष प्रेम) गङ्गा जी से पार उतर कर प्रयाग में निवास, वाल्मीकि मुनि और श्रीराम जी का मिलन और जिस प्रकार भगवान चित्रकूट में जाकर बसे वह सब कहा ॥२॥

सचिवागवन नगर नृप मरना। भरतागन प्रेम बहु बरना ॥
करि नृप क्रिया संग पुरबासी। भरत गए जहँ प्रभु सुखरासी ॥

फिर अमात्य सुमन्त्र का अयोध्या में आना, एवं (राम वियोग में) दशरथ जी की मृत्यु, भरत जी का (शत्रुघ्न सहित अपने ननिहाल से) अयोध्या में आना, और उनके बहुत प्रेम का वर्णन किया, तदन्तर राजा दशरथ जी की मरणान्तक क्रिया करके अयोध्या वासियों को संग में लेकर भरत जी जहाँ पर सुख की राशि (समूह) श्रीरामचन्द्र जी थे वहाँ गये ॥३॥

पुनि रघुपति बहु बिधि समुझाए। लै पादुका अवधपुर आए ॥
भरत रहनि सुरपति सुत करनी। प्रभु अरु अत्रि भेंट पुनि बरनी ॥

फिर श्रीराम जी ने भरत जी को अनेकों प्रकार से समझाया, (सान्त्वना दी) (जिससे प्रभावित होकर) भरत जी श्रीरामचन्द्र जी की पादुका (खड़ाऊँ) लेकर अयोध्यापुरी लौट आए। इनके पश्चात् भरत जी का नन्दी ग्राम में निवास, और सुरपति (देवराज इन्द्र) के पुत्र की करनी, (धृष्टता) और फिर

प्रभु श्रीरामचन्द्र जी का और मुनि श्रेष्ठ महर्षि जी के मिलाप का वर्णन यह सब कथा कही ॥४॥

दो०—कहि बिराध बध जेहि बिधि देह तजी सरभंग।
बरनि सुतीछन प्रीति पुनि प्रभु अगस्ति सतसंग ॥ ६५ ॥

जिस प्रकार विराध दैत्यका वध हुआ और शरभंग मुनि जी ने अपना शरीर त्याग किया, उसका वर्णन करके सुतीक्ष्ण तपस्वी जी का प्रेम वर्णन करके श्रीराम जी का और अगस्त्य मुनि जी को सत्सङ्ग-वर्णन का किया ॥६५॥

कहि दंडक बन पावनताई। गीध मइत्री पुनि तेहिं गाई॥
पुनि प्रभु पंचवटीं कृत बासा। भंजी सकल मुनिन्ह की त्रासा॥

फिर दण्डकारण्य वन को पवित्र करने का वृत्तान्त सुनाया। फिर प्रभु श्रीराम जी का पञ्चवटी में निवास करना और मुनिजनों का सम्पूर्ण त्रास (भय) मिटाना कहा ॥१॥

पुनि लछिमन उपदेस अनूपा। सूपनखा जिमि कीन्हि कुरूपा॥
खर दूषन बध बहुरि बखाना। जिमि सब मरमु दसानन जाना॥

और उसके बाद जैसे लक्ष्मण जी को अतुलनीय उपदेश दिया, शूर्पणखा के (लक्ष्मण जी द्वारा नाक कान काट कर) कुरुप करने का वृत्तान्त को कहा। फिर खर, दूषण दैत्यों का (सेना सहित) वध का वृत्तान्त वर्णन कर जिस प्रकार रावण ने इस सारे वृत्तान्त को जाना, वह सब कहा ॥२॥

दसकंधर मारीच बतं कही। जेहिं बिधि भई सो सब तेहिं कही॥
पुनि माया सीता कर हरना। श्रीरघुबीर बिरह कछु बरना॥

फिर जिस प्रकार रावण और मारीच की परस्पर (सुवर्णमृग) सम्बन्धी बात चीत हुई वह सभी उसी प्रकार वर्णन की। फिर माया मृग द्वारा सीता हरण के संवाद को सुना करके रघुवीर जी के विरह का कुछ वर्णन किया ॥३॥

पुनि प्रभु गीध क्रिया जिमि कीन्ही। बधि कबंध सबरिहि गति दीन्ही॥
बहुरि बिरह बरनत रघुबीरा। जेहि बिधि गए सरोबर तीरा॥

फिर श्रीराम जी ने जटायु गीध की जिस प्रकार अन्त्येष्टिक्रिया की और कबन्ध राक्षस का वध करके शबरी भीलनी को परमगति दी, और फिर जिस प्रकार विरह का वर्णन करते हुए श्रीरामचन्द्र जी पंपासरोवर के तीर पर गये वह सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥४॥

दो०—प्रभु नारद संवाद कहि मारुति मिलन प्रसंग।
पुनि सुग्रीव मिताई बालि प्रान कर भंग ॥ ६६ (क)॥

प्रभु श्रीरामचन्द्र जी और नारद जी का जो संवाद हुआ एवं हनुमान जी के मिलने का जो प्रसंग था, वह सुनाकर फिर सुग्रीव जी से मित्रता और बाली के प्राणनाश का वर्णन किया ॥६६॥ (क)

कपिहि तिलक करि प्रभु कृत सैल प्रबरषन बास।
बरनन बर्षा सरद अरु राम रोष कपि त्रास ॥ ६६(ख)॥

वानरराज सुग्रीव का राजतिलक कर के प्रवर्षणनाम पर्वत पर श्रीरामचन्द्र जी ने निवास किया, फिर वर्षा ऋतु का और शरद ऋतु का वर्णन करके श्रीराम जी का सुग्रीव पर क्रोध और भय देने आदि का वर्णन किया ॥६६॥ (ख)

जेहि बिधि कपिपति कीस पठाए। सीता खोज सकल दिसि धाए ॥
बिबर प्रबेस कीन्ह जेहि भाँती। कपिन्ह बहोरि मिला संपाती ॥

यह सब वर्णन करके काकभुशुण्डी जी ने जिस प्रकार से वानरपति सुग्रीव जी ने (सीता जी की खोज में जिस प्रकार चारों दिशाओं में गये, जिस प्रकार उन सब ने बिल में प्रवेश किया और फिर जैसे वानरों को गीध सम्पाती मिला वह सब कथा कही ॥१॥

सुनि सब कथा समीरकुमारा। नाघत भयउ पयोधि अपारा ॥
लंकाँ कपि प्रबेस जिमि कीन्हा। पुनि सीतहि धीरजु जिमि दीन्हा ॥

सम्पाती के मुख से (रावण द्वारा सीता के हरण की) कथा को सुन कर वायुपुत्र हनुमान जी जिस प्रकार अनन्त समुद्र को लांघ कर गये, और फिर हनुमान जी ने जिस प्रकार लङ्का में प्रवेश किया और फिर जैसे सीता जी से मिलकर उन्हें धैर्य बंधाया, वह सब वृत्तान्त कहा ॥२॥

वन उजारि रावनहि प्रबोधी। पुर दहि नाघेउ बहुरि पयोधी॥
आए कपि सब जहँ रघुराई। बैदेही की कुसल सुनाई॥

फिर हनुमान जी ने जिस प्रकार अशोक वन को उजाड़ कर रावण को समझा कर लङ्कापुरी को भस्म किया और जैसे उन्होंने समुद्र को लाँघा और फिर जहाँ पर रघुनाथ जी थे वहां सब बन्दर आए और उन्होंने सीता जी का कुशल समाचार सुनाया ॥३॥

सेन समेती जथा रघुबीरा। उतरे जाइ बारिनिधि तीरा॥
मिला बिभीषण जेहि बिधि आई। सागर निग्रह कथा सुनाई॥

फिर सेना के सहित जिस प्रकार रघुनाथ श्रीरामचन्द्र जी समुद्र के किनारे जाकर उतरे, और जिस प्रकार वहां पर विभीषण मिला, वह समस्त प्रसंग भी और समुद्र को वश में कर लेने की सारी कथा भी काकभुशुण्डी जी ने कह सुनाई ॥४॥

दो०—सेतु बाँधे कपि सेन जिमि उतरी सागर पार।
गयउ बसीठी बीरबर जेहि बिधि बालिकुमार॥ ६७(क)॥

फिर वानरों को सेना जैसे समुद्र पर पुल बांध कर समुद्र के पार उतरी और वीर प्रवर वालि कुमार अङ्गद जैसे दूत बन कर लङ्का में गया वह सब कहा ॥६७॥ (क)

निसिचर कीस लराई बरनिसि बिबिधि प्रकार।
कुंभकरन घननाद कर बल पौरुष संघार॥ ६७(ख)॥

फिर राक्षसों और बानरों की लड़ाई का वर्णन बहुत प्रकार से कह कर कुम्भकर्ण और मेघनाद के बल, और संहार का वर्णन किया ॥६७॥ (ख)

निसिचर निकर मरन बिधि नाना। रघुपति रावन समर बखाना॥
रावन बध मंदोदरि सोका। राज बिभीषन देव असोका॥

फिर राक्षसों के समूह की विविध प्रकार से मृत्यु का वर्णन कर, रावण और श्रीरामचन्द्र जी के युद्ध का अनेक प्रकार से बखान किया। फिर रावण का वध, और महारानी मन्दोदरी का शोक (विलाप) वर्णन कर विभीषण को निष्कण्टक राज्य देने का वर्णन किया।

सीता रघुपति मिलन बहोरी। सुरन्ह कीन्हि अस्तुति कर जोरी॥
पुनि पुष्पक चढ़ि कपिन्ह समेता। अवध चले प्रभु कृपा निकेता॥

फिर सीता जी का रामचन्द्र जी से मिलना और देवताओं के द्वारा हाथ जोड़ कर स्तुति किये जाने का वर्णन किया। तदनन्तर पुष्पक विमान पर वानरों समेत सवार होकर कृपानिधान प्रभु रामचन्द्र जी अयोध्या को चल पड़े ॥२॥

जेहि बिधि राम नगर निज आए। बायस बिसुद्ध चरित सब गाए॥
कहेसि बहोरि राम अभिषेका। पुर बरनत नृपनीति अनेका॥

फिर जिस प्रकार से रामचन्द्र जी अपने नगर अयोध्या में आये, ये सब विस्तृत चरित्र (प्रसङ्ग) काकभुशुण्डी जी ने सुनाये। फिर उन्होंने श्रीरामचन्द्र जी का राज्याभिषेक और अयोध्यापुरी का वर्णन करके अनेक प्रकार की राजनीति वर्णन करते हुए ॥३॥

कथा समस्त भुसुंड बखानी। जो मैं तुम्ह सन कही भवानी॥
सुनि सब राम कथा खगनाहा। कहत बचन मन परम उछाहा॥

यह सारी कथा काकभुशुण्डी जी ने वर्णन की। (शिव जी कहते हैं—) हे पार्वती! वह सारी कथा मैंने तुम्हें सुना दी है। फिर इस सारी श्रीराम कथा को सुन कर पक्षीराज गरुड़ जी मन में बड़े उत्साहित (प्रफुल्लित) होकर कहने लगे—॥४॥

सो०—गयउ मोर संदेह सुनेउँ सकल रघुपति चरित।
भयउ राम पद नेह तव प्रसाद बायस तिलक॥ ६८(क)॥

श्री रामचन्द्र जी के सम्पूर्ण चरित्र को सुन कर मेरा सारा संदेह जाता रहा है, हे काकश्रेष्ठ! आपके प्रसाद से श्रीराम जी के चरणों में मेरा प्रेम हो गया है ॥६८॥ (क)

मोहि भयउ अति मोह प्रभु बंधन रन महुँ निरखि।
चिदानंद संदोह राम बिकल कारन कवन॥ ६८(ख)॥

युद्ध में प्रभु रामचन्द्र जी को नागपाश में बन्धा देख कर मुझे अत्यन्त मोह (सन्देह) हो गया था कि श्रीराम जी तो स्वयं साक्षात् सच्चिदानन्द हैं फिर वे किस प्रकार (दुःखी) हैं ॥६८॥ (ख)

देखि चरित अति नर अनुसारी । भयउ हृदयँ मम संसय भारी ॥
सोइ भ्रम अब हित करि मैं माना । कीन्ह अनुग्रह कृपानिधाना ॥

रामचन्द्र जी के चरित्र (पाश बन्ध रूपी कार्य) को देख कर मेरे मन में अतीव संदेह हो गया था, अब मैं उस सन्देह को अपने लिये हित कर समझता हूं । वास्तव में कृपानिधान श्री रामचन्द्र जी ने मुझ पर यह अनुग्रह (कृपा) की थी ॥१॥

जो अति आतप व्याकुल होई । तरु छाया सुख जानइ सोई ॥
जौं नहिं होत मोह अति मोही । मिलतेउँ तात कवन विधि तोही

जो अधिक धूप से व्याकुल होता है. वही वृक्ष की छाया के आनन्द को जानता है । हे तात ? यदि मुझे अति मोह (भ्रम) न होता हो मैं आपसे किस प्रकार मिल सकता था ।

सुनतेउँ किमि हरि कथा सुहाई । अति विचित्र बहु विधि तुम्ह गाई
निगमागम पुरान मत एहा । कहहिं सिद्ध मुनि नहि संदेहा ॥

जिस अत्याधिक विचित्र और बहुत प्रकार से शोभायमान हरि कथ का वर्णन आपने किया है, उसे मैं किस प्रकार सुन पाता । वेद शास्त्र, और पुराणों का भी यही मत है और सिद्ध मुनि भी यही कहते हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं है कि ।

संत विसुद्ध मिलहिं परि तेही । चितवहिं राम कृपा करि जेही ॥
राम कृपाँ तव दरसन भयऊ । तव प्रसाद सब संसय गयऊ ॥

शुद्ध (निर्मों ही) सन्त उसी को मिलते हैं जिसे श्री रामचन्द्र जी कृपा करके देख लेते हैं । श्रीराम जी की कृपा मुझे आपके शुभ दर्शन न हुए हैं और आपकी कृपा से मेरा सारा सन्देह जाता रहा ।

दो०—सुनि बिहंगपति बानी सहित बिनय अनुराग ।
पुलक गात लोचन सजल मन हरषेउ अति काग ॥६६ (क)॥

इस प्रकार विनय और अनुराग भरी पक्षिराज गरुड़ जी की वाणी को सुनकर काकभुशुण्डी जी का शरीर रोमाञ्चित हो उठा और नेत्रों में जल भर आया एक अपने मनमें अत्यन्त प्रसन्न हुए ।

श्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरि दास ॥

पाइ उमा अति गोप्यमति सज्जन करहिं प्रकास ॥६६(ख

हे पार्वती ! सुन्दर बुद्धि वाले, सुशील, पवित्र, कथा का स्वाद ज वाले, भगवद्भक्त श्रोता के मिलने पर सज्जन अत्यन्त गोपनीय (नहीं योग्य) रहस्य को भी प्रकट कर देते हैं।

बोलेउ काकभसुंड बहोरी । नभगनाथ पर प्रीति न थोरी

सब बिधि नाथ पूज्य तुम्ह मेरे । कृपापात्र रघुनायक केरे

काकभुशुण्डी जी फिर बोले—पक्षिराज गरुड़ पर उनका मग्न था, उन्होंने कहा—हे नाथ ! आप हमारे सब तरह से पूज्य हैं रघुनाथ जी के कृपापात्र हैं।

तुम्हहि न संसय मोह न माया । मो पर नाथ कीन्हि तुम्ह दाय

पठइ मोह मिस खगपति तोही । रघुपति दीन्हि बड़ाई मोही

आपको न सन्देह है, न मोह और नहीं माया ही है। अत हे नाथ ! आपने मुझ पर बड़ी दया की (जो मुझे अपने दर्शनों से कृ किया) हे गरुड़ जी ! श्रीराम जी के आपको मोह के बहाने यहाँ भेज मुझे बड़ाई दी है।

तुम्ह निज मोह कही खग साईं। सो नहिं कछु आचरज गोसाईं

नारद भव बिरंचि सनकादी । जे मुनिनायक आतमबादी

हे पक्षिश्रेष्ठ ! आपने अपना मोह (भ्रम) कहा, सो हे गोसाईं वह कुछ अधिक आश्चर्य की बात नहीं है, नारद, शिवजी, ब्रह्माजी अ सनकादि जो मुनीश्वर हैं, जो कि आत्मवादी हैं—

सोह न अंध कीन्ह केहि केही । को जग काम नचाव न जेही

तृस्नाँ केहि न कीन्ह बौराहा । केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा

उनमें से किस-किस को मोह ने अंधा नहीं बना दिया है। अ जगत भर में ऐसा कौन है जिसे कामदेव ने न नचाया हो, तृष्णा ने कि को पागल नहीं बना दिया है और क्रोधने किसके हृदय को नहीं जलाया है। अर्थात् सबके हृदय को जलाया है।

दो०—ग्यानी तापस सूर कवि कोविद गुन आगार।
केहि कै लोभ बिडंबना कीन्हि न एहिं संसार॥ ७० (क)॥

इस संसार में ऐसा कौन, ज्ञानी, तपस्वी, शूरवीर, कवि, पण्डित और गुणवान् है। जिसकी लोभने विडम्बना नही की हो उसे अपने से प्रभावित न किया हो।

श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि।
मृगलोचनि के नैन सर को अस लाग न जाहि॥ ७०(ख)॥

लक्ष्मी (धन ऐश्वर्य) के अभिमान ने किसको टेढा, और प्रभुता (स्वामीपन या अधिकार के मद) ने किसको बहरा नहीं दिया? ऐसा कौन है जिसे मृगनयनी युवती के नेत्र बाण न लगे हों?

गुन कृत सन्यपात नहिं केही। कोउ न मान मद तजेउ निबेही॥
जोबन ज्वर केहि नहिं बलकावा। ममता केहि कर जस न नसावा॥

गुणों (रज तप आदि) का किया हुआ सन्निपात्र किसको नहीं हुआ? अभिमान और मद ने किसको अछूता छोड़ दिया है? एवं योवन के ज्वर किसे अपने आपे से बाहिर नहीं कर दिया? और ममता ने किसका यश नष्ट नहीं कर दिया?

मच्छर काहि कलंक न लावा। काहि न सोक समीर डोलावा॥
चिंता साँपिनि को नहिं खाया। को जग जाइ न ब्यापी माया॥

मत्सरता (ईर्ष्याद्वेष) ने किसको कलङ्कित नहीं किया, तथा शोक रूपी वायु ने किसको नहीं अपने पथ से डिगा दिया, चिंता रूपी सांपिनी ने किसको नहीं डसा? जगत् में ऐसा कौन हो जिसे माया न व्यापी हो?

कीट मनोरथ दारु सरीरा। जेहि न लाग घुन को अस धीरा॥
सुत बित लोक ईषना तीनी। केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी॥

ऐसा कौन धैर्यवान है जिसके शरीर रूपी लकड़ी में मनोरथ रूपी घुन का कीड़ा न लगा हो। पुत्र की, धन की और लोकप्रतिष्ठा की, इन तीन इच्छाओं ने किस की बुद्धि मलीन नहीं की?

यह सब माया कर परिवारा। प्रबल अमिति को बरनै पारा॥
सिव चतुरानन जाहि डेराहीं। अपर जीव केहि लेखे माहीं॥

हो जाता है तब वह कहने लगता है कि सूर्य पश्चिम दिशा में उदित हुआ है।

नौकारूढ़ चलत जग देखा। अचल मोह बस आपुहि लेखा॥
बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी। कहहिं परस्पर मिथ्यावादी॥

नौका पर सवार होकर यात्रा करने वाला सारे संसार को भी चलता हुआ देखता है और मोह के वश में होकर अपने को अचल समझता है। बालक खेलते खेलते घूमने लग जाते हैं परन्तु घर आदि नहीं घूमते (भ्रम वश उनको सब कुछ घूमता हुआ नजर आता है)।

हरि विषइक अस मोह बिहंगा। सपनेहुँ नहिं अग्यान प्रसंगा॥
मायाबस मतिमंद अभागी। हृदँय जमनिका बहुबिधि लागी॥
ते सठ हठ बस संसय करहीं। निज अग्यान राम पर धरहीं॥

हे गरुड़ जी! श्री हरि जी के विषय में मोह की कल्पना भी ऐसी ही है, उनके सम्बन्ध मे अज्ञान अथवा मोह की बात तो स्वप्न में भी नहीं ठहर सकती। किन्तु जो मन्द बुद्धि, माया के वश और भाग्य हीन हैं, उनके हृदय के सामने बहुत प्रकार का परदा पड़ा हुआ है। वे मूर्ख हठ के वश होकर सन्देह करते हैं और अपना अज्ञान श्री रामचन्द्र जी पर आरोपित करते हैं।

दो०—काम क्रोध मद लोभ रत गृहासक्त दुखरूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहि मूढ़ परे तम कूप॥ ७३(क)॥

जो मनुष्य काम, क्रोध मद और लोभ में फंसे हुए हैं और दुःख रूपी गृहस्थी में फंसे हुए हैं, वे मूर्ख अंधे कुएँ में गिरे हुए हैं, इस कारण वे श्री रघुनाथ जी को कैसे जान सकते हैं।

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ॥ ७३(ख)॥

यह भगवान् का निर्गुण रूप अत्यन्त सुलभ (अनायास ही समझ में आ जाने वाला) है परन्तु सगुण रूप को कोई नहीं जानता, इसलिये उन सगुण भगवान के सुगम और अगम कई प्रकार के चरित्रों को सुन कर मुनिजनों के मन में भी भ्रम हो जाता है।

सुनु खगेस रघुपति प्रभुताई । कहउँ जथामति कथा सुहाई ॥
जेहि बिधि मोह भयउ प्रभु मोही । सोउ सब कथा सुनावउँ तोही ॥

हे पक्षियों के राजा गरुड़ जी ? श्रीरघुनाथ रामचन्द्र जी की प्रभुता ये । जिनकी सुहावनी कथा को मैं अपनी बुद्धि की सामर्थ्य के अनुसार ा हूँ । हे प्रभो ! मुझे जिस प्रकार मोह हुआ वह भी मैं आपको ता हूँ ।

राम कृपा भाजन तुम्ह ताता । हरिगुन प्रीति मोहि सुखदाता ॥
ताते नहिं कछु तुम्हहिं दुरावहुँ । परम रहस्य मनोहर गावउँ ॥

आप श्रीराम जी की कृपा के पात्र हैं (उपयुक्त स्थान हैं) और हरि के गुणों में आपकी प्रीति है, आप मुझे सुख देने वाले हैं, इस रण मैं आपसे कुछ भी नहीं छिपाऊँगा, और अत्यन्त रहस्य की बातें पको गाकर सुनाता हूँ ।

सुनहु राम कर सहज सुभाऊ । जन अभिमान न राखहिं काऊ ॥
संसृत मूल सूलप्रद नाना । सकल सोक दायक अभिमाना ॥

अब आप श्री रामचन्द्र जी का सहज स्वभाव सुनिये, अपने भक्त में भिमान कभी नहीं रहने देते । क्यों कि अभिमान संसार का मूल है, और नेकों प्रकार के दुखों और समस्त शोकों को देने वाला है ॥३॥

ताते करहिं कृपानिधि दूरी । सेवक पर ममता अति भूरी ॥
जिमि सिसु तन ब्रन होइ गोसाईं । मातु चिराव कठिन की नाईं ॥

इस लिये कृपानिधि श्रीराम जी उसे दूर कर देते हैं, क्योंकि भक्तों पर नकी बहुत ही अधिक दया रहती है । हे गोसांईं ! यदि बच्चे के शरीर पर रा (फोड़ा) हो जाता है, तो माता रोग के नाश करने के लिये पीड़ा का ध्यान नहीं करती और हृदय को कड़ा कर उसे चिरा देती है ॥४॥

दो०—जदपि प्रथम दुख पावइ रोवइ बाल अधीर ।
ब्याधि नास हित जननी गनति न सो सिसु पीर ॥ ७४(क)॥

यद्यपि बच्चा पहिले (फोड़े के चिराने के समय) दुःख पाता है और धीर होता रहता है, परन्तु तो भी व्याधि को नष्ट करने के लिये माता उस पीड़ा को नहीं गिनती ॥१॥ (क)

उनके अङ्क (तलवे) में वाज्रादि (वज्र अंकुश, ध्वजा, और कमल) चारों सुन्दर चिन्ह थे, चरणों में मधुर शब्द करने वाले मनोहर नूपुर थे, और मणिरत्नों से जड़ी हुई तथा सोने की बनी हुई सुन्दर कङ्किणी (करधनी) का शब्द अत्यन्त भला लग रहा था ॥४॥

दो०—रेखा त्रय सुंदर उदर नाभी रुचिर गँभीर।
उर आयत भ्राजत बिबिधि वाल विभूषन चीर ॥ ७६ ॥

उदर (पेट) पर सुन्दर तीन रेखायें (निकली) थी और नाभि सुन्दर और गहरी थी, और उसमें नाना प्रकार के बालकों के भूषण और वस्त्र शोभायमान हो रहे थे ॥७६॥

अरुन पानि नख करज मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर ॥
कंध बाल केहरि दर ग्रीवा। चारु चिबुक आनन छवि सींवा ॥

लाल लाल उनके हाथ, नख और अँगुलियाँ अतीव मनोहर लगती थीं, और विशाल भुजाओं पर सुन्दर भूषण शोभायमान हो रहे थे, कंधे सिंह के तथा ग्रीवा (गर्दन) शंख के समान थी। चिवुक (ठोडी) बड़ी सुन्दर और मुख की शोभा-सुन्दरता की सीमा (पराकाष्ठा) पर पहुँची हुई थी ॥१॥

कलबल वचन अधर अरुनारे। दुइ दुइ दसन बिसद बर बारे ॥
ललित कपोल मनोहर नासा। सकल सुखद ससि कर सम हासा ॥

श्री रामचन्द्र जी के कलवल (तुतले) वचन थे तथा लाल वर्ण के अधरोष्ठ थे और सुन्दर चमकीले दो दो दाँत थे, सुन्दर गाल, मनोहर नासिका, और सभी को सुख देने वाली चन्द्रमा की किरणों जैसी उनकी मधुर मुसकान थी ॥२॥

नील कंज लोचन भव मोचन। भ्राजत भाल तिलक गोरोचन ॥
बिकट भृकुटि सम श्रवन सुहाए। कुंचित कच मेचक छबि छाए ॥

नील कमल के समान नयनयुग जन्म मृत्यु के बन्धन से छुड़ा देने वाले हैं, मस्तक पर गोरोचन का तिलक शोभित था। भृकुटियां टेढी और कान सम और सुन्दर थे, काले घुंघराले बाल शोभायमान हो रहे थे ॥३॥

पीत झीनि झगुली तन सोही। किलकनि चितवनि भावति मोही ॥
रूप रासि नृप अजिर बिहारी। नाचहिं निज प्रतिबिंब निहारी ॥

पीला और पतला झगा (कुर्ता) देह पर शोभित हो रहा था उनकी किलकारी और (भोली भाली) चितवन मेरे मन को लुभा रही थी, राजा दशरथ के आँगन में रमण करने वाले, रूप के भण्डार श्री रामचन्द्र जी अपनी परछांई देख कर नाचते थे ॥४॥

मोहि सन करहिं बिबिधि बिधि क्रीड़ा। बरनत मोहि होति अति ब्रीड़ा॥
किलकत मोहि धरन जब धावहिं। चलउँ भागि तब पूप देखावहिं॥

और मुझसे बहुत प्रकार के खेल करते थे, जिन चरित्रों का वर्णन करने में मुझे लज्जा आती है, किलकारी मारते हुए जब वे मुझे पकड़ने के लिए मेरी तरफ दौड़ते थे तब मैं भाग जाता था (मुझे पास बुलाने के लिये तब वे) पूआ दिखलाते थे।

दो०—आवत निकट हँसहिं प्रभु भाजत रुदन कराहिं।
जाउँ समीप गहन पद फिरि फिरि चितइ पराहिं॥ ७७(क)॥

मेरे नजदीक आने पर प्रभु रामचन्द्र जी हँसने लगते और जब मैं भाग जाता तो वे रोने लग पड़ते थे, ज्यों ही मैं उनके चरण छूने के लिये पास जाता तभी वह पीछे फिर कर मेरी तरफ देखते हुए भाग जाते थे ॥७७॥ (क)

प्राकृत सिसु इव लीला देखि भयउ मोहि मोह॥
कवन चरित्र करत प्रभु चिदानंद संदोह॥ ७७(ख)॥

साधारण बच्चों जैसी लीला को देख कर मुझे मोह हो गया कि वे सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान् कैसा चरित्र (लीला) कर रहे हैं ॥७८॥ (ख)

एतना मन आनत खगराया। रघुपति प्रेरित ब्यापी माया॥
सो माया न दुखद मोहि काहीं। आन जीव इव संसृत नाहीं॥

हे खगराज गरुड़ ! मन में इतना मोह लाते ही श्री रघुपति द्वारा प्रेरणा की गई माया मुझ पर छा गई। पर वह माया न तो मुझे दुःख देने वाली हुई और न अन्य जीवों की भाँति 'सार चक्र में डालने वाली ही हुई ॥१॥

नाथ इहाँ कछु कारन आना। सुनहु सो सावधान हरिजाना॥
ग्यान अखंड एक सीतावर। माया बस्य जीव सचराचर॥

हे नाथ ! विष्णु के वाहन गरुड़ जी ! यहाँ पर कुछ और ही दूसरा
ण था, उसे सावधान (स्थिर चित्त) होकर सुनिये ! अखंड ज्ञान स्वरूप
एक सीतापति श्री रामचन्द्र जी ही हैं । बाकी चर अचर जड़ चेतन
पूर्ण माया के वश में हैं ॥२॥

जौं सब कें रह ग्यान एकरस। ईस्वर जीवहि भेद कहहु कस ॥
माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुन खानी ॥

यदि सभी जीवों का ज्ञान एकरस (समान) रहे. तो फिर ईश्वर और
व (प्राणी) मे भेद ही क्या रह जाता है । अभिमानी जीव तो माया के
में हैं, और सत रज तम तीनों गुणों की खान वह माया ईश्वर के वश
है ॥३॥

परबस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता ॥
मुधा भेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया ॥

जीव तो परवश है (पराधीन) है और स्वयं भगवान् अपने वश में
स्वतन्त्र) हैं जीव तो अनन्त हैं और लक्ष्मीपति भगवान् एक ही हैं ।
पि माया द्वारा किया हुआ यह भेद असत् (मिथ्या) है तो भी करोड़ों
ाय करने पर भी भगवान् के भजन बिना वह नही जाता ॥०॥

दो०—रामचन्द्र के भजन बिनु जो चह पद निर्बान।
ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ बिपान ॥७८(क)॥

जो कोई मनुष्य रामचन्द्र जी के भजन के बिना ही यदि निर्वाण (मोक्ष)
त करना चाहता है । भगवान् के भजन के बिना ज्ञानवान होने पर भी वह
ुष्य सींग और पूँछ से रहित पशु ही है (इस कारण मोक्षप्राप्ति के लिये
भजन आवश्यक कहा गया है) ॥७८॥ (क)

राकापति षोड़स उअहिं तारागन समुदाइ।
सकल गिरन्ह दव लाइअ बिनु रबि राति न जाइ ॥७८(ख)

सभी तारागणों के समुदाय के सहित सोलह कलाओं से पूर्ण होकर
यदि चन्द्रमा उदित हो, और समस्त पर्वतों में दावाग्नि जला दी जाय
भी सूर्य के उदय हुए बिना रात्रि नहीं जा सकती ॥७८॥

ऐसेहिं हरि बिनु भजन खगेसा। मिटइ न जीवन्ह केर कलेसा॥
हरि सेवकहि न व्याप अबिद्या। प्रभु प्रेरित व्यापइ तेहि बिद्या॥

इसी प्रकार हे पक्षिराज ! श्री हरि के भजन के बिना जीवों का दुःख नहीं मिट सकता। भगवद्भक्तों को अविद्या (मोह) नहीं व्यापती। प्रभु की प्रेरणा से उन्हें विद्या (ज्ञान) व्यापती है ॥१॥

ताते नास न होइ दास कर। भेद भगति बाढ़इ बिहंगबर॥
भ्रम तें चकित राम मोहि देखा। बिहँसे सो सुनु चरित बिसेषा॥

हे विहंगवर ! गरुड़ जी, इसी प्रकार भगवान् के भक्त का नाश नहीं होता, और भेद भक्ति बढ़ती जाती है। श्री रामचन्द्र जी ने जब मुझे (शुभ) मोह से मोहित हुए देखा, तब वे हँसपड़े उस विशेष चरित्र को भी आप सुनें।२।

तेहि कौतुक कर मरमु न काहूँ। जाना अनुज न मातु पिताहूँ॥
जानु पानि धाए मोहि धरना। स्यामल गात अरुन कर चरना॥

उस कौतुक (आश्चर्य) का मर्म किसी ने भी न जाना, न तो छोटे भाइयों ने और नहीं माता पिता ने। श्याम और सुन्दर शरीर तथा लाल लाल हाथों और चरणो वाले रामचन्द्र जी, घुटने और हाथों के बल मुझे पकड़ने दौड़े ॥३॥

तब मैं भागि चलेउँ उरगारी। राम गहन कहँ भुजा पसारी॥
जिमि जिमि दूरि उड़ाउँ अकासा। तहँ भुज हरि देखउँ निज पासा॥

हे सर्पशत्रु गरुड़ जी ! तब मैं भाग चला, और श्री रामचन्द्र जी ने मुझे पकड़ने के लिये अपनी भुजा फैलाई। मैं जैसे जैसे आकाश में दूर उड़ता जाता वह वैसे वैसे ही वहाँ श्री हरि जी के भुजा को अपने पास ही देखता था ॥४॥

दो०—ब्रह्मलोक लगि गयउँ मैं चितयउँ पाछ उड़ात।
जुग अंगुल कर बीच सब राम भुजहि मोहि तात ॥७६(क)॥

उड़ते उड़ते मैं ब्रह्मलोक तक चला गया और जब पीछे मुड़ कर मैंने देखा तो हे तात ! श्री रामचन्द्र जी की भुजा में और मुझ में केवल दो अंगुली का अन्तर रह गया था ॥७६॥ (क)

सप्तावरन भेद करि जहाँ लगें गति मोरि।
गयउँ तहाँ प्रभु भुज निरखि ब्याकुल भयउँ बहोरि ॥७९(ख)

सातों आवरणों (पर्दों) को भेद कर जहाँ तक मेरी गति थी वहाँ तक मैं गया। परन्तु वहाँ भी प्रभु रामचन्द्र जी की भुजा को देख कर मैं बहुत व्याकुल हुआ ॥८०॥

मूदेउँ नयन त्रसित जब भयऊँ। पुनि चितवत कोसलपुर गयऊँ॥
मोहि बिलोकि राम मुसुकाहीं। बिहँसत तुरत गयउँ मुख माहीं॥

जब मैं बहुत भयभीत हो गया तब मैंने आंखें मूंद लीं, फिर आंखें खोल कर क्या देखता हूं कि मैं अवधपुरी पहुंच गया हूं, मुझे देख रामचन्द्र जी फिर पुकारने लगे, उनके मुस्कराते ही मैं तुरन्त उनके मुख के भीतर चला गया ॥१॥

उदर माझ सुनु अंडज राया। देखेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया॥
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका। रचना अधिक एक ते एका॥

हे गरुड़ जी ! सुनिये, मैंने उनके उदर (पेट) के अन्दर बहुत से ब्रह्माण्ड देखे, वहाँ बहुत से अद्भुत अनेकों लोक थे, और उनकी रचना एक से एक बढ़िया थी ॥२॥

कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगनित उडगन रबि रजनीसा॥
अगनित लोकपाल जम काला। अगनित भूधर भूमि बिसाला॥

करोड़ों ब्रह्मा जी और शिवजी, तथा असंख्य तारों का समूह सूर्य और चन्द्रमा, अनगिनतों लोकपाल, यमराज, काल, असंख्य पर्वत और पृथ्वीयाँ थीं ॥३॥

सागर सरि सर बिपिन अपारा। नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा॥
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किंनर। चारि प्रकार जीव सचराचर॥

असंख्य समुद्र, नदियाँ, तालाब और अपार जङ्गल थे, तथा और भी नाना प्रकार की सृष्टि का विस्तार (रामचन्द्र जी के पेट में) मैंने देखा। देवता, मुनि, सिद्ध, नाग, मनुष्य और किन्नर स्थावर जङ्गम चारों प्रकार के जीव (जरायुज, स्वेदज, उद्भिज और अण्डज) वहां थे ॥४॥

दो०—जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहूँ न समाइ।
सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवनि विधि जाइ ॥८० (क)॥

जो कभी न देखा था, न सुना था, और जो मन में भी नहीं समा सकता था (अर्थात् जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी) वह सब आश्चर्य वहाँ देखा, उसका वर्णन किस प्रकार किया जाय ॥८०॥ (ख)

एक एक ब्रह्माण्ड महुँ रहउँ बरष सत एक।
एहि विधि देखत फिरउँ मैं अंड कटाह अनेक ॥८०(ख)॥

एक एक ब्रह्माण्ड (सृष्टि) में मैं एक एक सौ वर्ष तक रहता, इस प्रकार मैं अनेकों ब्रह्माण्डों को देखता फिरता रहा।

लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता। भिन्न बिस्नु सिव मनु दिसित्राता॥
नर गंधर्व भूत बेताला। किंनर निसिचर पसु खग व्याला॥

प्रत्येक लोक में अलग-अलग ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, मनु आदि दिक्पाल थे, तथा मनुष्य, गन्धर्व भूत, वैताल किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी सर्प, ये भी सभी थे।

देव दनुज गन नाना जाती। सकल जीव तहँ आनहि भाँती॥
महि सरि सागर सर गिरि नाना। सब प्रपंच तहँ आनइ आना॥

नाना प्रकार के देवताओं और दैत्यों के गण तथा सभी जीव वहाँ और ही प्रकार के थे। अनेकों पृथ्वी, नदियाँ, समुद्र, तालाब, पर्वत, सभी प्रपंच (सृष्टि) वहाँ पर दूसरी ही प्रकार की थी।

अंडकोस प्रति प्रति निज रूपा। देखेउँ जिनस अनेक अनूपा॥
अवधपुरी प्रति भुवन निनारी। सरजू भिन्न भिन्न नर नारी॥

प्रत्येक ब्रह्माण्ड में मैंने अपना ही रूप देखा, और अनेक अनुपम वस्तुएँ देखी, हर ब्रह्माण्ड में अयोध्या पुरी भिन्न थी, और सरयू नदी पुरुष तथा स्त्रियाँ भी भिन्न भिन्न थीं।

दसरथ कौसल्या सुनु ताता। बिबिध रूप भरतादिक भ्राता॥
प्रति ब्रह्मांड राम अवतारा। देखउँ बालबिनोद अपारा॥

हे तात ! सुनते रहें, उन अयोध्या के नर नारियों में दशरथ तथा कौशल्या आदि भी थे और विविध रूप वाले भरत आदि भाई भी थे। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में श्रीराम जी का अवतार और उनके उदार बालचरित्रों को मैंने देखा।

दो०–भिन्न भिन्न मैं दीख सबु अति बिचित्र हरिजान।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु राम न देखेउँ आन ॥८१(क)॥

हे हरि के वाहन गरुड़जी महाराज ! मैंने सभी चीजें पृथक् पृथक् और अत्यन्त विचित्र वहाँ देखी, मैं अनगिनत भुवनों में फिरा परन्तु सर्वत्र श्री रामचन्द्र जी एक ही समान थे।

सोइ सिसुपन सोइ सोभा सोइ कृपाल रघुबीर।
भुवन भुवन देखत फिरउँ प्रेरित मोह समीर ॥८१(ख)॥

वही बचपन, वही शोभा और वही कृपालु रघुवीर, इस प्रकार मोह से प्रेरित शरीर लिये मैं लोक लोकान्तरों में देखतः फिरता था।

भ्रमत मोहि ब्रह्मांड अनेका। बीते मनहुँ कल्प सत एका॥
फिरत फिरत निज आश्रम आयउँ। तहँ पुनि रहि कछु काल गवाँयउँ॥

अनेकों ब्रह्माण्डों से भटकते हुए मुझे मानो एकसौ कल्प बीत गये। तब फिरते फिरते मैं अपने आश्रम में पहुँचा, और वहाँ रह कर कुछ समय बिताया।

निज प्रभु जन्म अवध सुनि पायउँ। निर्भर प्रेम हरषि उठि धायउँ
देखउँ जन्म महोत्सव जाई। जेहि बिधि प्रथम कहा मैं गाई॥

यहीं (अपने आश्रम में) मैंने अपने स्वामी रामचन्द्र जी का अयोध्या में जन्म होना सुना, और प्रेम से भर कर मैं हर्ष पूर्वक वहाँ से दौड़ पड़ा, वहाँ जाकर श्रीराम जन्म का महोत्सव देखा, जैसे कि मैं पहिले वर्णन कर चुका हूँ।

राम उदर देखेउँ जग नाना। देखत बनइ न जाइ बखाना॥
तहँ पुनि देखेउँ राम सुजाना। माया पति कृपालु भगवाना॥

श्री रामचन्द्र जी के पेट में मैंने अनेकों जगत् देखे, जो कि देखते ही बनते थे और जिनका वर्णन करना असम्भव हैं। वहां पर फिर मैंने सुजान माया के स्वामी कृपालु भगवान् श्री रामचन्द्र जी को देखा।

करउँ विचार बहोरि बहोरी। मोह कलिल व्यापित मति मोरी॥
उभय घरी महँ मैं सब देखा। भयउँ भ्रमित मन मोह बिसेषा॥

मैं बारम्बार विचार करता था, मेरी बुद्धि मोह रूपी कीचड़ से व्याप्त थी, इतना सब कुछ मैंने दो घडी मे देख लिया, मन में अधिक मोह होने से मैं भ्रमित हो कर थक गया था।

दोहा—देखि कृपालु बिकल मोहि बिहँसे तब रघुबीर।
बिहँसतहीं मुख बाहेर आयउँ सुनु मतिधीर॥ ८२(क)॥

कृपालु श्री रामचन्द्र जी मुझे व्याकुल देख कर हँस दिये। हे गम्भीर बुद्धि वाले गरुड़ जी! आप सुनते रहे, उनके हँसते ही मैं फिर मुँह से बाहिर आ गया।

सोइ लरिकाई मो सन करन लगे पुनि राम।
कोटि भाँति समुझायउँ मनु न लहइ बिश्राम॥८२(ख)॥

श्री रामचन्द्र जी मेरे साथ फिर वही बचपन क्रीड़ाएं करने लगे, मैं करोड़ों प्रकार से अपने मन को समझाता था, परन्तु मन विश्राम नहीं लेता था।

देखि चरित यह सो प्रभुताई। समुझत देह दसा बिसराई॥
धरनि परेउँ मुख आव न बाता। त्राहि त्राहि आरत जन त्राता।

—श्री रामचन्द्र जी का यह चरित्र और वह प्रभुता (जो कि पेट के भीतर मैंने देखी) समझते ही मै शरीर की सुध बुध भूल गया, और हे आर्तजनों के रक्षक, रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये, पुकारता हुआ मैं पृथ्वी पर गिर पड़ा, उस समय मेरे मुँह से बात तक न निकलती थी।

प्रेमाकुल प्रभु मोहि बिलोकी। निज माया प्रभुता तब रोकी॥
कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ। दीनदयालु सकल दुख हरेऊ॥

तदनन्तर रामचन्द्र जी ने मुझे प्रेम में व्याकुल देख कर अपनी

माया की प्रभुता (प्रभाव) को रोक लिया, और अपना हाथ-रूपी-कमल मेरे मस्तक पर रक्खा, और दीन-दयालु भगवान् जी ने मेरे सम्पूर्ण दुःख को हर लिया।

कीन्ह राम मोहि बिगत बिमोहा। सेवक सुखद कृपा संदोहा॥
प्रभुता प्रथम बिचारि बिचारी। मन महँ होइ हरष अति भारी॥

अपने सेवकों को सुख पहुँचाने वाले, दया के भण्डार श्री रामचन्द्र जी ने मुझे मोह से रहित कर दिया, उनकी पहले वाली प्रभुता को विचार विचार करके मेरे मन में अत्यन्त हर्ष हुआ।

भगत बछलता प्रभु कै देखी। उपजी मम उर प्रीति बिसेखी॥
सजल नयन पुलकित कर जोरी। कीन्हिउँ बहु बिधि बिनय बहोरी॥

स्वामी की भक्त वत्सलता देख कर मेरे हृदय में विशेष प्रेम उत्पन्न हुआ मेरे नेत्रों में जल भर आया और सारा शरीर पुलकायमान रोमाञ्चित हो गया, फिर मैं हाथ जोड़ कर बहुत प्रकार से विनती करने लगा।

दोहा—सुनि सप्रेम मम बानी देखि दीन निज दास।
वचन सुखद गंभीर मृदु बोले रमानिवास॥८३॥(क)॥

मेरी प्रेम सहित वाणी को सुन कर और मुझे अपना दीन दास समझ कर रमानिवास श्रीराम जी, सुखदायक गम्भीर और कोमल वचन बोले।

काकभसुंडि मागु बर अति प्रसन्न मोहि जानि।
अनिमादिक सिधि अपर रिधि मोच्छ सकल सुख खानि॥८३(ख

हे काकभुशुण्डी! तू मुझे अत्यन्त प्रसन्न जानकर (जो चाहे वह) वर माँग ले, चाहे अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ अथवा अन्य दूसरी ऋद्धियाँ चाहे सम्पूर्ण सुखों की खान मोक्ष को माँगले।

ग्यान बिबेक बिरति बिग्याना। मुनि दुर्लभ गुन जे जग नाना॥
आजु देउँ सब संसय नाहीं। मागु जो तोहि भाव मन माहीं॥

ज्ञान, विवेक, वैराग्य, विज्ञान, और वे अनेकों गुण जो संसार में ऋषियों मुनियों के लिये भी दुर्लभ (अप्राप्य) हैं। ये सब मैं आज तुम्हें

भगति हीन बिरंचि किन होई । सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई ॥
भगतिवंत अति नीचउ प्रानी । मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी ॥

भक्ति से हीन ब्रह्मा ही क्यों न हो, वह मुझे सभी साधारण जीवों के समान प्यारा है, और भक्ति युक्त अत्यन्त नीच प्राणी ही हो तो भी मुझे बहुत ही प्यारा है, ऐसी मेरी सच्ची वाणी है ।

दो०—सुचि सुसील सेवक सुमति प्रिय कहु काहि न लाग ।
श्रुति पुरान कह नीति असि सावधान सुनु काग ॥८६॥

पवित्र, सुशील और अच्छी बुद्धि वाला सेवक, भला किस को प्यारा नहीं होता, समस्त वेद और पुराण इसी प्रकार की नीति को कहते हैं, हे काक ! तू सावधान होकर सुन ॥८६॥

एक पिता के बिपुल कुमारा । होहिं पृथक गुन सील अचारा ॥
कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता । कोउ धनवंत सूर कोउ दाता ॥

एक पिता के बहुत से पुत्र, अलग अलग गुण स्वभाव और आचरण वाले होते हैं, कोई पण्डित होता है, कोई तापस (तपस्वी) होता है, कोई ज्ञानी, कोई धनी, कोई शूर-वीर और कोई दाता (दानी) होता है ॥१॥

कोउ सर्बग्य धर्मरत कोई । सब पर पितहि प्रीति सम होई ॥
कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा । सपनेहुँ जान न दूसर धर्मा ॥

कोई सर्वज्ञ होता है तो कोई सदा धर्म में ही लीन रहने वाला होता है, परन्तु पिता का स्नेह सभी के ऊपर समान ही होता है, कोई पुत्र मन, वचन और कर्म से पिता का भक्त (सेवक) होता है, वह स्वप्न में भी अन्य दूसरा धर्म नहीं जानता ॥२॥

सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना । जद्यपि सो सब भाँति अयाना ॥
एहि बिधि जीव चराचर जेते । त्रिजग देव नर असुर समेते ॥

यद्यपि वह (पितृ भक्त पुत्र) सब प्रकार से अज्ञानी ही क्यों न हो, तथापि वह पिता को प्राणों के समान प्यारा होता है । इसी प्रकार त्रिभुवन में जितने भी चर, अचर, तिर्यक् (पक्षी आदि जीव) देवता, मनुष्य और राक्षस आदि जीव हैं ॥३॥

अखिल विस्व यह मोर उपाया। सब पर मोहि बराबरि दाया॥
तिन्ह महँ जो परिहरि मद माया। भजै मोहि मन बच अरु काया॥

उसने परिपूर्ण, यह सम्पूर्ण संसार मेरा पैदा किया हुआ है, और सभी के ऊपर मेरी एक बराबर दया है। उन सब जीवों में से जो यह (अभिमान) और माया को छोड़ कर मन वचन और कर्म से मुझे भजता है ॥४॥

दो०—पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्व भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥८ (क)॥

वह पुरुष, नपुंसक, स्त्री, पुरुष, अथवा चर, अचर कोई भी जीव हो कपट को छोड़ कर और भक्ति-भाव से युक्त होकर मुझे भजता है, वही मुझे परम प्यारा है ॥८७॥ (क)

सो०—सत्य कहउँ खग तोहि सुचि सेवक मम प्रानप्रिय।
अस बिचारि भजु मोहि परिहरि आस भरोस सब ॥८७(ख)

(भगवान् रामचन्द्र जी कहते हैं) हे खग! तुम्हें सत्य कहता हूँ, पवित्र सेवक मुझे प्राण के समान प्रिय (प्यारा है) ऐसा विचार कर, सभी आशा विश्वास आदि को परित्याग कर तुम सदैव मेरा ही भजन करो ॥७७॥

कबहूँ काल न ब्यापिहि तोहि। सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोहि॥
प्रभु बचनामृत सुनि न अघाऊँ। तनु पुलकित मन अति हरषाऊँ॥

मेरे स्वरूप का निरन्तर स्मरण करते रहने पर तुम्हें कोई भी कारण नहीं व्यापेगा, अर्थात् किसी भी काल में तुम दुःख प्राप्त नहीं करोगे। काक भुशुण्डी जी गरुड़ को कहते हैं—मैं प्रभु श्री रामचन्द्र जी के वचनामृत को पान कर कभी भी तृप्त नहीं होता मेरा समस्त शरीर पुलकित हो जाता है। और मैं अपने मन में बहुत ही आनन्दित होता हूँ ॥१॥

सो सुख जानइ मन अरु काना। नहिं रसना पहिं जाइ बखाना॥
प्रभु सोभा सुख जानहिं नयना। कहि किमि सकहिं तिन्हहि नहिं बयना

उस समय जो मुझे सुख प्राप्त होता है। उसे मन और कान ही जानते हैं, रसना (जिह्वा) उस सुख का वर्णन नहीं कर सकती, प्रभु की शोभा का

वह सुख नेत्र ही जानते हैं, परन्तु वे कह कैसे सकते हैं, कहने के लिये वाणी तो उनके पास है नहीं । ॥२॥

बहुविधि मोहि प्रबोधि सुख देई । लगे करन सिसु कौतुक तेई ॥
सजल नयन कछु मुख करि रूखा । चितइ मातु लागी अति भूखा ॥

इस तरह मुझे भली भांति से समझा बुझा कर और सुख देकर प्रभु फिर वही बालकों के कौतुक (चमत्कार) करने लग पड़े । नेत्रों में जल भर कर और मुँह को कुछ रूखा करके उन्होंने माता की ओर देखा, मानो कह रहे हों कि मुझे बहुत भूख लगी हुई है ॥३॥

देखि मातु आतुर उठि धाई । कहि मृदु बचन लिए उर लाई ॥
गोद राखि कराव पय पाना । रघुपति चरित ललित कर गाना ॥

माता (श्रीराम जी का रूखा मुख देख कर) तुरन्त ही उठ दौड़ी और कोमल वचन कह कर उनको हृदय से लगा लिया और गोदी में रख कर दूध पिलाती हुई उनकी बाललीलाओं को गाने लगी ॥४॥

सो०—जेहि सुख लागि पुरारि असुभ बेष कृत सिव सुखद ।
अवधपुरी नर नारि तेहि सुख महुँ संतत मगन ॥८८(क)॥

जिस सुख को प्राप्त करने के लिये सब सुखों को देने वाले कल्याण स्वरूप त्रिपुरारी शङ्कर जी ने अशुभ वेश धारण किया, अवधपुरी के नर, नारी सदा उसी सुख में निमग्न रहते हैं ॥८८॥ (क)

सोई सुखलवलेस जिन्ह बारक सपनेहुँ लहेउ ।
ते नहिं गनहिं खगेस ब्रह्मसुखहि सज्जन सुमति ॥८८(ख)॥

हे तात, गरुड़ ! जिसने उस सुख का लेश मात्र भी एक बार स्वप्न में प्राप्त कर लिया, वे श्रेष्ठ बुद्धि वाले सज्जन पुरुष उसके आगे ब्रह्म सुख को भी कोई चीज नहीं समझते बल्कि ब्रह्म सुख को भी क्षुद्र समझते हैं ॥८८॥ ख

मैं पुनि अवध रहेउँ कछु काला । देखेउँ बालबिनोद रसाला ॥
राम प्रसाद भगति बर पायउँ । प्रभु पद बंदि निजाश्रम आयउँ ॥

फिर मैं कुछ समय तक तो अयोध्या में ही रहा, और सुन्दर (श्रीराम जी के) बालविनोद को देखता रहा । श्री रामचन्द्र जी के प्रसाद से मैंने भक्ति

को वरदान स्वरूप प्राप्त किया, फिर प्रभु जी के चरणों की वन्दना करके मैं अपने आश्रम में चला आया ॥१॥

तब ते मोहि न व्यापी माया। जब ते रघुनायक अपनाया॥
यह सब गुप्त चरित मैं गावा। हरि माया जिमि मोहि नचावा॥

बस तभी से मुझे माया का व्यामोह नहीं हुआ जब से मुझे रघुनाथ श्री रामचन्द्र जी नें अपना लिया, यह सब गुप्त चरित्र मैंने (तुम्हारे सामने) गाया है, जिस प्रकार मुझे भगवान् की माया ने नचाया था ॥२॥

निज अनुभव अब कहउँ खगेसा। बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा॥
राम-कृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाइ राम प्रभुताई॥

हे पक्षिराज गरुड़ ! अब मैं अपना निजी जो अनुभव है वह तुमसे कहता हूँ। हे पक्षिश्रेष्ठ ! रामचन्द्र जी की कृपा के बिना उनकी प्रभुता (सामर्थ्य) जानी नहीं जाती ॥३॥

जानें बिनु न होई परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती॥
प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई॥

इसलिये जब तक उनकी प्रभुता जानी नहीं जाय तब तक उन पर विश्वास नहीं होता। हे गरुड़ ! प्रेम के बिना भक्ति कभी भी दृढ़ (पक्की) नहीं हो सकती। जैसे जल में चिकनाहट नहीं होती ॥४॥

सो०—बिनु गुर होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु।
गावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु ॥८९(क)॥

गुरु के बिना कभी भी ज्ञान नहीं होता, और न ही वैराग्य के बिना ज्ञान हो सकता है। इसी तरह वेद और पुराण भी गा गा कर यही सुनाते है कि हरि की भक्ति के बिना भला क्या कभी सुख प्राप्त हो सकता है ॥८९॥ (क)

कोउ बिश्राम कि पाव तात सहज संतोष बिनु।
चलै कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिअ ॥८९(ख)॥

हे तात ! सहज (प्राकृतिक) सन्तोष के बिना कौन विश्राम पा सकता है, करोड़ों प्रयत्न करने पर भी और पच पच कर मरने पर भी अर्थात् कितना

बिना विश्वास के (निश्चय के) भक्ति नहीं होती, और भक्ति के बिना श्री रामचन्द्र जी नहीं पिघलते, अर्थात् दयालु नहीं होते। रामचन्द्र जी की कृपा के बिना स्वप्न में भी मन विश्राम नहीं पा सकता ॥९०॥ (क)

सो०—अस बिचारि मति धीर तजि कुतर्क संसय सकल।

भजहु राम रघुबीर करुनाकर सुन्दर सुखद ॥९०(ख)॥

हे धीर बुद्धि वाले गरुड़ ! ऐसा विचार कर समस्त कुतर्कों और संशयों को त्याग कर दया की खान, सुन्दर, सुख देने वाले राम रघुवीर जी का भजन करो ॥९०॥ (ख)

निज मति सरिस नाथ मैं गाई। प्रभु प्रताप महिमा खगराई ॥
कहेउँ न कछु करि जुगुति बिसेषी। यह सब मैं निज नयनन्हि देखी ॥

हे पक्षिराज गरुड़ ! इस प्रकार मैंने अपनी सहज मति के अनुसार प्रभु रामचन्द्र जी के प्रताप और महिमा का वर्णन किया है। इसमें मैंने कोई विशेष युक्ति से बढ़ा कर बात नहीं कही, परन्तु यह सब अपनी आँखों देखी बातें तुमसे कही हैं ॥१॥

महिमा नाम रूप गुन गाथा। सकल अमित अनंत रघुनाथा ॥
निज निज मति मुनि हरि गुन गावहिं। निगम सेष सिव पार न पावहिं ॥

रघुनाथ श्री रामचन्द्र जी की महिमा, नाम, रूप और गुणों की कथा सभी अपार एवं अनन्त है तथा श्री रघुनायक स्वयं भी अनन्त हैं। मुनिजन अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार भगवद् गुण गाते हैं, उनका पार तो चारों वेद शेषनाग और शिवजी भी नहीं पा सकते ॥२॥

तुम्हहि आदि खग मसक प्रजंता। नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अंता ॥
तिमि रघुपति महिमा अवगाहा। तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा ॥

हे गरुड़ ! आप से लेकर मच्छर तक सभी छोटे बड़े जीव आकाश में उड़ते हैं (अपनी अपनी सामर्थ्य के अनुसार) परन्तु उस आकाश के अन्त को कोई नहीं पा सकते। इसी प्रकार रघुनाथ जी की महिमा भी अथाह है। कभी भी कोई उसका थाह (पार) नहीं पा सकता ॥३॥

रामु काम सत कोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन ॥
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा। नभ सत कोटि अमित अवकासा ॥

श्री रामचन्द्र जी का करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर शरीर है और वे असंख्य कोटि दुर्गाओं के समान शत्रु को नाश करने वाले हैं; करोड़ों इन्द्रों के समान उनका विलास भोग है और सौ करोड़ आकाशों के समान अमित (असंख्य) अवकाश वाले (व्यापक) हैं।

दो०—मरुत कोटि सत विपुल बल रवि सत कोटि प्रकास।

ससि सत कोटि सुसीतल समन सकल भव त्रास ॥९१(क)॥

अरबों पवन के समान उनमें विपुल (महान्) बल है, तथा सूर्यों के समान उनका प्रकाश है। करोड़ों चन्द्रमाओं के समान उनमें शीतलता है, और वे संसार के सम्पूर्ण भयों का नाश करने वाले हैं ॥९१॥ (क)

काल कोटि सत सरिस अति दुस्तर दुर्ग दुरंत।

धूमकेतु सत कोटि सम दुराधर्ष भगवंत ॥९१ (क)॥

करोड़ों कालों के समान अत्यन्त दुस्तर, दुरन्त और दुर्गम श्री रामचंद्र जी हैं। वे करोड़ों धूमकेतु (पूंछवाले तारे जिनका दिखाई देना प्रजा के लिए नाशकारी कहा गया है) के समान अत्यन्त प्रबल हैं।

प्रभु अगाध सत कोटि पताला। समन कोटि सत सरिस कराला॥

तीरथ अमित कोटि सम पावन। नाम अखिल अघ पुञ्ज नसावन॥

प्रभु रामचन्द्र जी अरबों पातालों के समान गहरे हैं, और करोड़ों यमराजों के समान विकराल हैं। असंख्य तीर्थों के समान पवित्र करने वाले उनके अनन्त नाम समस्त पाप समूहों को नष्ट करने वाले हैं ॥१॥

हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा। सिंधु कोटि सत सम गंभीरा॥

कामधेनु सत कोटि समाना। सकल काम दायक भगवाना॥

भगवान् रामचन्द्र जी करोड़ों हिमालय पर्वतों के समान निश्चल हैं और करोड़ों समुद्रों के समान गम्भीर हैं, तथा करोड़ों कामधेनुओं के समान समस्त कामनाओं को देने वाले हैं ॥२॥

सारद कोटि अमित चतुराई। बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई॥

बिस्नु कोटि सत पालन कर्ता। रुद्र कोटि सत सम संहर्ता॥

करोड़ों ही सरस्वतियों के बराबर उनमें चतुराई है, करोड़ों ब्रह्माओं के समान सृष्टि रचने की निपुणता है, करोड़ों विष्णुओं के समान पालन करने

वाले और करोड़ों रुद्रों के समान संहार कर्ता हैं ॥३॥

धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना ॥
भार धरन सत कोटि अहीसा। निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा ॥

करोड़ों कुबेरों के समान धनवान् हैं और करोड़ों मायाओं के समान सृष्टि के रखवाले हैं। सौ करोड़ शेषनागों के समान पृथ्वी के भार को धारण करने वाले हैं अतएव श्री रामचन्द्र जी निरवधि हैं अर्थात् जिनकी कोई अवधि या सीमा न हो कि कब से प्रादुर्भाव हुए हैं और कब तक विद्यमान रहेंगे। इस प्रकार प्रभु रामचन्द्र जी उपमा रहित और समस्त जगत् के ईश मालिक हैं ॥४॥

छं०—निरुपम न उपमा आन राम समान रामु निगम कहै।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै ॥
एहि भाँति निज निज मति बिलास मुनीस हरिहि बखानहीं।
प्रभु भाव गाहक अति कृपालु सप्रेम सुनि सुख मानहीं ॥

समस्त वेद और शास्त्र कहते हैं कि श्री रामचन्द्र जी के समान स्वयं श्रीराम ही हैं। जिस तरह सौ करोड़ जुगुनुओं के बराबर कह देने पर भी सूर्य के लिये वह उपमा बहुत ही निकृष्ट होती है, इसी प्रकार अपनी अपनी बुद्धि के विकास के अनुसार ऋषिगण श्री हरि का भजन करते हैं। इसी प्रकार प्रभु श्री रामचन्द्र जी भक्तों के भाव को ग्रहण करने वाले और अत्यन्त कृपालु हैं. अतएव वे मुनिजन उनके प्रेम सहित वर्णन को सुनकर सुख पाते हैं।

दो०—रामु अमित गुन सागर थाह कि पावइ कोइ।
संतन्ह सन जस किछु सुनेउँ तुम्हहि सुनायउँ सोइ ॥९२(क)॥

श्री रामचन्द्र जी असंख्य गुणों के समुद्र हैं, उनकी भला क्या कोई थाह पा सकता है? अर्थात् नहीं। इसी लिये मैंने जैसा कुछ महात्मा लोगों से सुना है वह सब आपको सुना दिया है ॥९२॥ (क)

सो०—भाव बस्य भगवान सुख निधान करुना भवन।
तजि ममता मद मान भजिअ सदा सीता रवन ॥९२(ख)॥

वह भगवान् श्री रामचन्द्र जी, समस्त गुणों के सागर और दया के समुद्र तथा भाव (प्रेम) के वश में है। इस लिये ममता, मद, मान का

सर्वथा परित्याग कर सदैव श्री सीतापति रघुनाथ जी का भजन करना चाहिये ॥९२॥ (ख)

सुनि भुसुंडि के बचन सुहाए। हरषित खगपति पंख फुलाए॥
नयन नीर मन अति हरषाना। श्रीरघुपति प्रताप उर आना।

पक्षिराज गरुड़ जी ने इस प्रकार भुशुण्डी जी के वचन सुने तो अत्यन्त प्रसन्न हुए, और हर्ष से अपने पंख फुला लिये। उनके लोचनों में जल (प्रेमाश्रु) आगये और मन अत्यन्त हर्षित हो गया; और फिर रघुवर श्री रामचन्द्र जी का प्रताप (तेज) हृदय में धारण किया ॥१॥

पाछिल मोह समुझि पछिताना। ब्रह्म अनादि मनुज करि माना॥
पुनि पुनि काग चरन सिरु नावा। जानि राम सम प्रेम बढ़ावा॥

गरुड़ जी (यह सब सुन कर) अपने पिछले मोह पर विचार करने लगे, जो कि उन्होंने अनादि ब्रह्म परमेश्वर को मनुष्य मान लिया था। उन्होंने (पछता कर) बारम्बार काकभुशुण्डी जी को मस्तक नवाया और उन्हें श्री रामचन्द्र जी के समान ही जान कर प्रेम बढ़ाया ॥२॥

गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई। जौं बिरंचि संकर सम होई॥
संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता॥

गुरु के बिना (गुरु की शिक्षा के बिना) कोई भी भवसागर (संसार समुद्र) से तर नहीं सकता (पार नहीं हो सकता) चाहे वह ब्रह्मा जी और शिवजी के समान ही क्यों न हो। गरुड़ जी बोले—हे तात! मुझे संशय रूपी सर्प ने डसा था, और बहुत से कुतर्कों की दुःख देने वाली लहरें आ रही थीं (साँप के डसने पर जब विष चढ़ता है तो खून से मिल कर लहरों की भाँति वह समस्त शरीर में फैल जाता है)।

तव सरूप गारुड़ि रघुनायक। मोहि जिआयउ जन सुखदायक॥
तव प्रसाद मम मोह नसाना। राम रहस्य अनूपम जाना॥

अपने भक्तों को सुख देने वाले गारुड़ी (सर्प का जहर उतारने वाले) रघुनायक रामचन्द्र जी आपका काक स्वरूप धारण कर मुझे (मरते हुए को) जिला दिया है आपकी कृपा से मेरा अज्ञान नष्ट हो गया है और अब मैंने राम जी के अनुपम रहस्य को जाना है।

दो०—नाहि प्रसंसि बिबिधि बिधि सीस नाइ कर जोरि।
वचन विनीत सप्रेम मृदु बोलेउ गरुड़ बहोरि ॥९३(क)॥

(फिर गरुड़ जी) भुशुण्डी जी की बहुत प्रकार से प्रशंसा करके और उन्हें सिर नवा कर, हाथ जोड़ कर, प्रेमपूर्वक कोमल वचनों में फिर बोले—

प्रभु अपने अविवेक ते बूझउँ स्वामी तोहि।
कृपासिंधु सादर कहहु जानि दास निज मोहि ॥९३(ख)॥

हे प्रभु ? स्वामी, मैं अपने अविवेक (कुबुद्धि) से आपको पूछता हूँ। हे कृपासागर ! मुझे अपना दास समझ कर आदरपूर्वक उस बात का उत्तर दीजिये।

तुम्ह सर्वग्य तत्व तम पारा। सुमति सुसील सरल आचारा॥
ग्यान बिरति बिग्यान निवासा। रघुनायक के तुम्ह प्रिय दासा॥

आप सर्वज्ञ हैं (सब कुछ जानने वाले) हैं, तत्वों को जानने वाले हैं, तमो गुण (अज्ञान) से पार पहुँचे हुए हैं। उत्तम बुद्धि से युक्त; सुशील, सरल आचरण वाले, ज्ञान, वैराग्य और विज्ञान के धाम हैं और रघुनाथ जी के प्रिय दास हैं।

कारन कवन देह यह पाई। तात सकल मोहि कहहु बुझाई॥
रामचरित सर सुंदर स्वामी। पायहु कहाँ कहहु नभगामी॥

"यह कौए का शरीर आपने किस प्रकार से प्राप्त किया, हे तात ! यह सभी वृत्तान्त समझा कर मुझे कहिये ! हे आकाश में विहार करने वाले स्वामी, अन्य यह सुन्दर रामचरित रुपी सरोवर कहां से पा गये ? कहिये।

नाथ सुना मैं अस सिव पाहीं। प्रलयहुँ महा नास तव नाहीं॥
मृषा वचन नहिं ईस्वर कहई। सोउ मोरें मन संसय अहई॥

हे नाथ ? मैंने शिव जी से ऐसा सुना है कि महाप्रलय हो जाने पर भी आपका नाश नहीं होता, शिव जी कभी झूठ नहीं बोलते, इसलिये मेरे मन में यह सन्देह हो रहा है।

अग जग जीव नाग नर देवा। आदि सकल जगु काल कलेवा॥
अंड कटाह अमित लयकारी। कालु सदा दुरतिक्रम भारी॥

हे नाथ ! स्थावर; जङ्गम, सभी प्रकार के जीव, नाग, मनुष्य, देवता

आदि सभी काल के कलेवा (खाद्य सामग्री) हैं। अनगिनत ब्रह्माण्डों को नाश करने वाला काल बड़ा दुरतिक्रम (जिसे कोई लांघ न सके) है।

सो०—तुम्हहि न ब्यापत काल अति कराल कारन कवन।
सोहि सो कहहु कृपाल ग्यान प्रभाव कि जोग बल ॥९४(क)

वह अत्यन्त भयङ्कर काल आपको नहीं व्यापता, इसका कौन-सा कारण है? हे कृपालु, आप मुझे यह सभी स्पष्ट कह दीजिये। क्या ज्ञान के प्रभाव से अथवा आपके योग के बल से वह आपको नहीं व्यापता।

दो०—प्रभु तव आश्रम आएँ मोर मोह भ्रम भाग।
कारन कवन सो नाथ सब कहहु सहित अनुराग ॥९४(ख)

हे प्रभो! आपके आश्रम में प्रविष्ट करते ही मेरा मोह और भ्रम भाग गया। इसका क्या कारण है? हे नाथ! यह सब मुझे आप प्रेम सहित कहिए।

गरुड़ गिरा सुनि हरषेउ कागा। बोलेउ उमा परम अनुरागा ॥
धन्य धन्य तव मति उरगारी। प्रस्न तुम्हारि मोहि अति प्यारी ॥

शिव कहते हैं—हे पार्वती! गरुड़ जी की इस प्रकार की वाणी सुन कर काकभुशुण्डी जी अत्यन्त हर्षित हुए, और प्रेम सहित बोले—हे गिरुड़ जी! आपकी बुद्धि को बार-बार धन्य है, आपके प्रश्न मुझे अत्यन्त ही प्रिय हैं।

सुनि तव प्रस्न सप्रेम सुहाई। बहुत जनम कै सुधि मोहि आई ॥
सब निज कथा कहउँ मैं गाई। तात सुनहु सादर मन लाई ॥

आपके प्रेम युक्त सुन्दर प्रश्न को सुन कर मुझे अपने बहुत जन्मों की याद आ गई। अब मैं अपनी कथा कहता हूँ, हे तात! मन लगा कर आदर सहित सुनिये।

जप तप मख सम दम ब्रत दाना। बिरति बिबेक जोग बिग्याना ॥
सब कर फल रघुपति पद प्रेमा। तेहि बिनु कोउ न पावइ छेमा ॥

जप, तप, मख, यज्ञ, शम, दम, दान वैराग्य, विवेक, योग और विज्ञान आदि सब का फल श्री रघुनाथ जी के चरणों में प्रेम ही है। इसके बिना कोई भी कल्याण नहीं पा सकता।

एहिं तन राम भगति मैं पाई। ताते मोहि ममता अधिकाई॥
जेहि तें कछु निज स्वारथ होई। तेहि पर ममता कर सब कोई॥

मैंने इसी कौए के शरीर द्वारा रामचन्द्र जी की भक्ति प्राप्त की है। इसीलिये मुझे इस शरीर पर अधिक ममत्व है। जिसके द्वारा अपना कुछ स्वार्थ होता है उस पर सभीकोई प्रेम करते हैं।

सो०—पन्नगारि असि नीति श्रुति संमत सज्जन कहहिं।
अति नीचहु सन प्रीति करिअ जानि निज परम हित ॥९५॥(क)॥

हे सर्पों के शत्रु गरुड जी ? वेदों में मानी हुई ऐसी नीति है और सज्जन वृन्द भी कहते हैं कि अपना परम हित जान कर अत्यन्त नीच मनुष्य से भी प्रीति कर लेनी चाहिये।

पाट कीट तें होइ तेहि तें पाटंबर रुचिर।
कृमि पालइ सब कोइ परम अपावन प्रान सम ॥९५॥ (ख)॥

रेशम कीड़े से निकलता है, और रेशम से सुन्दर वस्त्र बनते हैं। इसी कारण उस अपवित्र कीड़े को भी सभी प्रेम पूर्वक पालते है।

स्वारथ सांच जीव कहुँ एहा। मन क्रम वचन राम पद नेहा॥
सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा॥

जीव के लिये सच्चा स्वार्थ यही है कि मन, वचन और कर्म से श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में प्रेम हो। जिस शरीर को प्राप्त कर रघुवीर श्रीराम जी का भजन हो सके वह शरीर पवित्र और सुन्दर है।

राम बिमुख लहि बिधि सम देही। कबि कोबिद न प्रसंसहिं तेही॥
राम भगति एहिं तन उर जामी। ताते मोहि परम प्रिय स्वामी॥

जो श्री रामचन्द्र जी से विमुख है, वह ब्रह्माजी के समान भी यदि देह प्राप्त करले, तो भी कवि और चतुर विद्वान् उसकी प्रशंसा नहीं करते। इसी कौए के शरीर द्वारा मेरे हृदय में राम भक्ति उत्पन्न हुई, इसी से यह देह मुझे बहुत प्यारी है।

तजउँ न तन निज इच्छा मरना। तन बिनु बेद भजन नहिं बरना॥
प्रथम मोहँ मोहि बहुत बिगोवा। राम बिमुख सुख कबहुँ न सोवा॥

अपनी इच्छा के आधीन मृत्यु होने पर भी मैं इस देह को नहीं

त्यागता। क्योंकि वेदों ने वर्णन किया है कि शरीर के बिना भजन नहीं होता। पहिले तो मोह ने मुझे बहुत सताया, क्योंकि मैं रामचन्द्र जी से विमुख था, ऐसी अवस्था में भला मैं स्वप्न में भी कभी सुख पा सकता था ? अर्थात् नहीं।

नाना जनम कर्म पुनि नाना। किए जोग जप तप मख दाना॥
कवन जोनि जनमेउँ जहँ नाहीं। मैं खगेस भ्रमि भ्रमि जग माहीं॥

मैंने अनेकों बार जन्म लिया और अनेकों योग, जप, यज्ञ, तप, दान आदि कर्म किये हैं। हे गरुड़ जी ! जगत् में ऐसी कौन योनि है, जिसमें घूम कर (बार-बार) मैंने जन्म नहीं लिया।

देखेउँ करि सब करम गोसाईं। सुखी न भयउँ अबहिं कि नाईं॥
सुधि मोहि नाथ जन्म बहु केरी। सिव प्रसाद मति मोह न घेरी॥

हे गुसाईं ? मैंने सभी कर्म करके देख लिये। परन्तु अब के समान सुखी मैं कभी भी नहीं हुआ। हे नाथ ! मुझे अपने बहुत से जन्मों की सुधि (याद) है। शिव जी की कृपा से मेरी बुद्धि को मोह ने नहीं घेरा।

दो०—प्रथम जन्म के चरित अब कहउँ सुनहु बिहँगेस।
सुनि प्रभु पद रति उपजइ जातें मिटहिं कलेस॥९६ (क)॥

हे पक्षिराज ! अब मैं अपने पूर्व जन्म के चरित्रों को कहता हूँ; तुम सुनो ? जिन्हें सुन कर भगवान् के चरणों में प्रीति होती है और जिन श्रवणमात्र से सब तरह के क्लेश संकट दूर हो जाते हैं।

पूरब कलप एक प्रभु जुग कलिजुग मल मूल।
नर अरु नारि अधर्म रत सकल निगम प्रतिकूल॥९६ (ख)॥

हे प्रभो ! पहले एक कल्प में कलियुग पापों का मूल था, जिसमें पुरुष और स्त्रियां सभी अधर्म में लीन और वेदों के विरोधी थे।

तेहिं कलिजुग कोसलपुर जाई। जन्मत भयउँ सूद्र तनु पाई॥
सिव सेवक मन क्रम अरु बानी। आन देव निंदक अभिमानी॥

इस कलियुग में मैंने अयोध्यापुरी में जाकर जन्म लिया और शूद्र का शरीर प्राप्त किया, मैं मन, वचन और कर्म से शिव जी का सेवक और अन्य देवताओं का निन्दक तथा अभिमानी था।

धन मद मत्त परम वाचाला। उग्र बुद्धि उर दंभ बिसाला॥
जदपि रहेउँ रघुपति रजधानी। तदपि न कछु महिमा तब जानी॥

धन के मद से मैं उन्मत्त बड़ा बोलने वाला तथा तीक्ष्ण बुद्धि वाला था मेरे हृदय में बड़ा भारी दम्भ था, यद्यपि मैं रघुनाथ जी की राजधानी अयोध्या में रहता था, फिर भी मैं उस समय उसकी कुछ महिमा नहीं जानता था।

अब जाना मैं अवध प्रभावा। निगमागम पुरान अस गावा॥
कवनेहुँ जन्म अवध बस जोई। राम परायन सो परि होई॥

अब मैंने अवधपुरी के प्रभाव को जाना है, जिसको कि वेदों, पुराणों और अन्य शास्त्रों में भी इस प्रकार गाया गया है। किसी भी जन्म में जो कोई भी यदि अयोध्या में बस जाता है, वह अवश्य श्रीराम जी का अत्यन्त भक्त हो जाता है।

अवध प्रभाव जान तब प्रानी। जब उर बसहिं रामु धनुपानी॥
सो कलिकाल कठिन उरगारी। पाप परायन सब नर नारी॥

अयोध्या के प्रभाव (चमत्कार) को प्राणी तभी जान सकते हैं, जब कि धनुष हाथ में धारण किये हुए रामचन्द्र जी उनके हृदय में निवास करते हों, हे गरुड़ जी! वह कलियुग बहुत ही कठिन था, जिसमें सभी नर-नारी पाप में रहते थे।

दो०—कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रन्थ।
दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ॥ ९७ (क)॥

कलियुग के मल ने (पापों ने) सभी धर्मों को ग्रस लिया और सभी अच्छे-अच्छे धार्मिक ग्रंथ थे वह लुप्त हो गये, दम्भी लोगों ने अपनी बुद्धि से कल्पना कर बहुत से पंथ प्रगट कर दिये।

भए लोग सब मोहबस लोभ ग्रसे सुभ कर्म।
सुनु हरिजान ग्यान निधि कहउँ कछुक कलिधर्म॥ ९७ (ख)॥

सभी लोग मोह के वश में हो गये और लोभ ने सभी शुभ कर्मों को ग्रस लिया (नाश कर दिया)। हे विष्णु भगवान! के वाहन! गरुड़ जी; सुनिये, अब मैं कलियुग के कुछ धर्म कहता हूँ।

बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर नारी॥
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन॥

कलियुग में न तो वर्ण धर्म (ब्राह्मण; क्षत्रिय; वैश्य; शूद्र ये चारों धर्म) रहा, और न तो चारों आश्रम (ब्रह्मचर्य; गृहस्थ, वानप्रस्थ; सन्यास) रहते हैं। सभी स्त्री पुरुष वेदों के विरोध में रत (व्यग्र) रहते हैं; ब्राह्मण लोग वेदों को (वेद विद्या को बेच डालने वाले; और राजा प्रजा को खा लेने या (शोषण करने वाले) होते हैं। वेद की आज्ञा को कोई नहीं मानता।

मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा॥
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई॥

वही मार्ग है, जिसको जो अच्छा लग जाय जो गाल बजावे, अर्थात् अपना बड़प्पन दिखलावे वही पण्डित है, जो झूठे आडम्बर रचता है और दम्भ में लीन है, उसी को सब कोई लोग संत कहते हैं।

सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी॥
जो कह झूँठ मसखरी जाना। कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना॥

जो दूसरे के धन को बल से अथवा चोरी से हरण कर लेता है वही सयाना अर्थात् बुद्धिमान माना जाता है। जो दम्भ करता है वही बड़ा सदाचारी है। जो झूठ बोलता है और हँसी मसखरी करना जानता है कलियुग में वही गुणी माना जाता है।

निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलिजुग सोइ ग्यानी बैरागी॥
जाकें नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥

जो आचार व्यवहार से हीन है और वेद मार्ग को छोड़े हुए है, कलियुग में वही वैरागी है। जिसके नख और जटायें बड़ी लम्बी-लम्बी हैं वही कलिकाल में तपस्वी है।

दो०—असुभ बेष भूषन धरें भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहिं॥९८(क)॥

जो अशुभ (अमङ्गलजनक) वेष और वैसे ही भूषण धारण करते हैं, और भक्ष्य, अभक्ष्य (सब वस्तु) खाने वाले हैं, वह अर्थात् हैं, इनका

विचार न करने वाले) सभी कुछ खालेते हैं, वेही योगी और सिद्ध हैं; तथा वेही कलियुग में पूजनीय हैं ।

सो०—जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ ।
मन क्रम वचन लबार तेइ बकता कलिकाल महुं ॥९८(ख)॥

जो अपकारी और चुगल खोर हैं उन्हीं का बड़ा गौरव होता है और वे हो बड़े मान्य माने जाते हैं, और जो मन वचन तथा कार्य से झूठे होते हैं वे ही कलियुग में वक्ता अर्थात् व्याख्यानदाता समझे जाते हैं ॥ ९८॥ (ख)

नारि बिबस नर सकल गोसाईं । नाचहिं नट मर्कट की नाईं ॥
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना । मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना ॥

हे स्वामी सभी मनुष्य स्त्रियों के वश में हैं; और नट (मदारी) के बन्दर के समान स्त्रियों के संकेतों पर नाचते हैं । शूद्र लोग ब्रह्मणों को ज्ञान का उपदेश देते हैं, और जनेऊ धारण कर कुदान (बुरा दान) लेते हैं ॥ १ ॥

सब नर काम लोभ रत क्रोधी । देव बिप्र श्रुति संत बिरोधी ॥
गुन मंदिर सुन्दर पति त्यागी । भजहिं नारि पर पुरुष अभागी ॥

सभी मनुष्य कामी, लोभी तथा क्रोधी और वेद, देवता, ब्राह्मण और सन्तों के विरोधी हैं । अभागिनी स्त्रियाँ गुणों के स्थान सुन्दर पति को छोड़कर, पर पुरुष का सेवन करती हैं ॥ २ ॥

सौभागिनी बिभूषन हीना । बिधवन्ह के सिंगार नवीना ॥
गुर सिष बधिर अंध का लेखा । एक न सुनइ एक नहिं देखा ॥

सुहागिनीं स्त्रियाँ तो आभूषणों से रहित होती हैं, परन्तु विधवाओं के नित्य नवीन श्रृङ्गार होते है । गुरु और शिष्य का तो परस्पर अंधों और वधिरों का सा लेखा हो जाता है । जैसे बहरा तो सुनता नहीं और अंधा कुछ देखता नहीं ॥ २ ॥

हरइ सिष्य धन सोक न हरई । सो गुर घोर नरक महुँ परई ॥
मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं । उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं॥

जो गुरु शिष्य धन हरण करता है पर शोक नहीं हरण करता, वह घोर नरक में पड़ता है । माता और पिता बालकों को वही धर्म सिखलाते हैं जिससे पेट भर जाय ॥ ४ ॥

दो०—ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात ।
कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात ॥९९(क)॥

स्त्री और पुरुष कोई भी ब्रह्मज्ञान के सिवा दूसरी बात ही नहीं करते, परन्तु लोभ के वश होकर वही एक कौड़ी के लिये ब्राह्मण और गुरु का वध कर डालते हैं ॥ ९९ ॥

बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि ।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रबर आंखि देखावहिं डाटि ॥९९(ख)॥

शूद्रलोग ब्राह्मणों के साथ वादविवाद (शास्त्रार्थ) करते हैं और कहते हैं कि क्या हम तुम लोगों से कुछ कम हैं। जो वेद को जाने समझे वही ब्राह्मण होता है, अर्थात् कर्म करने से कोई भी ब्राह्मण बन सकता है, ऐसा कह कर वे उन्हें डाट कर आँखें दिखाते हैं ॥ ९९ ॥

पर त्रिय लंपट कपट सयाने । मोह द्रोह ममता लपटाने ॥
तेइ अभेदबादी ग्यानी नर । देखा मैं चरित्र कलिजुग कर ॥

जो सदैव पराई स्त्रियों से ही रति करने वाले, कपट करने में चतुर और मोह द्रोह और ममता में लिपटे हुए हैं। वे ही मनुष्य अभेद सिद्धान्त "मैं ही ब्रह्म हूँ"। कहने वाले ज्ञानी बनते हैं ॥ १॥

आपु गए अरु तिन्हहूँ घालहिं । जे कहुँ सत मारग प्रतिपालहिं ॥
कल्प कल्प भरि एक एक नरका । परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका ॥

आप तो गये ही परन्तु जो कहीं कोई दूसरा सन्मार्ग का प्रतिपालन करता हो उसको भी वे ले बैठते हैं। वेदों को तर्कों द्वारा जो कलंकित करते हैं, वे लोग कल्प भर एक एक नरक में पड़े रहते हैं ॥ २ ॥

जे बरनाधम तेलि कुम्हारा । स्वपच किरात कोल कलवारा ॥
नारि मुई गृह संपति नासी । मूड़ मुड़ाइ होहिं संन्यासी ॥

जो अधम (नीच) वर्णों के तेली, कुम्हार, चाण्डाल, किरात, कोल, और कलवार आदि हैं, वे अपनी स्त्री के मरने और घर की सम्पत्ति के नष्ट हो जाने पर मूड़ मुंडवाकर सन्यासी हो जाते हैं ॥ ३ ॥

ते बिप्रन्ह सन पांव पुजावहिं । उभय लोक निज हाथ नसावहिं ॥
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी । निराचार सठ बृषली स्वामी ॥

ब्राह्मणों के द्वारा अपने पाँव पुजवा कर अपने हाथों दोनो लोकों का नाश करा लेते हैं। ब्राह्मण लोग, अनपढ़ लालची; कामी, आचार हीन और दुष्ट वृषली पति, अर्थात् व्यभिचारिणी नीच स्त्री के पति बन बैठते है ॥४॥

सूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना ॥
सब नर कल्पित करहिं अचारा। जाइ न बरनि अनीति अपारा ॥

शूद्र लोग जप, तप, और अनेक प्रकार व्रत के करते हैं, तथा ऊँचे आसनपर बैठकर पुराणों का परायण करते हैं सब लोग अपने मन से कल्पना किया हुआ आचार व्यवहार मानते हैं। कलियुग को अथाह अनीति का वर्णन नहीं किया जाता ॥ २ ॥

दो०—भए बरन संकर कलि भिन्नसेतु सब लोग।
करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक बियोग ॥१००(क)

सब लोग वर्ण शंकर हो गये और सब मर्यादाएँ नष्ट होगई पापों को करते हैं और दुःख, भय, रोग, शोक तथा वियोग पाते हैं ॥ १००॥

श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संयत बिरति बिबेक।
ताँति न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक ॥१०० ख)

वे लोग मोह के वश में होकर वैराग्य और विचार से युक्त होकर वेद के अनुकूल भगवान की भक्ति के मार्ग पर न नहीं चलते परन्तु मोह में पड़ कर अनेकों कल्पित करते हैं

छं०—बहु दाम गंवारहिं दात जती। बिषया हरि लीन्ह न रहि बिरती
तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही॥

हे तात! सन्यासी लोग बहुत धन व्यय करके अपने घरों को सजाते हैं वैराग्य उनमें नाम मात्र को नहीं रहा, उनको विषय वासनाओं ने नष्ट कर दिया है बैराग्य उनके हैं ही नहीं। तपस्वी लोग तो धनी बन गये और गृहस्थी दरिद्री कलियुग की कौतुक मुझसे कहे नहीं जाता ॥ १ ॥

कुलवंति निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गती ॥
सुत मानहिं मातु पिता तब लौं। अबलानन दीख नहीं लौं ॥

अच्छे अच्छे कुल वाली सती स्त्रियों को भी (सन्देह के कारण) निकाल देते हैं। दासियों को घरों में ले आते हैं।

माता पिता को पुत्र तभी तक मानता है जब तक स्त्री उसे आँखों से नहीं दीख पड़ती (जब तब तक स्त्री उसे आँखों से नहीं दीख पड़ती) जब तब विवाह नहीं होतीं ॥ २ ॥

ससुरारि पिआरि लगी जब तें। रिपुरूप कुटुंब भए तब तें॥
नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं॥

जब से ससुराल प्यारी लगने लगी तब से परिवारजन सभी शत्रु रूप हो गये। राजा लोग पापपरायण हो गये और उनमें से धर्म जाता रहा। वे प्रजाओं को नित्य दण्ड देकर विडम्बना अपमान करते हैं ॥ ३ ॥

धनवंत कुलीन मलीन अपी। द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी॥
नहिं मान पुरान न बेदहि जो। हरि सेवक संत सही कलि सो॥

धनी आदमी चाहे मलीन (दुराचारी) भी हो वह भी कुलीन (खानदानी) समझा जाता है। ब्राह्मण का चिन्ह केवल यज्ञोपवीत रह गया और नंगा रहने वाला हो तपस्वी समझा जाता है जो वेद-पुराण को नहीं मानता वही हरि का सेवक समझा जाता है ॥ ४ ॥

कबि बृंद उदार दुनी न सुनी। गुन दूषक ब्रात न कोपि गुनी॥
कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै॥

कवियों के भुण्ड से सकल हो गये परन्तु उदार (कवियों को आश्रय देने वाले) दानी सुनाई नहीं पड़ते। गुण में दोष निकालने वाले बहुत सारे हैं परन्तु स्वयं ज्ञानवान कोई भी नहीं है। कलियुग में बार-बार अकाल पड़ते हैं, और अन्न के बिना सभी लोग दुखी होकर मरते हैं ॥ ५ ॥

दो०—सुनु खगेस कलि कपट हठ दंभ द्वेष पाषंड।
मान मोह मारादि मद ब्यापि रहे ब्रह्मंड ॥१०१ (क)

हे पक्षिराज गरुड़ जी ! सुनिये, कलियुग में कपट, हठ, दम्भ, द्वेष, पाखण्ड, अभिमान, मोह और कामादि मद सारे ब्रह्माण्ड भर में छा गये हैं ॥ १०१ ॥ (क)

तामस धर्म करहिं नर जप तप ब्रत मख दान।
देव न बरषहिं धरनीं बए न जामहिं धान ॥१०१ (ख) ॥

इस युग में सब लोग जप, तप, यज्ञ, व्रत, दान आदि जो करते

हैं वह सब तामसी भाव से करने लगे हैं। जिस कारण देवता (इन्द्र देव) जल नहीं बरसाते और बोये हुए धान्य पैदा नहीं होते ॥ १०१ ॥ (ख)

छं०—अवला कच भूषन भूरि छुधा। धन हीन दुखी ममता बहुधा॥
सुख चाहहिं मूढ़ न धर्म रता। मति थोरि कठोरि न कोमलता॥

स्त्रियों के बाल ही भूषण हैं और उनमें भूख बहुत हो गई है; वे धन से हीन रहने के कारण ज्यादा दुखी रहती हैं और बहुत तरह की ममता उनमें बढ़ती जाती है।। वह मूढ़ स्त्रियाँ सुख की कामना तो करती हैं परन्तु धर्म का आचरण नहीं करतीं। बुद्धि एक तो थोड़ी होती है, परन्तु वह भी कठोर होती है और तनिक भी कोमलता नहीं होती।

नर पीड़ित रोग न भोग कहीं। अभिमान विरोध अकारनहीं॥
लघु जीवन संबतु पंच दसा। कलपांत न नस गुमानु असा॥

सभी मनुष्य रोग से पीड़ित रहते हैं, और सुख तो नाम मात्र को भी नहीं होता। बिना कारण सभी लोगों में अभिमान और विरोध होते हैं, मनुष्य का जीवन तो १५ बीस वर्ष का ही होता है। और अभिमान उनमें ऐसा होता है मानो कल्पान्त तक जीने की आशा रखते हों॥ २॥

कलिकाल बिहाल किए मनुजा। नहिं मानत क्वौ अनुजा तनुजा॥
नहिं तोष बिचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भए मगता॥

कलियुग ने मनुष्यों को बेहाल (व्याकुल) कर दिया है। कोई किसी को बहिन अथवा लड़की नहीं मानता। न सन्तोष है और न विचार है और नहीं शीतलता है। जाति कुजाति सभी में भीख मांगने वाले मंगते हो गये हैं॥ ३॥

इरिषा परुषाच्छर लोलुपता। भरि पूरि रही समता बिगता॥
सब लोग बियोग बिसोक हए। बरनाश्रम धर्म अचार गए॥

ईर्ष्या कठोर वचन और लालच पूरी तरह भर रहे हैं। समता की भावना (मित्रता) नष्ट हो गई है। सभी लोग वियोग और शोक से व्याकुल हो रहे हैं और वर्णाश्रम व्यवस्था के सभी नियम नलियामेट हो गये हैं॥ ४॥

दम दान दया नहिं जानपनी। जड़ता परबंचनताति घनी॥
तनु पोषक नारि नरा सिगरे। परनिन्दक जे जग में बगरे॥

कलियुग में न तो योग और यज्ञ हैं और न ज्ञान ही है, श्रीराम जी का गुणगान करना ही केवल एक आश्रय है ! अत अन्य सारे भरोसे त्याग कर जो श्री रामचन्द्र जी का भजन करता है और प्रेम पूर्वक उनके अनेक गुणों के समूहों को गाता है ॥ ३ ॥

सोइ भव तर कछु संसय नाहीं । नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं ॥
कलि कर एक पुनीत प्रतापा । मानस पुन्य होहिं नहिं पापा ॥

वही संसार सगार से पार हो जाता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता । नाम का प्रताप तो कलियुग में प्रत्यक्ष ही है कलियुग का एक और पवित्र प्रताप यह है कि इसयुग में मानसिक पुण्य तो हो जाता है, परन्तु पाप नहीं होता ॥ ४ ॥

दो०—कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर विस्वास ।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास ॥१०३ (क) ॥

मनुष्य यदि विश्वास करले तो कलियुग के समान श्रेष्ठ कोई दूसरा युग नहीं है, क्योंकि इस युग में श्री रामचन्द्र जी के पवित्र गुणों का गान कर के बिना ही प्रयास के मनुष्य संसारसमुद्र से तर जाते हैं ॥१०३॥ (क)

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान ।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान ॥१०३(ख)॥

धर्म के चार चरण (सत्य, शौच, तप, दान) प्रत्यक्ष हैं, जिनमें से कलियुग में एक दान ही मुख्य है । जिस किसी प्रकार से भी दिया हुआ दान कल्याण कारक होता है ॥१०३॥ (ख)

नित जुग धर्म होहिं सब केरे । हृदय राम माया के प्रेरे ॥
सुद्ध सत्व समता बिग्याना । कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना ॥

श्री रामचन्द्र जी की माया से प्रेरणा पाकर सभी लोगों के मन में सभी युगों के धर्म नित्य होते रहते हैं । शुद्ध, सत्वगुण, समता, विज्ञान और मनका प्रसन्न होना, यह सत्-युग का प्रभाव है ॥ १ ॥

सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा । सब विधि सुख त्रेता कर धर्मा ॥
बहु रज स्वल्प सत्व कछु तामस । द्वापर धर्म हरप भय मानस ॥

सतोगुण की अधिक मात्रा तथा रजोगुण की न्यूनता, कर्म में प्रेम,

तथा सब प्रकार से सुख यह त्रेतायुग का धर्म है। रजोगुण अधिक तथा सत्त्वगुण बहुत ही थोड़ा साथ ही कुछ अंश तमोगुण का भी तथा मन में हर्ष तथा भय होना यह द्वापर का धर्म है ॥२॥

तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलि प्रभाव विरोध चहुँ ओरा॥
बुध जुग धर्म जानि मन माहीं। तजि अधर्म रति धर्म कराहीं॥

तमोगुण अधिक हो, रजोगुण थोड़ा हो, चारों ओर वेद विरोध हो यह कलियुग का प्रभाव है। पण्डित लोग युगों के धर्म को मनमें जान कर अधर्म को छोड़ कर धर्म में प्रीति करते हैं ॥३॥

काल धर्म नहिं व्यापहि ताही। रघुपति चरन प्रीति अति जाही॥
नट कृत बिकट कपट खगराया। नट सेवकहि न व्यापइ माया॥

जिनका श्री रामचन्द्र जी के चरणों में अधिक प्रेम है, उनको काल धर्म नहीं व्यापते। हे गरुड़ जी ! जिस प्रकार नट (जादूगर) का किया हुआ कपट चरित्र देखने वालों के लिये बड़ा विकट होता है, परन्तु नट के सेवक को उसकी माया नहीं मोहती ॥४॥

दो०—हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं।
भजिअ राम तजि काम सब अस बिचारि मनमाहिं ॥१०४(क)॥

श्री हरि की माया के किये हुए दोष और गुण ईश्वर का भजन किये बिना नष्ट नहीं होते। अपने मनमें सब प्रकार विचार कर सभी मनोरथों का परित्याग करके कामनारहित भाव से श्री रामचन्द्र जी का भजन करना चाहिये ॥१०४॥ (क)

तेहिं कलिकाल बरष बहु बसेउं अवध बिहगेस।
परेउ दुकाल बिपति बस तब मैं गयउँ बिदेस ॥१०४(ख)॥

हे पक्षिराज गरुड़ जी ! मैं उस कलिकाल में बहुत वर्ष तक अयोध्या में ही रहा। फिर वहाँ पर अकाल पड़ गया और विपत्तियों के कारण मैं वहाँ से विदेश (अन्य देश) को चला गया ॥१०४॥

गयउँ उजेनी सुनु उरगारी। दीन मलीन दरिद्र दुखारी॥
गएँ काल कछु संपति पाई। तहँ पुनि करउँ संभु सेवकाई॥

हे सर्पों के शत्रु गरुड़ जी ! सुनते रहें, मैं वहाँ से दीन, मलिन, दरिद्री

और दुःखी होकर उज्जैन को गया। वहाँ पर कुछ समय बीतने पर मुझे सम्पत्ति मिली और मैं फिर भगवान् शङ्कर जी की आराधना करने लगा ॥१॥

विप्र एक वैदिक सिव पूजा। करइ सदा तेहि काजु न दूजा ॥
परम साधु परमारथ बिंदक। संभु उपासक नहिं हरि निंदक ॥

उज्जैनी में एक ब्राह्मण था, वह सदा वेदविधिपूर्वक शिव जी की पूजा करता रहता था इस कार्य को छोड़ कर अन्य उसे कार्य ही नहीं था, वह परम साधु और परमार्थ को जानने वाला था। शिव जी का उपासक था और भगवान् विष्णु निन्दक नहीं था ॥२॥

तेहि सेवउँ मैं कपट समेता। द्विज दयाल अति नीति निकेता ॥
बाहिर नम्र देखि मोहि साईं। बिप्र पढ़ाव पुत्र की नाईं ॥

कपट से युक्त होकर मैं उस ब्राह्मण की सेवा करता था, वह ब्राह्मण बड़ा दयालु और अत्यन्त नीति में निपुण था। हे स्वामी! वह ब्राह्मण मुझे बाहिर से नम्र देख कर अपने पुत्र के समान पढ़ाया करता था ॥३॥

संभु मंत्र मोहि द्विजबर दीन्हा। सुभ उपदेस बिबिधि बिधि कीन्हा ॥
जपउँ मंत्र सिव मंदिर जाई। हृदय दंभ अहमिति अधिकाई ॥

उस प्रतिष्ठित ब्राह्मण ने मुझे शिवमन्त्र का उपदेश दिया था और भी अनेक प्रकार का उपदेश दिया। मैं शिव जी के मन्दिर में जाकर मन्त्र तो जपता था परन्तु मेरे हृदय में दम्भ और अहंकार अधिक हो गया था ॥४॥

दो०— मैं खल मल संकुल मति नीच जाति बस मोह।
हरिजन द्विज देखें जरउँ करउँ बिस्नु कर द्रोह ॥१०५(क)॥

मैं अकुलीन, नीच जाति का, और पापमयी मलिन बुद्धि वाला था, इस कारण मोह के अधीन हो कर हरि के भक्तों और ब्राह्मणों को देख कर जलता था और विष्णु भगवान् से द्रोह किया करता था ॥१०५॥ (क)

सो०—गुरु नित मोहि प्रबोध दुखित देखि आचरन मम।
मोहि उपजइ अति क्रोध दंभिहि नीति कि भावई ॥१०५(ख)॥

गुरु जी मुझे नित्य समझाते थे, और मेरे बुरे कार्य व्यवहार को देख कर दुःखी होते थे। परन्तु मुझे (गुरु पर भी) बहुत क्रोध आता था, क्योंकि भला दम्भी मनुष्य को भी कभी नीति अच्छी लगती है? ॥१०५॥ (ख)

एक बार गुर लीन्ह बोलाई। मोहि नीति बहु भांति सिखाई॥
सिव सेवा कर फल सुत सोई। अविरल भगति राम पद होई॥

एक बार मुझे गुरु जी ने अपने पास बुला लिया और बहुत प्रकार से नीति सिखलाई, कि हे पुत्र! शिव जी की सेवा का फल यही है कि श्री रामचन्द्र जी के चरणों में पूर्ण भक्ति हो ॥१॥

रामहि भजहि तात सिव धाता। नर पाँवर कै केतिक बाता॥
जासु चरन अज सिव अनुरागी। तासु द्रोहँ सुख चहसि अभागी॥

हे तात! शिव जी और ब्रह्मा जी भी रामचन्द्र जी का ही भजन गाते हैं, नीच मनुष्य की तो बात ही क्या कहनी। जिन के चरणों के ब्रह्मा जी भी और शिव जी भी प्रेमी हैं, तू अभागा हो कर उनसे द्रोह करके सुख चाहता है ॥२॥

हर कहुँ हरि सेवक गुरु कहेऊ। सुनि खगनाथ हृदय मम दहेऊ॥
अधम जाति मैं विद्या पाएँ। भयउँ जथा अहि दूध पिआएँ॥

हे पक्षिराज! जब गुरु जी ने शङ्कर जी को विष्णु का सेवक कहा तो यह सुन कर मेरा हृदय आगबबूला हो उठा। मैं नीच जाति वाला विद्या को पाकर ऐसा हो गया जैसे दूध पिलाने पर साँप हो जाता है ॥३॥

मानी कुटिल कुभाग्य कुजाती। गुर कर द्रोह करउँ दिनु राती॥
अति दयाल गुर स्वल्प न क्रोधा। पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा॥

अभिमानी, कुटिल, दुष्ट भाग्य वाला और कुमति मैं दिन रात गुरु से द्रोह करता। गुरु जी बहुत ही दयालु स्वभाव के थे और जरा भी क्रोध नहीं करते थे और बारम्बार मुझे उत्तम ज्ञान सिखाते थे ॥४॥

जेहि ते नीच बड़ाई पावा। सो प्रथमहिं हति ताहि नसावा॥
धूम अनल संभव सुनु भाई। तेहि बुझाव घन पदवी पाई॥

नीच मनुष्य जिस के द्वारा बड़ाई पाता है, वह सबसे पहिले उसी को मार कर उसी का नाश करता है। हे भाई! सुनिये, आग से पैदा हुआ धुँआ बादल की पदवी प्राप्त कर उसी अग्नि को बुझा देता है ॥५॥

रज मग परी निरादर रहई। सब कर पद प्रहार नित सहई॥
मरुत उड़ाव प्रथम तेहि भरई। पुनि नृप नयन किरीटन्हि परई॥

धूलि रास्ते में निरादृत ही पड़ी रहती है और सदा सब के पावों की ठोकर को सहती है। पर जब वायु उसे उड़ाता है तो सबसे पहिले वह वायु को ही भर देती है, और फिर राजाओं की आँखों और मुकुटों पर पड़ती है।।६।।

सुनु खगपति अस समुझि प्रसंगा। बुध नहिं करहिं अधम कर संगा॥
कवि कोविद गावहिं असि नीती। खल सन कलह न भल नहिं प्रीती॥

हे पच्छिराज ! सुनिये, इस बात को भली भाँति विचार कर बुद्धिमान् लोग नीच की सङ्गति नहीं करते। कवि और पण्डित लोग ऐसी नीति कहते हैं कि न दुष्ट से लड़ाई करना ही अच्छा है और न प्रेम करना ही।।७।।

उदासीन नित रहिअ गोसाईं। खल परि हरिअ स्वान की नाईं॥
मैं खल हृदय कपट कुटिलाई। गुरु हित कहइ न मोहि सहाई॥

हे गोसाईं ! दुष्ट से तो हमेशा उदासीन (दूर) ही रहना चाहिये, और कुत्ते की तरह दुष्ट को दूर से ही छोड़ देना चाहिये। मैं बड़ा दुष्ट था, मेरे हृदय में बड़ा कपट और कुटिलता भरी थी। गुरु जी यदि मेरे हित की बात भी कहते थे, तो वह भी मुझे अच्छी न लगती थी।।८।।

दो०—एक बार हर मन्दिर जपत रहेउँ सिव नाम।
गुर आयउ अभिमान तें उठि नहिं कीन्ह प्रनाम॥१०६(क)॥

एक बार मैं महादेव जी के मन्दिर में शिव जी का नाम जप रहा था, उसी समय गुरु जी वहाँ आगये, परन्तु अभिमान के वश हो कर मैंने उनको उठ कर प्रणाम तक नहीं किया।।१०६।। (क)

सो दयाल नहिं कहेउ कछु उर न रोष लवलेस।
अति अघ गुर अपमानता सहि नहिं सके महेस॥१०६(ख)॥

गुरु जी दयालु तो थे ही; (मुझे इस प्रकार उनका सन्मान न करने पर भी) उन्हों ने मुझे कुछ नहीं कहा और उनके हृदय में तनिक भी क्रोध नहीं हुआ। परन्तु गुरु जी के अपमान करने का महापाप महादेव जी सहन नहीं कर सके।।१०६।। (ख)

मंदिर माझ भई नभबानी। रे हतभाग्य अग्य अभिमानी॥
जद्यपि तव गुर कें नहिं क्रोधा। अति कृपाल चित सम्यक बोधा॥

उसी समय मन्दिर में आकाशवाणी हुई कि अरे हतभाग्य ! मूर्ख ! अभिमानी ! यद्यपि तुम्हारे गुरु को क्रोध नहीं है, और वे अत्यन्त दयालु मन के हैं, और उन्हें अच्छी तरह सब प्रकार का ज्ञान भी है ॥१॥

तदपि साप सठ देयहु तोही । नीति विरोध सोहाइ न मोही ॥
जौं नहिं दण्ड करौं खल तोरा । भ्रष्ट होइ श्रुतिमारग मोरा ॥

तो भी हे मूर्ख ! तुम को मैं शाप देतादूँ, क्योंकि नीति के विरुद्ध व्यवहार मुझे अच्छा नहीं लगता । अरे दुष्ट ! इस कारण मैं यदि तुझे दण्ड न दूँ तो मेरी वेदमर्यादा ही भ्रष्ट हो जाय ॥२॥

जे सठ गुर सन इरिषा करहीं । रौरव नरक कोटि जुग परहीं ॥
त्रिजग जोनि पुनि धरहिं सरीरा । अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा ॥

जो दुष्ट गुरु से ईर्ष्या करते हैं, वे करोड़ों युगों तक रौरव नरक में पड़े रहते हैं । फिर तिर्यक् पक्षी आदि योनियों में जन्म लेकर दस हजार जन्म तक दुःख पाते हैं ॥३॥

बैठि रहेसि अजगर इव पापी । सर्प होहि खल मल मति व्यापी ॥
महा बिटप कोटर महुँ जाई । रहु अधमाधम अधगति पाई ॥

अरे पापी ! तू गुरु जी के आने पर भी अजगर की भाँति बैठा रहा । इस से तू साँप होजा । हे दुष्ट ! तेरी बुद्धि में पाप व्याप्त हो गया है अरे अधम से भी अधम ! इस अधोगति को पाकर किसी बड़े वृक्ष के खोकले में जाकर निवास कर ॥४॥

दो०—हाहाकार कीन्ह गुर दारुन सुनि सिव साप ।
कंपित मोहि बिलोकि अति उर उपजा परिताप ॥१०७(क)॥

शिव जी के इस भयङ्कर शाप को सुन कर गुरु जी ने बड़ा हा हा कार किया । मुझे काँपता हुआ देख कर उनके हृदय में बहुत दुःख हुआ ॥१०७(क)॥

करि दण्डवत सप्रेम द्विज सिव सम्मुख कर जोरि ।
विनय करत गद्‌गद् स्वर समुझि घोर गति मोरि ॥१०७(ख)॥

प्रेम सहित दण्डवत्-प्रणाम कर के ब्राह्मण गुरु जी शिव जी के सामने हाथ जोड़ कर मेरी भयङ्कर गति का विचार कर गद्‌गद् वाणी से बोले ॥१॥

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं। विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं॥
अजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं। चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं॥

हे मोक्षस्वरूप! विभु, सर्वव्यापक, ब्रह्म और वेद-स्वरूप, सबके के स्वामी तथा परम ऐश्वर्यवान् शिवजी, मैं आप को नमस्कार करता हूँ। आप निज रूप स्थित, सभी गुणों से रहित, भेद रहित, इच्छा रहित, चैतन्य आकाश-रूप दिगम्बर हैं। मै आपको नमस्कार करता हूँ ॥१॥

निराकारमोंकारमूलं तुरीयं। गिराग्यानगोतीतमीशं गिरीशं॥
करालं महाकालकालं कृपालं। गुणागार संसारपारं नतोऽहं॥

आकार (स्वरूप) रहित, ओङ्कार के मूल, तुरीयावस्था में समाधि लगाने वाले वाणी, ज्ञान और इन्द्रियों से परे, कैलाशपति विकराल (भयङ्कर रूप वाले) महाकाल के भी काल, कृपालु, गुणों के आगार, संसार से परे आपको मैं नमस्कार करता हूँ।

तुषाराद्रिसंकाश गौरं गभीरं। मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरं॥
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा। लसद्भालबालेन्दु कंठे भुजंगा॥

जो हिमालय पर्वत के समान गौर वर्ण वाले तथा गम्भीर हैं। जिनके शरीर में करोड़ों कामदेवों की कांति और शोभा विराज मान है। सिर पर जिनके सुन्दर नदी गंगा जी विद्यमान है, जिनके मस्तक पर बाल चन्द्रमा और गले में साँप शोभित हैं।

चलत्कुण्डलं शुभ्रनेत्रं विशालं। प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं॥
मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालं। प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि॥

जिनके कानों में कुण्डल हिल-डुल रहे हैं, जो सुन्दर भृकुटी और विशाल नेत्र वाले हैं, जो नीलकण्ठ दयालु, सिंह के चर्म को धारण करने वाले और मुण्ड माला पहिने हैं, उन सब के प्यारे, सब के मालिक शङ्कर जी को मैं भजता हूँ।

प्रचंडं प्रकृष्ठं प्रगल्भं परेशं। अखंडं अजं भानुकोटिप्रकाशं॥
त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिं। भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यं॥

प्रचण्ड (तेज रूप) श्रेष्ठ, प्रगल्भ(दृढ़), परमेश्वर, अखंड, अजन्म, करोड़ों सूर्यों के सामान प्रकाश वाले, तीनों प्रकार के शूलों को निर्मूल करने

वाले, हाथ में त्रिशूल धारण करने वाले, भाव से प्राप्त होने वाले पार्वती जी के पति, शङ्कर जी को मैं भजता हूँ।

कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी। सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी॥
चिदानंद संदोह मोहापहारी। प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी॥

कलाओं से परे, कल्याणकारक, कल्प का अन्त (नाश) करने वाले सदैव साधुजनों को आनन्द देने वाले, त्रिपुरासुर के शत्रु, चैतन्य स्वरूप, आनन्द के समूह, मोह को हरने वाले, कामदेव के शत्रु, हे प्रभो! प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये।

न यावद् उमानाथ पादारविन्दं। भजंतीह लोके परे वा नराणां॥
न तावत्सुखं शान्ति सन्तापनाशं। प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं॥

जब तक पार्वती जी के पति के चरण कमलों को मनुष्य नहीं भजते, तब तक न तो इस लोक में और नही परलोक मे सुख शांति मिलती है और न सन्ताप का नाश होता है। इसलिये सब प्राणियों के हृदयों में निवास करने वाले प्रभो! आप प्रसन्न हों।

न जानामि योगं जपं नैव पूजां। नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं॥
जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानं। प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो॥

न तो मैं योग ही जानता हूँ, न जप और न ही पूजा। हे शम्भो! मैं सदैव आपको नमस्कार करता हूँ। हे ईश्वर! शम्भो, हे प्रभो? बुढ़ापा और जन्म मृत्यु अपार दुःखों से संतप्त हुए तथा आपतियों में पड़े हुए की मेरी रक्षा कीजिये।

श्लोक—रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति॥ ६॥

यह रुद्राष्टक नाम वाला स्तोत्र ब्राह्मण ने महादेव जी को प्रसन्न करने के लिये कहा है। जो मनुष्य इसको भक्ति पूर्वक पढ़ते हैं उन पर शम्भु प्रसन्न होते हैं।

दो०—सुनि विनती सर्बग्य सिव देखि बिप्र अनुरागु।
पुनि मंदिर नभबानि भइ द्विजवर वर मांगु॥ १०८(क)॥

सर्वज्ञ शिवजी ने जब यह विनती सुनी और ब्राह्मण के अनुराग को

देखा, तब मन्दिर में फिर आकाश वाणी हुई कि हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! वरदान माँग लो।

जौं प्रसन्न प्रभु मो पर नाथ दीन पर नेहु।
निज पद भगति देइ प्रभु पुनि दूसर वर देहु॥ १०८(ख)॥

तब ब्राह्मण ने कहा—हे प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो हे नाथ! यदि मुझ दीन पर आपका प्रेम है, तो पहिले अपने चरणों की भक्ति देकर फिर दूसरा वर दीजिये—

तव माया वस जीव जड़ संतत फिरइ भुलान।
तेहि पर क्रोध न करिअ प्रभु कृपासिंधु भगवान॥ १०८(ग)॥

आपकी माया के वश में पड़ा हुआ यह जड़ जीव सदा भूला फिरता है, हे कृपा के समुद्र भगवान्! आप इस पर क्रोध न करें।

संकर दीनदयाल अब एहि पर होहु कृपाल।
साप अनुग्रह होइ जेहिं नाथ थोरहीं काल॥ १०८(घ)॥

हे दीन रक्षक भगवान्शङ्कर? अब आप इस पर कृपा करने वाले होवें, जिस से हे नाथ! आप इस पर अनुग्रह करें जिससे यह शीघ्र ही शाप से मुक्त हो जाय।

एहि कर होइ परम कल्याना। सोइ करहु अब कृपानिधाना॥
बिप्र गिरा सुनि परहित सानी। एवमस्तु इति भइ नभबानी॥

हे कृपानिधान! अब आप वही करें जिससे इसका परम कल्याण हो जाय। पराये हित से सनी हुई ब्राह्मण की वाणी को सुन कर फिर आकाश वाणी हुई—एवमस्तु, अर्थात् ऐसा ही हो।

जदपि कीन्ह एहिं दारुन पापा। मैं पुनि दीन्हि कोप करि सापा॥
तदपि तुम्हारि साधुता देखी। करिहउँ एहि पर कृपा बिसेषी॥

यद्यपि इसने बड़ा भयङ्कार पाप किया है, और मैंने भी क्रोध करके ही इसे शाप दिया है। फिर भी तुम्हारी सज्जनता (निष्कपटता) देख कर मैं इस पर विशेष कृपा करूँगा।

छमासील जे पर उपकारी। ते द्विज मोहि प्रिय जथा खरारी॥
मोर श्राप द्विज व्यर्थ न जाइहि। जन्म सहस्र अवसि यह पाइहि॥

चरम देह द्विज कै मैं पाई। सुर दुर्लभ पुरान श्रुति गाई॥
खेलउँ तहूँ बालकन्ह लीला। करउँ सकल रघुनायक लीला॥

अन्तिम शरीर मैंने ब्राह्मण का प्राप्त किया, जिस रूप को पुराण और वेद देवताओं के लिये भी दुर्लभ बताते हैं। मैं उस रूप में भी बालकों के साथ मिल कर खेलत था और सब रामचन्द्र जी की लीलायें करता था।

प्रौढ़ भएँ मोहि पिता पढ़ावा। समझउँ सुनउँ गुनउँ नहिं भावा॥
मन ते सकल बासना भागी। केवल राम चरन लय लागी॥

मेरे बड़े होने पर पिता जी ने मुझे पढ़ाया, मैं सब कुछ समझता, सुनता और विचारता था, फिर भी मुझे पढ़ना अच्छा नहीं लगता था। मेरे मन से सभी वासनायें नष्ट हो गईं। केवल रामचन्द्र जी के चरणों में मेरी प्रीति लग गई।

कहु खगेस अस कवन अभागी। खरी सेव सुरधेनुहि त्यागी॥
प्रेम मगन मोहि कछु न सोहाई। हारेउ पिता पढ़ाइ पढ़ाई॥

हे गरुड़ जी ? कहिये, कि ऐसा अभाग कौन होगा, जो कामधेनु को छोड़ कर गधी की सेवा करे। राम के प्रेम में मग्न रहने के कारण मुझे कुछ भी अच्छा न लगता था, और पिता जी भी मुझे पढ़ा-पढ़ा कर हार गये।

भए कालबस जब पितु माता। मैं बन गयउँ भजन जनत्राता॥
जहँ जहँ बिपिन मुनीस्वर पावउँ। आश्रम जाइ जाइ सिरु नावउँ॥

जब मेरे माता-पिता काल के वश में हो गये (मर गये) तब मैं भक्तों के रखने वाले श्री रामचन्द्र जी का भजन करने के लिये जङ्गल में चला गया, और जहाँ-जहाँ मुनि जनों के आश्रम देखता, वहाँ-वहाँ जाकर उनको शिर नवाता था।

बूझउँ तिन्हहि राम गुन गाहा। कहहिं सुनउँ हरषित खगनाहा॥
सुनत फिरउँ हरि गुन अनुवादा। अव्याहत गति संभु प्रसादा॥

हे गरुड़ जी ! उन ऋषियों से मैं श्रीराम जी की गुण गाथा सुना करता था, वे कहते और मैं हर्षित होकर सुनाता था, इस प्रकार मैं सदैव ईश्वर के गुणानुवाद सुनता फिरता था, शिवजी की असीम कृपा से मेरी सर्वत्र स्वच्छन्द गति थी।

छूटी त्रिबिधि ईषना गाढ़ी। एक लालसा उर अति बाढ़ी॥
राम चरन बारिज जब देखौं। तब निज जन्म सफल करि लेखौं॥

मेरी तीनों तरह की, (पुत्र, धन और मान की) इच्छा तो नष्ट हो गई परन्तु मन में एक लालसा बहुत बढ़ी, कि जब श्री रामचन्द्र जी के चरण कमलों के दर्शन करूँ, तब अपना जन्म सफल समझूँ।

जेहि पूँछउँ सोइ मुनि अस कहई। ईश्वर सर्व भूतमय अहई॥
निर्गुण मत नहिं मोहि सोहाई। सगुन ब्रह्म रति उर अधिकाई॥

जिन मुनियों से मैं पूछता था वेही ऐसा कहते थे कि ईश्वर सर्व भूतमय है, परन्तु मुझे यह निर्गुण मत अच्छा नहीं लगता था, मेरे हृदय में ब्रह्म की प्रीति अधिकाधिक बढ़ती जा रही थी।

दो०—गुर के बचन सुरति करि राम चरन मनु लाग।
रघुपति जस गावत फिरउँ छन छन नव अनुराग॥११०(क)॥

गुरु जी के वचनों को स्मरण करके मेरा मन श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में लग गया, मैं रघुनाथ जी का यश गाता फिरता था, और क्षण-क्षण में नया प्रेम प्राप्त करता था।

मेरु सिखर बट छायाँ मुनि लोमस आसीन।
देखि चरन सिरु नायउँ बचन कहेउँ अति दीन॥११०(ख)॥

सुमेरु पर्वत की चोटी पर वटवृक्ष की छाया में श्री लोमश मुनि जी बैठे देख कर मैंने उनके चरणों में सिर नवाया, और बहुत दीन वचन कहे।

सुनि मम बचन बिनीत मृदु मुनि कृपाल खगराज।
मोहि सादर पूँछत भए द्विज आयहु केहि काज॥११०(ग)॥

हे पक्षि राज गरुड़ जी! मेरे विनीत और कोमल वचनों को सुन कर कृपालु मुनि मुझे सादर पूछने लगे, कि हे ब्राह्मण! आप किस कार्य के लिये यहाँ आये हो।

तब मैं कहा कृपानिधि तुम्ह सर्बग्य सुजान।
सगुन ब्रह्म अवराधन मोहि कहहु भगवान॥११०(घ)॥

तब मैंने कहा—हे कृपानिधान! आप सर्वज्ञ हैं और चतुर हैं। हे भगवान! आप मुझे सगुण ब्रह्म की अराधना बताइये।

तब मुनीस रघुपति गुन गाथा। कहे कछुक सादर खगनाथा॥
ब्रह्मग्यान रत मुनि बिग्यानी। मोहिं परम अधिकारी जानी॥
लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा॥

हे गरुड़ जी! तब मुनीश्वर लोमश ने रघुनाथ जी के गुणों की कुछ कथा में आदर पूर्वक कही, फिर वे ब्रह्म ज्ञान में लीन विज्ञानी मुझे परम अधिकारी जान कर—ब्रह्म का उपदेश करने लगे कि वे अजन्मा हैं, अद्वैत हैं। निर्गुण हैं और हृदय के स्वामी हैं।

अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभव गम्य अखंड अनूपा॥
मन गोतीत अमल अविनासी। निर्बिकार निरवधि सुख रासी॥

वे अकल (अखण्ड) अनीह (सब प्रकार की इच्छाओं से रहित) नाम रहित, रूप रहित, अनुभव से जाने-जाने योग्य अखंड और अनुपम हैं। वह मन और इन्द्रियों से भी परे, निर्मल, नष्ट न होने वाले, विकार रहित, अवधि रहित और सुख की राशि हैं।

सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा। वारि वीचि इव गावहिं वेदा॥
विविधि भाँति मोहि मुनि समुझावा। निर्गुन मत मम हृदमँ न आवा॥

वेद ऐसा गाते हैं कि वही तू है, जल और जल की लहर की भाँति उसमें और तुम्हारे में कोई भेद नहीं है। मुझे मुनि बहुत प्रकार से समझाने लगे, परन्तु निर्गुण मत मेरे हृदय में नहीं समाया।

पुनि मैं कहेउँ नाइ पद सीसा। सगुन उपासन कहहु मुनीसा॥
राम भगति जल मम मन मीना। किमि बिलगाइ मुनीस प्रबीना॥

तब मैंने फिर मुनि के चरणों में सिर झुकाकर कहा—कि हे मुनीश्वर! मुझे सगुण ब्रह्म की उपासना कहिये। मेरा मन रामचन्द्र भक्ति रूपी जल में मछली की तरह हो रहा है। हे प्रवीण मुनिराज!

सोइ उपदेस कहहु करि दाया। निज नयनन्हि देखौं रघुराया॥
भरि लोचन बिलोकि अवधेसा। तब सुनिहउँ निर्गुन उपदेसा॥

ऐसी अवस्था में वह उससे बिलग कैसे हो सकता है, आप दया करके मुझे वही उपदेश दीजिये, जिससे मैं रघुनाथजी को अपनी आँखों से देख सकूँ।

भरि लोचन बिलोकि अवधेसा। तब सुनिहउँ निर्गुन उपदेसा॥
मुनि पुनि कहि हरिकथा अनूपा। खंडि सगुन मत अगुन निरूपा॥

पहिले आँखे भर कर अयोध्यापति श्री रामचन्द्र जी को देखूँगा, तब फिर निर्गुण ब्रह्म के उपदेश को सुनूँगा। मुनि ने फिर उपमा रहित हरि जी की कथा कह कर सगुण मत का खण्डन करके निर्गुण मत का निरूपण किया।

तब मैं निर्गुन मत कर दूरी। सगुन निरूपउँ करि हठ भूरी॥
उत्तर प्रतिउत्तर मैं कीन्हा। मुनि तन भए क्रोध के चीन्हा॥

तब मैं निर्गुण मत का खण्डन कर बहुत हठ करके सगुण का निरूपण करने लगा। मैंने जो यह उत्तर प्रत्युत्तर (वाद विवाद) किया इससे मुनि के शरीर में क्रोध के चिन्ह प्रकट होने लगे।

सुनु प्रभु बहुत अवग्या किएँ। उपज क्रोध ग्यानिन्ह के हिएँ॥
अति संघरषन जौं कर कोई। अनल प्रगट चंदन ते होई॥

हे प्रभो! आप सुनें, बहुत अपमान करने पर ज्ञानी के भी हृदय में क्रोध उत्पन्न हो जाता है। यदि कोई चन्दन की लकडी को बहुत अधिक घिसे तो उससे भी अग्नि प्रकट हो जाती है।

दो० बारंबार सकोप मुनि करइ निरूपन ग्यान।
मैं अपने मन बैठ तब करउँ बिबिधि अनुमान॥१११(क)॥

मुनि बारम्बार क्रोध युक्त होकर ज्ञान का निरूपण करने लगे, तब मैं बैठा-बैठा अपने मन में विविध प्रकार के विचार करने लगा :

क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु द्वैत कि बिनु अग्यान।
मायाबस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान॥१११(ख)॥

कि बिना द्वैत बुद्धि से क्रोध कैसे आ सकता है और बिना अज्ञान के क्या द्वैत बुद्धि हो सकती है? माया के वश में रहने वाला भेदयुक्त मूर्ख जीव क्या ईश्वर के समान हो सकता है।—

कबहुँ कि दुख सब कर हित ताकें। तेहि कि दरिद्र परस मनि जाकें॥
परद्रोही की होहिं निसंका। कामी पुनि कि रहहिं अकलंका॥

सब का हित चाहने वाले को क्या कभी दुःख हो सकता है? जिसके पास पारस मणि है, उसे क्या दरिद्रता सता सकती है? दूसरे से द्रोह

इस प्रकार मैं असंख्य युक्तियाँ अपने मन में विचारता था, और आदर सहित मुनि का उपदेश नहीं सुनता था। जब बारम्बार मैंने सगुण का पक्ष पुष्ट किया तब मुनि क्रोध युक्त हो करके यह वचन बोले—

मूढ़ परम सिख देउँ न मानसि। उत्तर प्रतिउत्तर बहु आनसि॥
सत्य बचन बिस्वास न करही। बायस इव सबही ते डरही॥

रे मूढ़! मैं तुम्हें परमोत्तम शिक्षा देता हूँ तो भी तू उसको नहीं मानता और बहुत से उत्तर प्रत्युत्तर लाकर रख रहा है। मेरे सत्य वचनों पर भी तू विश्वास नहीं करता है, कौए की भांति सबसे डरता भी है।

सठ स्वपच्छ तव हृदयँ बिसाला। सपदि होहि पच्छी चण्डाला॥
लीन्ह श्राप मैं सीस चढ़ाई। नहिं कछु भय न दीनता आई॥

अरे दुष्ट! तेरे हृदय में अपने पक्ष का बड़ा अभिमान है, इस लिये तू शीघ्र चाण्डाल पक्षी (कौआ) हो जा। मैंने चुपचाप इस शाप को सिर चढ़ा लिया (स्वीकार कर लिया) जिससे मुझे न कुछ भय ही हुआ और न दीनता ही आई।

दो०—तुरत भयउँ मैं काग तब पुनि मुनि पद सिरु नाइ।
सुमिरि राम रघुबंस मनि हरषित चलेउँ उड़ाइ॥ ११२ (क)॥

मैं फिर तत्कांल कौआ हो गया, फिर मुनि के चरणों मे सिर नवा कर और रघुकुलमणि श्रीराम का स्मरण कर हर्षित होकर वहाँ से उड़ चला।

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥ ११२ (ख)॥

(शिवजी महाराज कहते हैं—) हे पार्वती! जो श्रीरामजी के चरणों में अनुरक्त हैं और काम, मद, क्रोध से रहित हैं, वे संसार को अपने प्रभु से भरा हुआ देखते हैं. फिर भला वे किससे वैर करें?

सुनु खगेस नहिं कछु रिषि दूषन। उर प्रेरक रघुबंस बिभूषन॥
कृपासिंधु मुनि मति करि भोरी। लीन्ही प्रेम परिच्छा मोरी॥

हे गरुड़ जी! सुनिये, इसमें ऋषि का कुछ भी दोष नहीं था, रघुवंश के विभूषण श्रीरामचन्द्र जी ही सब के हृदय में प्रेरणा करने वाले हैं। कृपासिन्धु श्रीराम जी ने मुनि की बुद्धि को भोला बनाकर मेरी प्रेम परीक्षा की।

मन बच क्रम मोहि निज जन जाना। मुनि मति पुनि फेरी भगवाना॥
रिषि मम महत शीलता देखी। राम चरन बिस्वास बिसेषी॥

जब मन, वचन और कर्म से प्रभु ने मुझे अपना जन (दास) जान लिया, तब फिर भगवान् ने मुनि की बुद्धि को फेर दिया। ऋषि ने मेरी जब महान् शीलता और श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में विशेष विश्वास देखा।

अति बिसमय पुनि पुनि पछिताई। सादर मुनि मोहि लीन्ह बोलाई॥
मम परितोष बिबिधि बिधि कीन्हा। हरषित राममंत्र तब दीन्हा॥

तब मुनि ने बहुत विस्मय के साथ बार-बार पछता कर आदर सहित मुझे बुला लिया। नाना प्रकार से उन्होंने मुझे सन्तोष दिया, और तब हर्षित होकर राम मन्त्र प्रदान किया।

बालकरूप राम कर ध्याना। कहेउ मोहि मुनि कृपानिधाना॥
सुन्दर सुखद मोहि अति भावा। सो प्रथमहिं मैं तुम्हहि सुनावा॥

कृपा के भंडार मुनि ने मुझे श्रीराम जी के बालक रूप का ध्यान कराया, वह सुन्दर सुखदायी मुझे बहुत रुचा, वह ध्यान मैं आपको पहिले ही सुना चुका हूँ।

मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा। रामचरितमानस तब भाषा॥
सादर मोहि यह कथा सुनाई। पुनि बोले मुनि गिरा सुहाई॥

मुनि ने कुछ समय तक मुझे वहाँ अपने पास रक्खा, तब उन्होंने रामचरितमानस का वर्णन किया, मुझे आदर सहित यह कथा सुना कर मुनि सुहावनी वाणी बोले—

रामचरित सर गुप्त सुहावा। सम्भु प्रसाद तात मैं पावा॥
तोहि निज भगत राम कर जानी। ताते मैं सब कहेउँ बखानी॥

हे तात! यह सुन्दर और गुप्त रामचरितमानस श्रीशङ्कर जी की कृपा से मैंने प्राप्त किया है। तुम्हें श्रीराम जी का परम ही भक्त जान कर मैंने तुमसे यह सारा चरित विस्तार पूर्वक कहा है।

राम भगति जिन्ह के उर नाहीं। कबहुँ न तात कहिअ तिन्ह पाहीं॥
मुनि मोहि बिबिधि भाँति समुझावा। मैं सप्रेम मुनि पद सिरु नावा॥

हे तात! जिनके हृदय में श्रीरामचन्द्र की भक्ति नहीं है, उनके

सन्मुख इस चरित्र को बिल्कुल भी नहीं कहना चाहिये। मुनि ने मुझे बहुत तरह से समझाया था, तब मैंने प्रेम के साथ मुनि के चरणों में शीस नवाया।

निज कर कमल परसि मम सीसा। हरषित आसिष दीन्ह मुनीसा॥
राम भगति अविरल उर तोरें। बसिहि सदा प्रसाद अब मोरें॥

तब मुनीश्वर ने अपने कर कमल से मेरा मस्तक छूकर प्रसन्न हो आशीर्वाद दिया, कि अब मेरी कृपा से तेरे हृदय में सदा अटल राम भक्ति निवास करेगी।

दो०—सदा राम प्रिय होहु तुम्ह सुभ गुन भवन अमान।
कामरूप इच्छामरन ग्यान बिराग निधान॥ ११३ (क)॥

तुम सदा श्रीराम जी के प्रिय होओ, और शुभ गुणों के स्थान, अभिमान रहित, काम रूप (इच्छानुसार अपना रूप धारण करने में समर्थ) इच्छा मरण, (अपनी इच्छा से जब चाहो मरो) एवं ज्ञान और वैराग्य के भण्डार होओ।

जेहिं आश्रम तुम्ह बसब पुनि सुमिरत श्रीभगवन्त।
ब्यापिहि तहँ न अविद्या जोजन एक प्रजन्त॥ ११३(ख)॥

श्री भगवान् का स्मरण करते हुए तुम जिस आश्रम में जा बसोगे, वहाँ एक योजन (चार कोस) तक अविद्या (अज्ञान) नहीं व्यापेगी।

काल कर्म गुन दोष सुभाऊ। कछु दुख तुम्हहि न ब्यापिहि काऊ॥
राम रहस्य ललित बिधि नाना। गुप्त प्रगट इतिहास पुराना॥

काल, कर्म; गुण; दोष और स्वभाव से उत्पन्न कुछ भी दुःख कभी भी तुम्हें न होगा। श्रीरामचन्द्र जी के अनेकों प्रकार के सुन्दर रहस्य (मार्मिक चरित्र; गुण) जो कि इतिहास और पुराणों में गुप्त और प्रकट हैं।

बिनु श्रम तुम्ह जानब सब सोऊ। नित नव नेह राम पद होऊ॥
जो इच्छा करिहहु मन माहीं। हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं॥

तुम उन सबको भी बिना परिश्रम किये ही समझ जाओगे, श्री रामचन्द्र जी के चरणों में तुम्हारा नित्य प्रेम हो। तुम अपने मन में जो इच्छा करोगे वह हरि की कृपा से कुछ भी दुर्लभ न होगी ॥२॥

सुनि मुनि आसिष सुनु मतिधीरा। ब्रह्मगिरा भइ गगन गँभीरा॥
एवमस्तु तव वच मुनि ग्यानी। यह मम भगत कर्म मन बानी॥

हे सुधीर-गंभीर बुद्धिवाले गरुड़ जी! सुनिये, मुनिका आशीर्वाद सुन कर आकाश से ब्रह्मवाणी हुई कि हे ज्ञानि मुनि! तुम्हारा वचन सत्य हो, यह मन, वचन और कर्म से मेरा भक्त है॥ ३॥

सुनि नभगिरा हरष मोहि भयऊ। प्रेम मगन सब संसय गयऊ॥
करि बिनती मुनि आयसु पाई। पद सरोज पुनि पुनि सिरु नाई॥

इस आकाशवाणी को सुन कर मुझे अत्यन्त खुशी हुई, और मैं प्रेम में निमग्न होगया, मेरा सारा सन्देह दूर होगया, तत्पश्चात् मैं मुनि की विनति करके और उनकी आज्ञा प्राप्त कर उनके चरण-कमलों में बारम्बार सिर नवा कर—॥४॥

हरष सहित एहिं आश्रम आयउँ। प्रभु प्रसाद दुर्लभ बर पायउँ॥
इहाँ बसत मोहि सुनु खग ईसा। बीते कलप सात अरु बीसा॥

हर्ष युक्त हो इस आश्रम में चला आया। प्रभु श्री रामचन्द्र जी की कृपासे मैंने दुर्लभ-वरदान प्राप्त करलिया है। हे पक्षिराज! सुनिये, मुझे यहाँ बसते सत्ताईस कल्प बीत चुके हैं॥५॥

करउँ सदा रघुपति गुन गाना। सादर सुनहिं बिहङ्ग सुजाना॥
जब जब अवध पुरी रघुबीरा। धरहिं भगत हित मनुज सरीरा॥

मैं सदैव रघुपति जी के गुणों का गान करता रहता हूँ, जिसे चतुर-पक्षी आदरसहित सुनते हैं। अयोध्यापुरी में जब जब रामचन्द्र जी भक्तों के हितके लिये मनुष्य देह धारण करते हैं॥६॥

तब तब जाइ राम पुर रहऊँ। सिसुलीला बिलोकि सुख लहऊँ॥
पुनि उर राखि राम सिसुरूपा। निज आश्रम आवउँ खगभूपा॥

तब तब मैं जाकर श्रीराम जी की पुरी अयोध्या में रहता हूँ, और भगवान की बाल-लीलाओं को देख कर सुख प्राप्त करता हूँ। फिर हे पक्षियों के स्वामी गरुड़ जी! श्रीराम जी के शिशु रूप को मैं हृदय में धारण कर अपने आश्रम में आजाता हूँ॥७॥

कथा सकल मैं तुम्हहि सुनाई। काग देह जेहिं कारन पाई॥
कहिउँ तात सब प्रस्न तुम्हारी। राम भगति महिमा अति भारी॥

मैंने सम्पूर्ण कथा तुम्हें सुनादी है, जिस कारण मैंने कौए की देह प्राप्त की। हे तात! मैंने तुम्हारे सभी प्रश्नों का उत्तर दे दिया है। रामभक्ति की महिमा बहुत ही भारी है ॥८॥

दो०—ताते यह तन मोहि प्रिय भयउ राम पद नेह।
निज प्रभु दरसन पायउँ गए सकल सन्देह॥ ११४(क)॥

मुझे अपनी कौए की देह इसी कारण प्यारी है कि इस के द्वारा मुझे श्रीराम जी के चरणों में स्नेह प्राप्त हुआ है। इसी शरीर से मैंने अपने स्वामी का दर्शन पाया और मेरे सारे सन्देह नष्ट हो गये ॥१४॥ (क)

भगति पच्छ हठ करि रहेउँ दीन्हि महारिषि साप।
मुनि दुर्लभ बर पायउँ देखहु भजन प्रताप ॥११४ (ख)॥

मैं भक्तिपक्ष का हठ कर रहा था जिससे महर्षि लोमश ने मुझे शाप दिया। परन्तु उसका फल यह हुआ कि मैंने वह वरदान प्राप्त किया जो ऋषियों मुनियोंके लिये भी दुर्लभ है,भजन का प्रताप तो देखिये ॥१४॥(ख)

जे असि भगति जानि परिहरहीं। केवल ग्यान हेतु श्रम करहीं॥
ते जड़ कामधेनु गृहँ त्यागी। खोजत आकु फिरहिं पय लागी॥

जो भक्ति की ऐसी महिमा जानकर भी उसे छोड़ते और केवल ज्ञान-प्राप्ति के लिये श्रम करते हैं, वे मूर्ख घर पर खड़ी हुई कामधेनु को छोड़ कर दूध के लिये आक के वृक्ष खोजते फिरते हैं ॥१॥

सुनु खगेस हरि भगति बिहाई। जे सुख चाहहिं आन उपाई॥
ते सठ महासिंधु बिनु तरनी। पैरि पार चाहहिं जड़ करनी॥

हे पक्षिराज! सुनिये, जो लोग श्रीहरि की भक्ति को छोड़ कर अन्य उपायों से सुख प्राप्त करना चाहते हैं, वे मन्द-बुद्धि वाले दुष्ट बिना नौका के तैर कर समुद्र को पार करना चाहते हैं ॥२॥

सुनि भुसुण्डि के बचन भवानी। बोलेउ गरुड़ हरषि मृदु बानी॥
तव प्रसाद प्रभु मम उर माहीं। संस सोकय मोह भ्रम नाहीं॥

शिव जी कहते हैं हे भवानी! भुशुण्डी के इन वचनों को सुन कर

गरुड़ जी हर्षित हो कर कोमल-वाणी से बोले हे प्रभो ! आपकी कृपासे मेरे हृदय में सन्देह, शोक, मोह, भ्रम कुछ भी नहीं रह गया है ॥३॥

सुनुउँ पुनीत राम गुन ग्रामा। तुम्हरी कृपाँ लहेउँ बिश्रामा॥
एक बात प्रभु पूँछउँ तोही। कहहु बुझाइ कृपानिधि मोही॥

आपकी असीम कृपा से मैंने श्रीराम जी के पवित्र गुण समूहों को सुना और शान्ति प्राप्त की। हे दयासागर ! मैं आप से एक बात पूछना चाहता हूँ मुझे समझा कर कहिये ॥४॥

कहहिं संत मुनि बेद पुराना। नहिं कछु दुर्लभ ग्यान समाना॥
सोइ मुनि तुम्ह सन कहेउ गोसाईं। नहिं आदरेहु भगति की नाईं॥

सन्त, मुनिजन, वेद और पुराण यह कहते हैं कि ज्ञान के समान दुर्लभ वस्तु और कोई नहीं है। हे गुसाईं ! वही ज्ञान मुनिने आप से कहा पर आपने भक्ति के समान उसका आदर नही किया ॥५॥

ग्यानहिं भगतिहि अंतर केता। सकल कहहु प्रभु कृपा निकेता॥
सुनि उरगारि बचन सुख माना। सादर बोलेउ काग सुजाना॥

हे दया के निकेतन ! हे प्रभो ! ज्ञान और भक्ति में कितना अन्तर है यह सब कहिये। गरुड़ के इन वचनों को सुन कर कागभुशुण्डी जी ने सुख प्राप्त किया और आदर पूर्वक बोले ॥६॥

भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा॥
नाथ मुनीस कहहिं कछु अन्तर। सावधान सोउ सुनु बिहङ्गवर॥

भक्ति और ज्ञान इन दोनो में कुछ भी भेद नहीं है, दोनों ही संसार से उत्पन दुःखों को हर लेते हैं। हे नाथ ! मुनीश्वर इनमें कुछ अन्तर कहते हैं, हे पक्षियों में श्रेष्ठ गरुड़ जी ! उसे भी सावधान होकर श्रवण करें ॥७॥

ग्यान बिराग जोग बिग्याना। ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना॥
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती। अबला अबल सहज जड़ जाती॥

हे विष्णु-वाहन गरुड़ जी ! सुनिये ज्ञान, वैराग्य, योग और विज्ञान ये सभी पुरुष हैं, पुरुष का प्रताप सब तरह से प्रबल होता है। अबला स्वभाव से ही निर्बल और जन्म से ही मूर्ख होती है ॥८॥

दो०–पुरुष त्यागि सक नारिहि जो बिरक्त मति धीर।
न तु कामी बिषयावस बिमुख जो पद रघुबीर ॥११५ (क)॥

लेकिन जो वैराग्यवान् और धैर्यवान् पुरुष हैं, वे ही स्त्री को त्याग सकते हैं। जो विषयों के अधीन हैं और कामी हैं, तथा श्री रामचन्द्र जी के चरणों से विमुख हैं ॥११५॥ (क)

सो०—सोउ मुनि ग्यान निधान मृगनयनी विधु मुख निरखि।
विबस होइ हरिजान नारि विष्नु माया प्रगट ॥११५ (ख)॥

वे ज्ञान के भण्डार मुनि भी मृगनयनी (युवती स्त्री) के चन्द्रमा के समान मुख को देख कर विकल (बेचैन) हो उठते हैं, क्योंकि संसार में प्रसिद्ध स्त्री ही विष्णु माया है ॥११५॥ (ख)

इहाँ न पच्छपात कछु राखउँ। वेद पुरान संत मत भाषउँ॥
मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा॥

यहाँ पर मैं कुछ भी पक्षपात नहीं रखता, केवल वेद, पुराण और सन्तों के मत को कहता हूँ, हे गरुड़ जी! यह एक बड़ी अनुपम रीति है, कि एक स्त्री के रूप पर एक दूसरी स्त्री मोहित नहीं होती ॥१॥

माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ। नारि वर्ग जानइ सब कोऊ॥
पुनि रघुवीरहि भगति पिआरी। माया खलु नर्तकी बिचारी॥

हे गरुड़ जी! आप सुनिये! माया और भक्ति ये दोनों ही स्त्री वर्ग में से हैं, इसे सब कोई जानते हैं। फिर भक्ति तो रघुनाथ जी को प्यारी ही है और माया बेचारी तो निश्चय ही एक नाचने वाली है ॥२॥

भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया॥
राम भगति निरुपम निरुपाधी। बसइ जासु उर सदा अबाधी॥

रघुकुलनायक श्री रामचन्द्र जी भक्ति पर विशेष करके अनुकूल रहते हैं। इसी कारण माया उससे अत्यन्त डरती रहती है। जिसके हृदय में उपमा रहित और उपाधिरहित राम-भक्ति सदा अखण्ड होकर बसती है ॥३॥

तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकइ कछु निज प्रभुताई॥
अस बिचारि जे मुनि बिग्यानी। जाचहिं भगति सकल सुख खानी॥

उसे देख कर माया सकुचाती (लजाति) है और कुछ अपनी प्रभुता नहीं कर सकती। ऐसा विचार कर जो ऋषि विज्ञानी हैं, वेभी सम्पूर्ण सुखों की खान भक्ति की ही याचना करते हैं ॥४॥

दो०–यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानइ कोइ।
जो जानइ रघुपति कृपाँ सपनेहुँ मोह न होइ ॥११६ (क)॥

श्री रघुनाथ जी के इस रहस्य (मर्म) को कोई भी शीघ्र नहीं जान सकता, श्री रघुनाथ जी की कृपा से जो इसे जान जाता है उसको स्वप्न में भी मोह नहीं होता ॥११६॥ (क)

औरउ ग्यान भगति कर भेद सुनहु सुप्रबीन।
जो सुनि होइ राम पद प्रीति सदा अबिछीन ॥११६ (ख)॥

हे प्रवीण गरुड़ जी ! ज्ञान और भक्ति का और भी भेद सुनिये, जिस के सुनने से श्रीराम जी के चरणों में सदा अविच्छिन्नप्रेम हो जाता है ॥११६॥ (ख)

सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनइ न जाइ बखानी ॥
ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी ॥

हे तात ! इस नहीं कहने योग्य कहानी को भी सुनिये यह समझतेही बनती है, कही नही जाती। जीव ईश्वर का अंश है, वह अविनाशी, चेतन, निर्मल है और स्वभाव से ही सुख का समूह है ॥१॥

सो मायाबस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाईं ॥
जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई ॥

हे गुसाईं ! यह जीव माया के अधीन हो गया और तोते तथा वानर की भाँति अपने आप ही बन्धाया । जड़ (माया) और चेतन जीव में ग्रन्थि पड़ गई। यद्यपि यह ग्रन्थी मिथ्या है तोभी उसके छूटने में कठिनाई है ॥२॥

तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी ॥
श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई ॥

तभी से जीव संसारी हो गया है, और न गाँठ छूटती है और न वह सुखी होता है। वेद और पुराणों ने बहुत से उपाय बताये हैं, परन्तु गाँठ छूटती नहीं बल्कि अधिक उलझती जाती है ॥३॥

जीव हृदयँ तम मोह बिसेषी। ग्रंथि छूट किमि परइ न देखी ॥
अस संजोग ईस जब करई। तबहुँ कदाचित सो निरुअरई ॥

जीव के हृदय में मोह का विशेष करके अन्धेरा छाया रहता है। इससे गाँठ दिखाई ही नहीं पड़ती। छूटे भी भला कैसे! जब ईश्वर भी ऐसा संयोग करे तब भी शायद ही वह ग्रंथि सुलझे ॥४॥

सात्त्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जौं हरि कृपाँ हृदयँ बस आई॥
जप तप ब्रत जम नियम अपारा। जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा॥

श्री विष्णु जी की कृपा से यदि सात्विकी श्रद्धारूपी सुन्दर गौ हृदय-रूपी घर में आकर बस जाय असंख्यों जप, तप, व्रत, यम और नियमादि अपार शुभधर्म आचरण जो वेदों में कहे हैं ॥५॥

तेइ तृन हरित चरै जब गाई। भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई॥
नोइ न बृत्ति पात्र बिस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा॥

वे ही हरी घास है, वह श्रद्धारूपी गाय जब उस घास को चरे, और आस्तिकभाव रूपी छोटे बछड़े को पाकर वह उसके थनों से दूध उतरने दे। निवृत्ति ही नोई (दूध दुहते समय जो रस्सी गाय के पैरों में बाँधी जाती है) विश्वास रूपी पात्र है, निर्मल मन जो स्वयं अपना दास है, दुहने वाला अहीर है ॥६॥

परम धर्ममय पय दुहि भाई। अवटै अनल अकाम बनाई॥
तोष मरुत तब छमाँ जुड़ावै। धृति सम जावनु देइ जमावै॥

हे भाई! इस प्रकार परम धर्मरूपी दूध को दुहे, और फिर निष्कामता-रूपी अग्नि में उसे खूब सेके, फिर क्षमा और सन्तोष रूपी वायु से उसे ठंडा करे और धैर्य तथा शम (मनोनिग्रह) रूपी जामन देकर उसको जमा दे ॥७॥

मुदिताँ मथै बिचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी॥
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता। बिमल बिराग सुभग सुपुनीता॥

फिर मुदिता (प्रसन्नता) रूपी मटकी में तत्व बिचार रूपी मथानी से उसको मथे; दम (इन्द्रिय दमन) को आधार (मथने के खम्भे का सहारा) बनावे। सत्य और सुन्दर वचन रूपी रस्सी लगाकर उसे मथ कर उसमें से निर्मल, सुन्दर और परम पवित्र वैराग्य रूपी माखन निकाल ले।

दो०-जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ ॥११७ (क)॥

फिर योग रूपी अग्नि प्रकट करके उसमें शुभ अशुभ कर्म रूपी ईंधन लगा दे। जब ममता रूपी मल जल जाये तब बुद्धि से उस ज्ञान रूपी घी को ठंडा कर निकाल ले।।

तब बिग्यानरूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ ॥११७ (ख)॥

फिर विज्ञान रूपी बुद्धि शुद्ध घी को पाकर उससे चित्त रूपी दीपक को भर कर और समता रूपी दीवट बना कर उस पर उसे दृढ़ता से रख दे।

तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि ॥११७ (ग)॥

फिर तीनों अवस्थाएँ (जागृत स्वप्न, सुषुप्ति) और तीनों गुण (सत्व, रज, तम) रूपी कपास में से तुरीयावस्था रूपी रुई को निकाल कर उसे सुधार कर अच्छी गाढ़ी बत्ती बनावे।

सो०-एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यानमय।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब ॥११७ (घ)॥

इस विधि के अनुसार तेज की राशि विज्ञानमय दीपक को जलावे। जिसके पास फटकते ही मद आदिक सभी पतंगे भस्म हो जायें।

सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा॥

'सोऽहम्' यह (ब्रह्म) मैं हूँ, इस प्रकार की जो अखंड वृत्ति है, वही उस दीपक की अत्यन्त प्रचण्ड दीप शिखा (लौ) है। इससे जब आत्मा को अनुभव हो जाता है, तब सुख का सुन्दर प्रकाश पड़ता है। फिर संसार के मूल भेद रूपी भ्रम का नाश हो जाता है।

प्रबल अबिद्या कर परिवारा। मोह आदि तम मिटइ अपारा॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजिआरा। उर गृहँ बैठि ग्रंथि निरुआरा॥

और फिर प्रबल अविद्या के परिवार ममता आदि का अपार अन्धकार

मिट जाता है, तब फिर वही बुद्धि प्रकाश को पाकर हृदय रूपी घर में बैठ कर उस ग्रन्थि को सुलझाती है।

छोरन ग्रंथि पाव जौं सोई। तब वह जीव कृतारथ होई॥
छोरत ग्रंथि जानि खगराया। विघ्न अनेक करइ तब माया॥

यदि जो कोई उस गाँठ को खोल सके तो वह जीव कृतार्थ हो जाय। हे पक्षिराज गरुड़! गाँठ छुड़ाते जान कर उस समय माया अनेकों विघ्न करती है।

रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई। बुद्धिहि लोभ दिखावहिं आई॥
कल बल छल करि जाहिं समीपा। अंचल वात बुझावहिं दीपा॥

अरे भाई! वह बहुत सी ऋद्धि सिद्धियों को प्रेरणा करती है (भेजती है) वे आकर बुद्धि को लालच दिखाती हैं, और वे ऋद्धि सिद्धियाँ अनेक पेच और छल बल करके पास जाती हैं और आंचल की हवा से उस ज्ञान रूपी दीपक को बुझा देती हैं।

होइ बुद्धि जौं परम सयानी। तिन्ह तन चितव न अनहित जानी॥
जौं तेहि विघ्न बुद्धि नहिं बाधी। तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी॥

यदि बुद्धि बहुत ही चतुर हो तो वह उन ऋद्धि सिद्धियों को अनहित (शत्रु) जान कर उनकी तरफ देखती तक नहीं। यदि उन विघ्नों से बुद्धि को नुकसान न पहुँचे तो फिर देवता आकर ऊधम मचाते हैं।

इंद्री द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना॥
आवत देखहिं विषय बयारी। ते हठि देहिं कपाट उघारी॥

इन्द्रियों के दरवाजे हृदय रूपी घर के अनेक झरोखे हैं, वहाँ-वहाँ देवता अड्डा जमा कर बैठ जाते हैं। ज्यों ही वे विषय रूपी पवन को आते देखते हैं त्यों ही हठ पूर्वक किवाड़ खोल देते हैं।

जब सो प्रभंजन उर गृहँ जाई। तबहिं दीप बिग्यान बुझाई॥
ग्रंथि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ विषय बतासा॥

ज्यों ही वह तेज पवन हृदय रूपी घर में प्रविष्ट होती है, त्यों ही विज्ञान रूपी दीपक बुझ जाता है। ग्रन्थि भी नहीं छूटने पाई थी और वह प्रकाश भी हट गया। विषय रूपी पवन से बुद्धि व्याकुल हो गई।

इंद्रिन्ह सुरन्ह न ग्यान सोहाई। विषय भोग पर प्रीति सदाई
विषय समीर बुद्धि कृत भोरी। तेहि विधि दीप को बार बहोरी

इन्द्रियों को और उनके अधिष्ठाता देवताओं को ज्ञान नहीं सुहा क्योंकि उनकी सदा विषय भोग में ही प्रीति रहती है। विषय रूपी वायु बुद्धि को भी भूल में डाल दिया। फिर पहिले के समान उस ज्ञान दी को कौन जलावे ?

दो०—तब फिरि जीव विविध विधि पावइ संसृति क्लेस।
हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ विहगेस ॥११८(क)

तब फिर प्राणी नाना प्रकार के जन्म मरण के दुःख पाता है, पक्षिराज गरुड़ जी! भगवान् की माया बड़ी दुस्तर है (अलंघनीय है) आसानी से तरी नहीं जाती है।

कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन विवेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक ॥११८(ख)

ज्ञान का कहना कठिन है, समझाना कठिन है, और साधना कठिन यदि घुणाक्षर न्याय से कदाचित् वह ज्ञान हो भी जाय, तो फिर पीछे उ अनेकों विघ्न बाधायें पड़ती हैं।

ग्यान पन्थ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बार
जो निर्बिघ्न पन्थ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई

हे गरुड़ जी, ज्ञान प्राप्ति का रास्ता तलवार की (तीक्ष्ण) धा समान है। इससे गिरते हुए भी देरी नहीं लगती। जो इस मार्ग को नि तय कर लेता है, वह कैवल्य (मोक्ष) रूप परम पद को प्राप्त कर लेता है

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआई

कैवल्य (मोक्ष) रूपी परम पद बहुत ही दुर्लभ है, सन्त; पु और वेद शास्त्र भी ऐसा ही कहते हैं; परन्तु हे गोसाईं, वही मुक्ति राम जी का भजन करने पर बिना इच्छा किये भी हठ पूर्वक आती है।

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई
तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरि भगति बिहाई

हे गरुड़ जी ! सुनिये; जैसे स्थल के बिना जल नहीं ठहर सकता चाहे कोई करोड़ों प्रयत्न करले; वैसे ही मोक्ष भी का सुख भी भगवान् की भक्ति को छोड़ कर नहीं रह सकता ।

अस बिचारि हरि भगत सयाने । मुक्ति निरादर भगति लुभाने ॥
भगति करत बिनु जतन प्रयासा । संसृति मूल अबिद्या नासा ॥

ऐसा विचार करके जो चतुर हरि के भक्त हैं वे मुक्ति का तिरस्कार कर भक्ति के लिये लुभा जाते हैं । और भक्ति करते ही विना यत्न और मेहनत के जन्म मरण की जड़ अविद्या (अज्ञान) का नाश हो जाता है ।

भोजन करिअ तृपिति हित लागी । जिमि सो असन पचवै जठरागी ॥
असि हरि भगति सुगम सुखदाई । को अस मूढ़ न जाहि सोहाई ॥

भोजन तो तृप्ति के लिये किया जाता है, और उस भोजन को जठराग्नि (पेट की ज्वाला) अपने आप पचा देती है । इसी प्रकार भगवद्भक्ति भी ऐसा सुगम और सुख देने वाली है, ऐसा कौन मूर्ख होगा जिसे हरि भक्ति न सुहावे ।

दो०—सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि ।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि ॥११९ (क)॥

हे सर्प के अरि गरुड़ जी ! मैं तो सेवक हूँ और भगवान् मेरे सेव्य (स्वामी) हैं, ऐसा भाव हुए बिना संसार नहीं तरा जा सकता, आप ऐसा सिद्धान्त विचार कर श्री रामचन्द्र जी के चरण कमलों का भजन करिये ।

जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य ।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य ॥११९ (ख)॥

जो चेतन (जीव) को जड़ कर देता है, और जड़ को चेतन कर देता है, ऐसे समर्थ श्री रघुनायक रामचन्द्र जी को जीव भजते हैं । वस्तुतः वे धन्य हैं ।

कहेउँ ग्यान सिद्धांत बुझाई । सुनहु भगति मनि कै प्रभुताई ॥
राम भगति चिंतामनि सुन्दर । बसइ गरुड़ जाके उर अन्तर ॥

मैंने ज्ञान का सिद्धान्त (महत्व) समझा कर कह दिया है, अब

भक्ति रूपिणी मणि की प्रभुता (सामर्थ्य) सुनिये, श्री रामचन्द्र जी की भक्ति सुन्दर चिन्ता मणि है, हे गरुड़ जी! यह मणि जिसके हृदय के भीतर जाकर बसती है।

परम प्रकास रूप दिन राती। नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥

यह दिन रात परम प्रकाश रूप (स्वयमेव ही) रहता है। न उसके लिये, घी चाहिये, न दीपक और न बत्ती ही। न तो मोह रूपी दरिद्रता उसके पास फटक सकता है, और न लोभ रूपी हवा उस मणिमय दीपक को बुझा ही सकती है।

प्रबल अविद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं॥

उसके उपाय से अटल अविद्या रूपी अंधकार मिट जाता है, मदादि पतङ्गों का सारा समूह हार जाता है। जिसके हृदय के भीतर राम भक्ति निवास करती है, उसके पास दुष्ट कामादिक नहीं पहुँच सकते।

गरल सुधासम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई॥
ब्यापहिं मानस रोग न भारी। जिन्ह के बस सब जीव दुखारी॥

श्रीराम जी के भक्त को विष अमृत के समान और शत्रु मित्र हो जाते हैं, उस भक्ति रूपी मणि के बिना कोई सुख नहीं पा सकता। जिन मानसिक रोगों के कारण सब जीव दुख भोग रहे हैं, वह उसको नहीं व्यापते।

राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें॥
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि जतन कराहीं॥

श्रीराम भक्ति रूपी मणि जिसके हृदय के भीतर निवास करती है, उसको स्वप्न में भी लेशमात्र भी दुःख नहीं होता, जो इस भक्ति के लिये प्रयत्न करते हैं, वे ही संसार में चतुरों के शिरोमणि (भूषण) हैं।

सो मनि जदपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई॥
सुगम उपाय पाइब केरे। नर हतभाग्य देहिं भटभेरे॥

यद्यपि यह मणि संसार में प्रकट है, तथापि श्रीरामचन्द्र जी की कृपा

के विना कोई भी उसको प्राप्त नहीं कर सकता। उसके प्राप्त करने के उपाय भी सरल ही हैं, फिर भी हत भागी मनुष्य उसे ठुकरा देते हैं।

पावन पर्वत वेद पुराना। राम कथा रुचिराकर नाना॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ग्यान विराग नयन उरगारी॥

वेद और पुराण पवित्र पर्वत हैं, श्री रामचन्द्र जी की अनेकों प्रकार की कथाएँ उन पर्वतों में सुन्दर खाने हैं, उनका मर्म जानने वाला सज्जन सद्बुद्धि रूपिणी कुदाली है, हे गरुड़ जी! ज्ञान और वैराग्य ये दो उनकी आँखें हैं।

भाव सहित खोजइ जो प्रानी। पाव भगति मनि सब सुख खानी॥
मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा॥

जो प्राणी भाव सहित खोजता है, वह सब सुखों की खान उस भक्ति रूपी मणि को प्राप्त कर लेता है। हे प्रभो! मेरे मन में कुछ ऐसा विश्वास है कि रामचन्द्र जी के दास श्रीराम से भी बढ़ कर है।

राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चन्दन तरु हरि संत समीरा॥
सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहूँ पाई॥
अस विचारि जोइ कर सतसंगा। राम भगति तेहि सुलभ विहंगा॥

श्रीराम जी समुद्र हैं, सज्जन और धैर्यवान् पुरुष मेघ हैं, श्री हरि जी चन्दन के वृक्ष हैं, और सन्त जन उनकी वायु हैं। सभी साधनों का सुन्दर फल एक हरि भक्ति ही है, उसे सन्तों के विना कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता ॥६॥ हे गरुड़ जी! इस प्रकार विचार करके जो कोई सत्सङ्ग करेगा उसे रामचन्द्र जी की भक्ति आसानी से प्राप्त हो सकेगी।

दो०—ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहिं।
कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं॥१२० (क)॥

ब्रह्म समुद्र है, ज्ञान मन्दराचल पर्वत है, और सन्त लोग देवता हैं। जो उस समुद्र को मथन करके कथामृत को निकाल लेते हैं, जिसमें भक्ति रूपी मधुरता रहती है।

बिरति चर्म असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेस बिचारि॥१२० (ख)॥

हे गरुड़ जी ! विचार करके देख लीजिये । जो वैराग्य रूपी ढाल लेकर ज्ञान रूपी तलवार से मद-मोह-लोभ रूपी शत्रुओं को विजय कर लेती है, वह विष्णु जी की भक्ति ही है ।

पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ । जौं कृपाल मोहि ऊपर भाऊ ॥
नाथ मोहि निज सेवक जानी । सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी ॥

फिर पक्षिराज गरुड़ जी प्रेम सहित कहने लगे—हे दयालु काकभुशुण्डी जी ! यदि मुझ पर आपका प्रेम भाव है, तो हे नाथ ! मुझे अपना दास समझ कर मेरे सात प्रश्नों का उत्तर दीजिये ।

प्रथमहिं कहहु नाथ मतिधीरा । सब ते दुर्लभ कवन सरीरा ॥
बड़ दुख कवन कवन सुख भारी । सोउ संछेपहिं कहहु बिचारी ॥

हे धीर बुद्धि ! हे नाथ ! पहले तो यह बतलाइये कि सबसे दुर्लभ कौन-सा शरीर है ? फिर सबसे बड़ा सुख कौन-सा है ? यह भी बिचार कर संक्षेप से कहिये ।

संत असंत मरम तुम्ह जानहु । तिन्ह कर सहज सुभाव बखानहु ॥
कवन पुन्य श्रुति बिदित बिसाला । कहहु कवन अघ परम कराला ॥

हे कृपालु ! सन्तों और असन्तों के मर्म को आप जानते ही हैं, इसलिये उनके सहज स्वभाव को कहिये । फिर कहिये कि वेदों में प्रसिद्ध सबसे बड़ा पुण्य कौन-सा है, तब सब से भयानक पाप कौन-से हैं ।

मानस रोग कहहु समुझाई । तुम्ह सर्बग्य कृपा अधिकाई ॥
तात सुनहु सादर अति प्रीती । मैं संछेप कहउँ यह नीती ॥

फिर मानस (मन में उत्पन्न) रोगों को समझाकर कहिये । क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं और मुझपर आपकी अधिक कृपा है । (तब काकभुशुण्डी जी बोले) हे तात ! आप अत्यन्त प्रीति और आदर के साथ सुनें, मैं यह सारी नीति संक्षेप में कहता हूँ ॥४॥

नर तन सम नहिं कवनिउ देही । जीव चराचर जाचत तेही ॥
नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी । ग्यान बिराग भगति सुभ देनी ॥

मनुष्य के शरीर के समान अन्य कोई भी शरीर (श्रेष्ठ नहीं) है । जिसको चराचर जगत् सभी जीव मांगते हैं (चाहते हैं) वह शरीर नरक, स्वर्ग और

मोक्ष के लिये नसेनी (सीढ़ी) है। तथा कल्याणकारी, ज्ञान वैराग्य और शुभ भक्ति को देने वाली है ॥५॥

सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं विषय रत मंद मंद तर ॥
काँच किरिच बदलें ते लेहीं। कर ते डारि परस मनि देहीं ॥

ऐसे मनुष्य के शरीर को धारण करके भी जो लोग हरि का भजन नहीं करते और विषयों में लिप्त हो जाते हैं, वे नीच से भी नीच हैं। वे पारसमणि को तो हाथों से फेंक देते हैं, परन्तु उसके बदले में काँच के टुकड़े ले लेते हैं ॥६॥

नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं। संत मिलन सम सुख जग नाहीं ॥
पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया ॥

संसार मे दरिद्रता के समान अन्य कोई भी दुःख नहीं है और सन्तों के मिलने के समान कोई सुख नहीं है। और हे पक्षिराज ! मन, वचन, शरीर से परोपकार करना सन्तों का ही काम है ॥७॥

संत सहहिं दुख पर हित लागी। पर दुख हेतु असंत अभागी ॥
भूर्ज तरू सम संत कृपाला। पर हित निति सह बिपति बिसाला ॥

सन्त (परमार्थी) लोग दूसरे के हित के लिये (स्वयं) दुःख सह लेते हैं, और अभागे असन्त मूर्ख लोग औरों को दुःख पहुँचाने के लिये स्वयं दुःख उठाते हैं। कृपालु सन्त लोग भोजपत्र के वृक्षों के समान होते हैं जो दूसरे के हित के लिये भारी विपत्ति सहन करते हैं ॥८॥

सन इव खल पर बंधन करई। खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई ॥
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी। अहि मूषक इव सुनु उरगारी ॥

दुर्जन सन की भाँति औरों को बाँधते हैं, और अपनी खाल खिंचवा कर विपत्ति सहकर मर जाते हैं। हे गरुड़ जी ! सुनते जाइये, दुष्ट लोग बिना किसी स्वार्थ के साँप और चूहे के समान बिना कारण ही दूसरों का अपकार (बुराई) करते हैं ॥९॥

पर संपदा बिनासि नसाहीं। जिमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं ॥
दुष्ट उदय जग आरति हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू ॥

वे दुर्जन परायी सम्पत्ति को नष्ट करके स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं,

जैसे ओले खेती का नाश कर स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं। दुष्टों का उदय संसार में दुःख का ही कारण होता है, जैसे नीच ग्रह केतु, विख्यात है (औरों को दुःख पहुंचाने के लिये) ॥१०॥

संत उदय संतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी ॥
परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा। पर निंदा सम अघ न गिरीसा ॥

सन्त लोगों का उदय (प्रादुर्भाव) निरन्तर सुखदायक ही होता है, जैसे कि अन्धकार को नष्ट करने वाले चन्द्रमा का उदय समस्त विश्वभर के लिये सुखदायक होता है। वेदों में अहिंसा को परम धर्म माना गया है, तथा दूसरे की निन्दा करने के बराबर और कोई भी पाप रूपी महा पर्वत नहीं है ॥११॥

हरि गुर निंदक दादुर होई। जन्म सहस्र पाव तन सोई ॥
द्विज निंदक बहु नरक भोग करि। जग जनमइ बायस सरीर धरि ॥

श्री हरि की और अपने गुरु की निन्दा करने वाला मेंढक होता है और हजार जन्मों तक मेंढक का शरीर ही पाता है। ब्राह्मणों की निन्दा करने वाला बहुत से नरक भोग कर फिर संसार में कौए की देह धारण कर जन्म लेता है॥

सुर श्रुति निंदक जे अभिमानी। रौरव नरक परहिं ते प्रानी ॥
होहिं उलूक संत निंदा रत। मोह निसा प्रिय ग्यान भानु गत ॥

जो अभिमानी मनुष्य देवताओं और वेदों की निन्दा करता है; वह रौरव नामक नरक में पड़ता है। जो सदा सन्तों की निन्दा करने में ही रत रहता है, वह उल्लू होता है, जिसके लिये मोह रूपी रात्रि प्यारी होती है और ज्ञान रूपी सूर्य अस्त रहता है ॥१२॥

सब कै निंदा जे जड़ करहीं। ते चमगादुर होइ अवतरहीं ॥
सुनहु तात अब मानस रोगा। जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा ॥

जो दुष्ट मनुष्य सब की निन्दा ही करते हैं, वे चमगादड़ बनकर जन्म लेते हैं, हे तात ! अब मानस रोगों को भी सुनिये, जिनसे सभी लोग दुःख ही पाते हैं ॥१३॥

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला ॥
काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा ॥

मोह ही सब व्याधियों का मूल कारण है, फिर उसी से अनेकों दुःख पैदा हो जाते हैं। काम तो वात व्याधि है, और लोभ अपार कफ है, क्रोध पित्त है, जो रोज छाती को जलाता रहता है ॥१५॥

प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई ॥
विषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना ॥

जो यह तीनों भाई प्रीति कर लेते हैं। (अर्थात् काम, लोभ और मोह, तथा वात, पित्त और कफ आपस में इकट्ठे हो जाते हैं) तो दुःखदायक सन्निपात रोग उत्पन्न हो जाता है, मुश्किल से प्राप्त होने वाले जो विषयों के मनोरथ हैं, वे सब शूल (रोग) हैं, उनके नाम कौन जान सकता है? ॥१६॥

ममता दादु कंडु इरषाई। हरष विषाद गरह बहुताई ॥
पर सुख देखि जरनि सोइ छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई ॥

ममता दाद है और ईर्ष्या खाज है, हर्ष और विषाद गले के रोग हैं, पराये सुख को देखकर के जो जलन होती है वह क्षय रोग है, मन की दुष्टता तथा कुटिलता कुष्ठ रोग हैं ॥१७॥

अहंकार अति दुखद डमरुआ। दम्भ कपट मद मान नेहरुआ ॥
तृस्ना उदरवृद्धि अति भारी। त्रिविधि ईषना तरुन तिजारी ॥
जुग विधि ज्वर मत्सर अविवेका। कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका ॥

अहंकार बड़ा ही दुःख देने वाला डमरू है, तथा दम्भ, कपट मद और मान यह नहरुआ रोग(एक कीड़ा जो पानी में रहता है और शरीर में आकर धागे के समान बढ़जाता और मुँह निकाल कर शरीर के किसी अँग से बाहर फूटता है।)है, तृष्णा बड़ा भारी उदर वृद्धि-रोग है। तीन प्रकार की इच्छा (पुत्र, धन और मान की) प्रबल तिजारी रोग हैं ॥१८॥ मत्सर (डाह) और अविवेक (अविचार) ये दो प्रकार के ज्वर हैं, इनके प्रकार कहां तक कहूँ, अनेकों बुरे रोगहैं ॥१९॥

दो०—एक व्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु व्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहैं समाधि ॥१२१ (क) ॥

मनुष्य एक ही व्याधि के अधीन होकर मर जाते हैं, फिर ये तो बहुत-सी असाध्य व्याधियाँ हैं। ये जीव को निरन्तर कष्ट देती रहती हैं, ऐसी दशा में वह मनुष्य समाधि (ध्यानावस्था) को कैसे प्राप्त कर सकता है ॥१२१॥ (क)

नेम धर्म आचार तप ग्यान जग्य जप दान।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान ॥१२१ (ख) ॥

नियम, धर्म, आचार, तप, ज्ञान, यज्ञ, जप, दान तथा अन्य भी करोड़ों दवाइयाँ हैं, परन्तु हे गरुड़ जी ! उनसे भी यह-रोग नहीं हटते ॥१२१॥ (ख)

एहि विधि सकल जीव जग रोगी। सोक हरप भय प्रीति वियोगी ॥
मानस रोग कछुक मैं गाए। हहिं सब कें लखि विरलेन्ह पाए ॥

इस प्रकार सभी जीव रोगी हैं, और शोक, हर्ष, प्रीतिमय व वियोग के दुःख से और भी दु;खी हो रहे हैं। ये कुछ एक मानस रोग मैंने कहे हैं, ये होते सभी को हैं, परन्तु कोई विरले ही इनको जान पाते हैं सब नहीं ॥१॥

जाने ते छीजहिं कछु पापी। नास न पावहिं जन परितापी ॥
विषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहु हृदयँ का नर बापुरे ॥

ये पाप रोग विदित हो जाने से कुछ कम हो जाते हैं, परन्तु प्राणियों को सन्ताप देने वाले ये रोग नष्ट नहीं होते। ये विषय वासनारूपी कुपथ्य को पाकर मुनियों के हृदय में भी अंकुरित हो जाते हैं साधारण मनुष्य की तो बात ही क्या कहनी ॥२॥

राम कृपाँ नासहिं सब रोगा। जौं एहि भाँति बनै संयोगा ॥
सद्गुरु वैद वचन विस्वासा। संजम यह न विषय कै आसा ॥

श्री रामचन्द्र जी की कृपा से ही ये सब रोग नष्ट हो जाते हैं, यदि इस प्रकार का संयोग बन जाए तो सद्गुरु रूपी वैद्य के वचनों में विश्वास होना चाहिए, फिर विषयों की आशा न करे, यही इनका संयम (परहेज़) है ॥३॥

रघुपति भगति संजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी ॥
एहि विधि भलेहिं सो रोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं ॥

श्री रघुनाथ जी की भक्ति संजीवनी बूटी है, श्रद्धा से युक्त पूर्ण बुद्धि ही अनुपान है, इस प्रकार का कोई संयोग बन जाए तो भले ही रोग नष्ट हो जाए, नहीं तो करोड़ों उपाय करने पर भी यह रोग जाते नहीं ॥४॥

जानिअ तब मन विरुज गोसाँई। जब उर बल बिराग अधिकाई ॥
सुमति छुधा बाढ़इ नित नई। बिषय आस दुर्बलता गई ॥

हे गुसाईं ! मन को रोग रहित हुवा तब समझना चाहिए, जब हृदय में वैराग्य के बल की अधिकता हो जाय। सुबुद्धि रूपी भूख नित्य नई बढ़ती रहे और विषयों की आशा रूपी कमजोरी नष्ट हो जाय ॥५॥

बिमल ग्यान जल जब सो नहाई। तब रह राम भगति उर छाई ॥
सिव अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद ॥

जब मनुष्य निर्मल ज्ञान रूपी जल से स्नान करता है, तब श्रीराम की भक्ति उसके हृदय में छा जाती है। शङ्कर, ब्रह्मा, शुकदेव, सनकादिक चारों मुनिगण तथा नारद जी आदि जो मुनि ब्रह्म के विचार में निपुण हैं ॥६॥

सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा।
श्रुति पुरान सब ग्रन्थ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुख नाहीं।

हे गरुड़ जी ! उन सब का भी यह ही सिद्धान्त है कि श्री राम के चरणकमलों में स्नेह करना चाहिये, वेद पुराण आदि सभी ग्रन्थ भी यह कहते हैं कि रघुपति जी की भक्ति किए बिना सुख प्राप्त नहीं हो सकता ॥७॥

कमठ पीठ जामहिं बरु बारा। बन्ध्या सुत बरु काहुहि मारा
फूलहिं नभ बरु बहुबिधि फूला। जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला

कछुए की पीठ पर भी चाहे बाल उग आवें, वन्ध्या स्त्रीका पुत्र भी चाहे किसी को मार डाले, आकाश में भी भलेहीं नाना प्रकार के फूल-फूल उठें, परन्तु हरि से प्रतिकूल रहकर प्राणी कभी भी सुख प्राप्त नहीं कर सकता ॥८॥

तृषा जाइ बरु, मृग, जल पाना। बरु जामहिं सस सीस बिषाना
अन्धकारु बरु रबिहि नसावै। राम बिमुख न जीव सुख पावै
हिम ते अनल प्रगट बरु होई। बिमुख राम सुख पाव न कोई

मृग तृष्णा के जल (रेत) को पीकर चाहे प्यास बुझ जाए, खरगोश के सिर पर भी बेशक सींग आ जाएं, अंधेरा भी चाहे तो सूर्य को नष्ट कर दे, परन्तु फिर भी श्री राम से विमुख होकर प्राणी सुख नहीं पा सकता-

बर्फ से भी चाहे आग निकलने लग पड़े, परन्तु राम जी से विमुख रहने वाला सुख प्राप्त नहीं कर सकता ॥६ १०॥

दो०–बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल ॥१२२ (क)॥

जल को मथने से घी पैदा हो जाए, रेत को पेलने से चाहे तेल निकल आए, फिर भी हरि के भजन के बिना संसार समुद्र से नहीं तरा जा सकता, यह सिद्धान्त अटल है ॥१२२॥

मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन।
अस बिचारि तजि संसय रामहि भजहिं प्रबीन ॥१२२ (ख)॥

ईश्वर छोटे से मच्छर को ब्रह्मा बना सकते हैं, और ब्रह्मा को मच्छर से भी छोटा बना सकते हैं ऐसा विचार करके चतुर मनुष्य संशय का त्याग कर श्री राम जी को भजते हैं ॥१२२॥ (ख)

श्लो०--विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे।
हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते ॥ १२२ (ग)॥

मैं सर्वथा निश्चित किया हुआ सिद्धान्त आपको बताता हूँ, मेरे वचन अन्यथा नहीं हो सकते जो मनुष्य श्रीहरि को भजते हैं वे अत्यन्त दुस्तर (नहीं तरने योग्य) को भी पार कर जाते हैं।

कहेउँ नाथ हरि चरित अनूपा। व्यास समास स्वमति अनुरूपा॥
श्रुति सिद्धांत इहइ उरगारी। राम भजिअ सब काज बिसारी॥

हे नाथ! मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार श्री हरि का चरित्र कहीं विस्तार से कहीं संक्षेप से आपके सम्मुख कहा है। हे सर्पशत्रु गरुड़ जी! वेदों का यही एक सिद्धान्त है कि सब कामों को भुलाकर श्री रामचन्द्र जी का ही भजन करना चाहिए ॥१॥

प्रभु रघुपति तजि सेइअ काही। मोहि से सठ पर ममता जाही॥
तुम्ह बिग्यानरूप नहिं मोहा। नाथ कीन्हि मो पर अति छोहा॥

प्रभु श्री रघुपति राम जी को छोड़कर और किसका भजन किया जाय, जिनका मुझ जैसे दुष्ट पर भी स्नेह है। हे नाथ! आप तो विज्ञान रूप

हैं, आपको मोह नहीं हो सकता. आपने तो मुझ पर बड़ी ही कृपा की है (जो यहाँ पधारने का कष्ट किया) ॥२॥

पूँछिहु राम कथा अति पावनि। सुक सनकादि संभु मन भावनि॥
सत संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दण्ड भरि एकउ बारा॥

जो आपने शुकदेव जी, सनकादिक चारों ऋषियों और शिवजी को प्रिय लगने वाली राम कथा पूछी। संसार में निमिष (पलक) भर, घड़ी भर एक बार भी सत्सङ्गति होनी दुर्लभ है ॥३॥

देखु गरुड़ निज हृदयँ विचारी। मैं रघुवीर भजन अधिकारी॥
सकुनाधम सब भाँति अपावन। प्रभु मोहि कीन्ह विदित जग पावन॥

हे गरुड़ जी अपने हृदय में विचार कर देखिये, क्या मैं भी श्री रामचन्द्र जी के भजन करने का अधिकारी हूँ! मैं पक्षियों में सब से नीच और सब भाँति अपवित्र हूँ। परन्तु प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने मुझे जगत् में पावन (शुद्ध करने वाला) घोषित कर दिया है ॥४॥

दो०—आजु धन्य मैं धन्य अति जद्यपि सब विधि हीन।
निज जन जानि राम मोहि संत समागम दीन ॥१२३ (क)॥

आज मैं धन्य हूँ और बहुत ही धन्य हूँ, यद्यपि सब प्रकार की विधियों से हीन हूँ, जो श्री रामचन्द्र जी ने मुझे अपना ही जन समझकर (आपसे समागम करा कर) सन्त समागम दिया ॥१२३॥ (क)

नाथ जथामति भापेउँ राखेउँ नहिं कछु गोइ।
चरित सिन्धु रघुनायक थाह कि पावइ कोइ ॥१२४ (ख)॥

हे नाथ! मैंने अपनी बुद्धि के यथानुरूप आपसे सभी कुछ कहा और कुछ भी छुपा कर नहीं रक्खा, रघुनाथ श्री राम जी के चरित्र सागर का क्या कोई पार पा सकता है? अर्थात् कोई नहीं ॥११३॥ (ख)

सुमिरि राम के गुन गन नाना। पुनि पुनि हरष भुसुंडि सुजाना॥
महिमा निगम नेति करि गाई। अतुलित बल प्रताप प्रभुताई॥

श्री रामचन्द्र जी के अनेकों गुणों को स्मरण करके सुजान भुशुण्डीजी अत्यन्त पुलकित हो रहे हैं, जिनकी महिमा वेदों ने नेति नेति कह कर गाई है, उनका बल प्रताप और सामर्थ्य अमित है ॥१॥

घड़ी धन्य है, जिसमें सत्सङ्ग हो, और वही जन्म धन्य है. जिसमें ब्राह्मण के प्रति कभी नष्ट न होने वाली भक्ति हो ॥४॥

दो०—सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्री रघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत ॥१२७॥

हे पार्वती ; वह कुल धन्य है, जगत् में पूजनीय, और अत्यन्त पवित्र है, जिसमे रघुवीर रामचन्द्र जी में परायण रहनें वाले मनुष्य पैदा हों ॥१२७॥

मति अनुरूप कथा मैं भाषी। जद्यपि प्रथम गुप्त करि राखी ॥
तव मन प्रीति देखि अधिकाई। तब मैं रघुपति कथा सुनाई ॥

यद्यपि मैंने यह राम कथा पहिले गुप्त करके रक्खी थी, फिर भी अपनी बुद्धि के अनुसार इसका वर्णन किया है। तुम्हारे मन में मैंने रघुनाथजी के प्रति अधिक प्रीति देख कर यह श्री रघुनाथ जी की कथा सुनाई है ॥१॥

यह न कहिअ सठही हठसीलहि। जो मन लाइ न सुन हरि लीलहि ॥
कहिअ न लोभिहि क्रोधिहि कामिहि। जो न भजइ सचराचर स्वामिहि ॥

यह (श्री रामकथा) दुष्ट और हठीले स्वभाव वाले से नहीं कहनी चाहिये। जो मन लगा कर हरि जी की लीला (चरित्र) को न सुनता हो, जो लालची, क्रोधी और कामी हो, जो चराचर सहित जगत्पति श्रीराम को न भजता हो, उसको भी इसे नहीं सुनाना चाहिये ॥२॥

द्विज द्रोहिहि न सुनाइअ कबहूँ। सुरपति सरिस होइ नृप जबहूँ ॥
राम कथा के तेइ अधिकारी। जिन्ह कें सत संगति अति प्यारी ॥

जो ब्राह्मणों से द्रोह (कपट) करता हो, उसे भी इस कथा को कभी नहीं सुनाना चाहिये, चाहे वह देवराज इन्द्र के समान राजा ही क्यों न हो, वही लोग राम कथा सुनने के अधिकारी हैं, जिनको सत्सङ्गति अतीव प्यारी हो ॥३॥

गुर पद प्रीति प्रीति रत जेई। द्विज सेवक अधिकारी तेई ॥
ता कहँ यह विसेप सुखदाई। जाहि प्रानप्रिय श्रीरघुराई ॥

जिनकी गुरु जी के चरणों में प्रीति है, और जो नीति जानने वाले हैं, तथा ब्राह्मणों के सेवक हैं, वेही इस कथा को सुनने के अधिकारी हैं। जिसको श्री रघुनाथ रामचन्द्र जी प्राणों के समान प्यारे हैं, उनको तो यह कथा

विशेष करके सुख देने वाली होती है ॥४॥

दो०—राम चरन रति जो चह अथवा पद निर्वान ।
भाव सहित सो यह कथा करउ श्रवन पुट पान ॥१२८॥

जो मनुष्य श्री रामचन्द्र जी के चरणों में प्रेम चाहते हों, अथवा जो निर्वाणपद (मोक्ष) को प्राप्त करना चाहते हों, वे प्रेमपूर्वक इस कथारूपी अमृत को अपने कानों रूपी दोने से पान करें ॥१२८॥

राम कथा गिरिजा मैं बरनी । कलि मल समनि मनोमल हरनी ॥
संसृति रोग सजीवन मूरी । राम कथा गावहिं श्रुति सूरी ॥

हे पार्वती ! यह श्री रामचन्द्र जी की कथा मैंने वर्णन की है, जो समस्त कलियुग के पापों को दूर करने वाली, तथा मन के मैल को हरण करने वाली है । यह संसार रूपी रोग की संजीवनी (जीवन प्रदान करने वाली) बूटी है, वेद और कवि लोग इस राम कथा को गाते हैं ॥१॥

एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना । रघुपति भगति केर पंथाना ॥
अति हरि कृपा जाहि पर होई । पाउँ देइ एहिं मारग सोई ॥

इस कथा के बीच में जो रुचिर सात सीढ़ियाँ हैं, वह रघुपति श्रीरामचन्द्र जी की भक्ति के रास्ते हैं । जिसके ऊपर बहुत ही हरि जी की कृपा हो जाती है, वही इस भक्ति के रास्ते में पांव धरता है ॥२॥

मन कामना सिद्धि नर पावा । जे यह कथा कपट तजि गावा ॥
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं । ते गोपद इव भवनिधि तरहीं ॥

जो मनुष्य इस श्री रामचन्द्र जी की पवित्र कथा को कपट रहित हो कर गाते हैं; वही अपने मनोरथों को सिद्ध हुआ पाते हैं । जो इस कथा को कहते, सुनते तथा अनुमोदन (प्रशंसा) करते हैं, वे गौ के खुर के गढ़े के समान संसार समुद्र से तर जाते हैं ॥३॥

सुनि सब कथा हृदय अति भाई । गिरिजा बोली गिरा सुहाई ॥
नाथ कृपाँ मम गत संदेहा । राम चरन उपजेउ नव नेहा ॥

इस श्री रघुनाथ जी की शुभ कथा को सुन करके, जो कि पार्वती जी के हृदय को बहुत रुची, सुन कर के पार्वती जी सुन्दर और कोमल वाणी से

बोली हे नाथ ! आपकी असीम कृपा से मेरा समस्त सन्देह दूर हो गया है, और श्री रामचन्द्र जी के चरणकमलों में नवीन स्नेह पैदा हो गया है ॥४॥

दो०—मैं कृतकृत्य भइउँ अब तव प्रसाद बिस्वेस ।
उपजी राम भगति दृढ़ बीते सकल कलेस ॥१२६॥

हे विश्वेश्वर ! मैं अब आपकी कृपा से अत्यन्त कृत-कृत्य (कृतार्थ) होगई हूँ । मेरे हृदय में श्री रामचन्द्र जी की दृढ भक्ति पैदा होगई है, और सम्पूर्ण जो मेरे क्लेश (दुःख) थे, वे सभी बीत गये (नष्ट हो गये) ॥१२६॥

यह सुभ संभु उमा संवादा । सुख संपादन समन बिषादा ॥
भव भंजन गंजन संदेहा । जन रंजन सज्जन प्रिय एहा ॥

यह कल्याण-कारक श्री शङ्कर जी और पार्वती का परस्पर संवाद, सुख उत्पन्न करने वाला, विषादों (दुःखों) को नष्ट करने वाला है । यह संसार रूपी बन्धन का अन्त कर देने वाला, तथा समस्त संदेहों को दूर भगा देने वाला, भक्त-जनों को महा आनन्द देने वाला, और सज्जन लोगों को प्यारा लगने वाला है ॥१॥

राम उपासक जे जग माहीं । एहि सम प्रिय तिन्ह कें कछु नाहीं ॥
रघुपति कृपाँ जथामति गावा । मैं यह पावन चरित सुहावा ॥

इस सारे संसार में जितने भी श्री रामचन्द्रजी के उपासक (आराधना-करने वाले) हैं, उनको तो इस राम कथा के बराबर और कुछ भी प्रिय नहीं है । जैसी मेरी बुद्धि थी, उसके अनुसार मैंने श्री रघुनाथ जी की कृपा से यह सुन्दर और पवित्र करने वाला चरित्र मैंने गाया है ॥२॥

एहिं कलिकाल न साधन दूजा । जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा ॥
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि । सतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि ॥

[तुलसी दास जी कहते हैं—] इस कलिकाल में, योग, यज्ञ, जप, तप, व्रत, पूजा आदि और दूसरा कोई भी ऐसा साधन (उपाय) नहीं है, केवल एक श्री रामचन्द्र जी का ही स्मरण करना चाहिये, और श्री रामचन्द्र जी के पवित्र चरित्रों का ही गान करना चाहिये, तथा निरन्तर श्रीराम जी के अपार गुण समूहों का श्रवण करना चाहिये ॥३॥

जासु पतित पावन बड़ बाना। गावहिं कवि श्रुति संत पुराना॥
ताहि भजहि मन तजि कुटिलाई। राम भजें गति केहिं नहिं पाई॥

जिनके पतितो को पवित्र करने वाले पतित पावन, इस बाने (बासो) को कवि लोग, चारों वेद, सन्तजन तथा पुराण गाया करते हैं, हे मेरे मन! समस्त कुटिलताओं को परित्याग करके उसी भगवान् श्री रामचन्द्र जी का भजन करो, रामचन्द्र जी के पवित्र नाम को भज कर भला किसने सद्गति प्राप्त नहीं की है?॥४॥

छं०—पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल व्याध गीध गजादि खल तारे घना॥
आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते॥१॥

अरे दुर्जन मन! सुन, पतितों (नीचों) को पवित्र करने वाले श्री राम चन्द्र जी को भजकर किसने परम गति (मोक्ष) प्राप्त नहीं की है। श्री राम चन्द्र जी ने वेश्या, अजामिल, व्याध, गीध, गज (हाथी) आदि असंख्य पापियों को भी तार दिया है। आभीर, यवन, किरात, खश, श्वपच (चाण्डाल) आदि जो अत्यन्त पाप के ही रूप थे, वे भी केवल मात्र एक बार ही जिनका नाम स्मरण करके पवित्र हो जाते थे, उन श्री रामचन्द्र जी को मैं प्रणाम करता हूँ॥१॥

रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलि मल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं॥
सत पंच चौपाईं मनोहर जानि जो नर उर धरै।
दारुन अविद्या पच जनित विकार श्रीरघुबर हरै॥२॥

जो मनुष्य राजा रघु के वंश के भूषण श्री रामचन्द्र जी के इस चरित्र को करते, सुनते तथा गाते हैं. वे परिश्रम किये बिना ही कलियुग के मैल को (पाप को) और अपने मन के मैल को धोकर श्री राम जी के परम धाम (वैकुण्ठ लोक) को चले जाते हैं जो मनुष्य पाँच-सात चौपाइयों को भी मनोहर जानकर अपने हृदय में धारण करते हैं। उनके भी पाँचों प्रकारों की अविद्याओं से जनित विकारों को श्री रामचन्द्र जी हर लेते हैं॥२॥

सुंदर सुजान कृपा निधान अनाथ पर कर प्रीति जो।
सो एक राम अकाम हित निर्बानप्रद सम आन को॥
जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूँ।
पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ॥ ३॥

जो सुन्दर; सुजान और कृपानिधान हैं; अनाथों से जो प्रीति करते हैं; ऐसे एक श्री रामचन्द्रजी ही हैं; इनकी तरह निःस्वार्थ हित करने वाला और मोक्ष दाता दूसरा कोई नहीं है। जिनकी कृपा के लेश मात्र से मैं थोड़ी बुद्धि वाला तुलसी दास भी परम शान्ति प्राप्त कर गया; उन श्री रामजी के समान स्वामी कहीं भी नहीं है ॥३॥

दो०—मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर ॥१३०(क)॥

हे श्री रघुवीर जी! मेरे समान और कोई भी दीन नहीं है; तथा आपके बराबर दीनों का हित करने वाला भी कोई नहीं है; हे रघुवंशमणि श्री रामजी! आप ऐसा विचार कर मेरे जन्म मरण की पीड़ा को दूर करें ॥१३०॥ (क)

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ॥१३०(ख)॥

हे रघुनाथ श्री राम जी! जैसे कामी पुरुष को स्त्री प्रिय होती है; और लोभी मनुष्य को जैसे धन प्यारा लगता है; उसी प्रकार आप निरन्तर मुझे प्रिय लगें ॥१३०॥

श्लो०—यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं,
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्।
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमः शान्तये
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्॥ १॥

सुयोग्य कवि भगवान् शङ्कर जी ने पहिले जो दुर्गम (कठिन) रामायण रची थी; और जिसके द्वारा सदैव श्री रामचन्द्र जी के चरणारविन्दों की भक्ति प्राप्त होती है; मैंने उसे रामायण को रघुनाथ जी के नाम में तत्पर मान